राजस्थानी वेलि साहित्य

(राजस्थान विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबध)

लेखक

डॉ० नरेन्द्र भानावत

एम० ए० पी-एच० डी० साहित्यरत्न

हिन्दी विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर

प्रकाशक

साहित्य सचिव,

राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम)

उदयपुर

*

प्रथम संस्करण : १५००

१९६५

मूल्य : २१.०० रुपये

*

मुद्रक

राजस्थान राज्य सहकारी मुद्रणालय लि०

जयपुर (राजस्थान)

प्रकाशकीय

राजस्थान साहित्य अकादमी ने कुछेक शोध प्रबध भी प्रकाशित किये हैं। उन्ही मे डा० भानावत का यह महत्वपूर्ण शोध प्रबध है।

अनेक वृहद्काय महत्वपूर्ण पाण्डुलिपियो को सामान्यत व्यावसायिक प्रकाशक प्रकाशित नही करते है। हमने ऐसी पाण्डुलिपियो को प्रकाशित करने के अपने दायित्व को भी निभाया है। यद्यपि बजट की सीमाओ को देखते हुए हम अधिक सख्या मे ऐसी पुस्तको को प्रकाशित नही कर सकते।

अकादमी ने अपने प्रकाशनो के प्रथम दौर मे राजस्थान के रचनाकारो को विविध विधाओ के सकलनो के द्वारा साहित्य-जगत के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया था। लेकिन अब अकादमी ने अपनी नीति बदल दी है। प्रकाशन नीति के दूसरे दौर मे हमने यह निर्णय लिया है कि प्रान्त के प्रत्येक कृतिकार का प्रतिनिधि साहित्य-विधा का उनका प्रतिनिधि सग्रह प्रकाश मे लाया जाए। सत्र ६५–६६ मे प्रकाशनार्थ स्वीकृत की जाने वाली पाण्डुलिपियो को इसी नीति के अनुसार चुना जा रहा है।

डा० नरेन्द्र भानावत साहित्य की विविध विधाओ मे सफलतापूर्वक लिखते जा रहे है। लेकिन शोध व अनुसधान की ओर आपकी विशेष रुचि है। यह पुस्तक आपका शोध प्रबध है जो आपने पी-एच० डी० की उपाधि के लिए राजस्थान विश्वविद्यालय को प्रस्तुत किया था। इसे अकादमी के द्वारा पुस्तक रूप मे प्रकाशित करने के पूर्व डा० भानावत ने इसमे कुछ उचित परिवर्तन व परिवर्द्धन किया है। यह शोध कार्य 'वेलि साहित्य' पर होने के कारण अपनी विशिष्टता रखता है। हमे इस ग्रथ की पाण्डुलिपि पर कई विद्वानो ने प्रशसात्मक सम्मतियाँ दी थी। हमे आशा है, साहित्य जगत व शैक्षणिक जगत इस पुस्तक का समुचित स्वागत करेगा।

मगल सक्सेना
साहित्य सचिव,
राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर

दीपमालिका
स २०२२

प्राक्कथन

पृथ्वीराज राठौड कृत 'क्रिसन रुक्मणी री वेलि' राजस्थानी साहित्य की महत्वपूर्ण कृति है। इसके कई सस्करण निकल चुके है। दूसरी महत्वपूर्ण कृति किसना कृत 'महादेव पार्वती री वेलि' है जिसका प्रकाशन हाल मे ही बीकानेर के सादूल राजस्थानी रिसर्च इ स्टीट्यूट से हुआ है। इसके अतिरिक्त राजस्थानी भाषा मे और भी अनेक वेलि ग्रथ हस्त-लिखित प्रतियो के रूप मे विभिन्न भडारो मे मिलते हैं। अब तक विद्वानो का ध्यान एकमात्र 'क्रिसन रुक्मणी री वेलि' पर ही केन्द्रित रहा और उसी को आधार बनाकर वेलि साहित्य पर थोडी बहुत चर्चा हुई।

प्रस्तुत प्रबन्ध मे डा० नरेन्द्र भानावत ने पहली बार वेलि साहित्य का क्रमबद्ध विवेचन प्रस्तुत करते हुए राजस्थानी भाषा की लगभग ८० वेलियो का अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसके पूर्व केवल आठ-दस वेलियो के नाम ज्ञात थे। लेखक ने बडे अध्यवसाय से अनेक नवीन वेलि कृतियो का पता लगाया और उनका समुद्धार किया है।

यह प्रबंध चार खण्डो मे विभक्त है। प्रथम खण्ड मे सैद्धान्तिक विवेचन है। इसमे सर्व प्रथम वेलि परम्परा, वेलि-नाम, वेलि साहित्य के प्रकार और प्राप्त वेलि साहित्य की विशेषताओ पर मौलिक विचार किया गया है। द्वितीय खण्ड मे चारणी वेलि साहित्य की कृतियो का अध्ययन है जिसमे प्रत्येक कृति, उसके लेखक और उसके रचनाकाल, उसके विषय आदि का विवेचन करते हुए उसका साहित्यिक तथा प्रसगानुसार ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। तृतीय खण्ड जैन वेलि साहित्य से सम्बन्धित है। इसमे ऐतिहासिक, कथात्मक एव उपदेशात्मक जैन वेलियो का विवेचन किया गया है। चतुर्थ खण्ड मे लौकिक वेलि साहित्य की विवेचना की गयी है।

प्रस्तुत प्रबध के द्वारा राजस्थानी साहित्य का एक महत्वपूर्ण अ श प्रकाश मे आया है। आशा है, यह विद्वानो को परितोषकर होगा।

नरोत्तमदास स्वामी
आचार्य एव अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
वनस्थली विद्यापीठ वनस्थली (राजस्थान)

निवेदन

जब एम० ए० के सातवें प्रश्न पत्र मे मैंने डिंगल को वैकल्पिक विषय के रूप मे स्वीकार किया तो पृथ्वीराज राठौड कृत 'क्रिसन रुक्मणी री वेलि' का सागोपाग दृष्टि से अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मै उसके साहित्यिक सौन्दर्य पर विशेष रूप से मुग्ध हुआ। एम० ए० करने के बाद जब श्रद्धेय गुरुवर श्री नरोत्तमदास जी स्वामी ने राजस्थानी वेलि साहित्य पर ही शोध-कार्य करने की बात कही तब मेरी उत्सुकता और बढ गई। उस समय मेरे सामने राजस्थानी भाषा के आठ-दस वेलि ग्रथो के ही नाम थे और उनमे भी अधिकाश कृतियाँ बहुत छोटी छोटी थी। विषय की सकीर्णता को देखकर थोडी निराशा भी हुई पर ज्यो-ज्यो बीकानेर, जोधपुर, जयपुर, अजमेर, उदयपुर आदि स्थानो के हस्तलिखित ग्रथ-भंडार देखता गया त्यों-त्यो प्रोत्साहन मिलता रहा। बाद मे जाकर तो विषय-सामग्री इतनी बढ गई कि परिशिष्ट मे आढा किशना कृत 'महादेव पार्वती री वेलि' को सम्पादित करने का विचार तक छोडना पडा।

राजस्थानी भाषा का साहित्य विविध और विस्तृत है। उसमे रास, रासो, चौपाई, सधि, चर्चरी, ढाल, पवाडा, फाग, धमाल, विवाहलो आदि काव्य-रूपो की एक सुदीर्घ परम्परा सुरक्षित है। 'वेलि' सज्ञक काव्य रूप भी इसी प्रकार का है। किसी एक काव्य-रूप को लेकर लिखा जाने वाला कदाचित् यह पहला ग्रथ है।

प्रकाशित वेलि-ग्रथ के रूप मे केवल पृथ्वीराज कृत 'क्रिसन रुक्मणी री वेलि' ही अभी तक विद्वानो के सामने आया है। उसके विभिन्न विद्वानो द्वारा सम्पादित छ सस्करण इस समय उपलब्ध है। शेष वेलि ग्रथ हस्तलिखित रूप मे ही विभिन्न भडारो मे बन्द पडे हैं। हाल ही मे बीकानेर के सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट से 'महादेव पार्वती री वेलि' का तथा जोधपुर के राजस्थानी शोध-सस्थान से 'राठौड रतनसिंघ री वेलि' का प्रकाशन हुआ है।

मैंने सर्वप्रथम संस्कृत-प्राकृत-अपभ्र श, राजस्थानी, गुजराती एव ब्रजभाषा मे चली आती हुई वेलि-परम्परा का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत कर राजस्थानी वेलि-साहित्य का वर्गीकरण करते हुए उसका साहित्यिक अध्ययन (और प्रसगानुसार ऐतिहासिक अध्ययन भी) प्रस्तुत किया है। वेलि नाम पर भी प्रथम बार इतने विस्तार के साथ प्रकाश डाला गया है। अध्ययन प्रस्तुत करते समय मैंने प्रत्येक वेलि का कवि-परिचय, रचना-काल, रचना—विषय और कला-पक्ष की दृष्टि से विवेचन किया है। स्थान-स्थान पर पाद-टिप्पणियो मे मूल पाठ भी उद्धृत किया गया है। हस्तलिखित प्रतियो के पाठ मे उद्धृत करते समय अपनी ओर से किसी प्रकार का परिवर्तन या सशोधन नही किया गया है। इस कारण कुछ शब्दो की वर्तनी और पाठ अट-पटे लग सकते है।

गाता ने समय-समय पर मुझ मे प्रेरणा, उत्साह और शक्ति न भरी होती तो यह कार्य इतना शीघ्र न हो पाता। इन दोनो के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन कर मै इनके गौरव को कम नही करना चाहता। गवर्नमेन्ट कालेज, बूदी के तत्कालीन प्रिंसीपल श्री एम० एल० गर्ग का भी मैं अत्यत आभारी हू जिनके अजस्र स्नेह और हर सभव सुविधा प्रदान करने के कारण मैं यह कार्य पूर्ण कर सका।

यह प्रबन्ध श्रद्धेय श्री नरोत्तमदास स्वामी के निर्देशन का परिणाम है। उन्ही से सतत प्रेरणा, मार्ग-दर्शन और स्नेह पाकर मै इसे लिख सका।

यह ग्रथ मैंने सन् १९६२ मे राजस्थान विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया था। अब तीन वर्ष बाद राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर की ओर से इसका प्रकाशन हो रहा है। इस बीच जो नई जानकारी प्राप्त हुई, उसका उपयोग यथास्थान पाद-टिप्पणियो मे किया गया है। अकादमी के अध्यक्ष श्री जनार्दनराय नागर एव साहित्य सचिव श्री मगल सक्सेना ने इस ग्रन्थ के प्रकाशन मे जो तत्परता दिखलाई है, उसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ। राजस्थान राज्य सहकारी मुद्रणालय, जयपुर के अधिकारियो एव कर्मचारियो को धन्यवाद दिये बिना नही रहा जा सकता जिन्होंने विशेष रुचि और सजगता के साथ इसके मुद्रण मे योग दिया। मेरे अनन्य मित्र श्री उदयलाल नलवाया ने इसके प्रूफ आदि देखने मे जो सहयोग दिया, वह उनका मेरे प्रति बडा सौजन्य है।

इस प्रबन्ध से यदि राजस्थानी साहित्य की किंचित् भी श्री वृद्धि हुई तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूँगा।

'गाँधी जयन्ती, १९६५ — **नरेन्द्र भानावत**

शान्तायन
सी-२३५ ए तिलकनगर, जयपुर (राजस्थान)

विषय-सूची

प्रथम खण्ड (सैद्धान्तिक विवेचन)

द्वितीय खण्ड (चारणी वेलि साहित्य)

चतुर्थ खण्ड (लौकिक वेलि साहित्य)

प्रथम अध्याय

वेलि साहित्य की परम्परा और उसका विकास

सस्कृत-प्राकृत-अपभ्र श वेलि साहित्य

वल्ली, वल्लरी, वेलि और वेल सज्ञक रचनाओ की एक सुदीर्घ परम्परा रही है। वाङ्मय को उद्यान मानकर ग्र थो को-चाहे वे व्याकरण, वेदान्त, दर्शन, धर्मशास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, अलकार शास्त्र, कोष, इतिहास, नीतिशास्त्र, कामशास्त्र, काव्य आदि किसी भी विषय से सबध रखने वाले हो-वृक्ष[1] तथा वृक्षागवाची-लता[2], मजरी[3], पल्लव[4], कलिका[5], गुच्छक[6], कदली[7], बीज[8], आदि-नाम से पुकारने की प्राचीन परिपाटी रही है। वेलि तथा वेल सज्ञक रचनाए भी इसी प्रकार की है। कुछ उपनिषदो मे अध्यायो या अध्यायो के विभाग का वल्ली नाम मिलता है।

१—वृक्षवाची ग्र थो के नाम मुख्यत दो रूपो मे मिलते है—

(क) द्रुमवाची —कविकल्पद्रुम, धर्मकल्पद्रुम, श्रुत्यन्तसुरद्रुम, अध्यात्मकल्पद्रुम, दैवज्ञकल्पद्रुम, शब्दकल्पद्रुम, कहावतकल्पद्रुम, रागकल्पद्रुम आदि।

(ख) तरुवाची —प्राकृतकल्पतरु, लघुत्रिमुनि कल्पतरु, कृत्यकल्पतरु, कोपकल्पतरु, स्मृतिकल्पतरु आदि।

२—लतावाची —न्यासकल्पलता, व्याकरण कल्पलता, कामकु जलता, अवदान कल्पलता, फलकल्पलता, वाच्छा कल्पलता, कु डल कल्पलता, विष्णु भक्ति कल्पलता, वनलता, स्याद्‌वाद कल्पलता, प्राकृत कल्पलतिका, प्रवधकला लतिका, सापिण्य कल्पलतिका, वेदात कल्पलतिका, परम शिवाद्वैत कल्पलतिका आदि।

३—मजरीवाची —प्राकृत मजरी, धातुमजरी, शब्दमजरी, अद्वैतरस मजरी, कर्पूर मजरी, शृ गारमजरी, तिलकमजरी, बृहत्कथा मजरी, सयममजरी, विवेकमजरी, कल्पमजरी, रूपकमजरी, स्याद्‌वाद मजरी, न्यायमजरी, जल्पमजरी, आश्चर्यमजरी, अनेकार्थ मजरी, कर्णालकार मजरी, वैद्यमजरी, कारकपुष्प मजरी, छन्दो मजरी, अमृत मजरी, भाषामजरी आदि।

४—पल्लववाची यथा-वीज पल्लवम्, पल्लव शेष आदि।

५—कलिकावाची यथा-स्याद्‌वाद कलिका, विवेक कलिका, चिकित्सा कलिका आदि।

६—गुच्छकवाची यथा-काव्यमाला गुच्छक आदि।

७—कदलीवाची यथा-न्याय कदली, उपदेश कदली, छद कदली आदि।

८—वीजवाची यथा-क्षमावल्ली वीज, विचारशतक वीजक, कबीर वीजक आदि।

तृतीय खण्ड (जैन वेलि साहित्य)

स्वर्गीय पिता श्री प्रतापमलजी की
धूपछाँही अगणित बाल-स्मृतियो को
तथा
माँ डेलूबाई के
असीम धैर्य, जीवट, साहस,
तप, त्याग और वात्सल्य को

—नरेन्द्र भानावत

स्वर्गीय पिता श्री प्रतापमलजी की

धूपछाँही अगणित बाल-स्मृतियो को

तथा

माँ डेलूबाई के

असीम धैर्य, जीवट, साहस,

तप, त्याग और वात्सल्य को

—नरेन्द्र भानावत

प्रथम खण्ड

(सैद्धान्तिक विवेचन)

प्रथम अध्याय

वेलि साहित्य की परम्परा और उसका विकास

सस्कृत-प्राकृत-अपभ्र श वेलि साहित्य

वल्ली, वल्लरी, वेलि और वेल सज्ञक रचनाओ की एक सुदीर्घ परम्परा रही है। वाङ्मय को उद्यान मानकर ग्र थो को-चाहे वे व्याकरण, वेदान्त, दर्शन, धर्मशास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, अलकार शास्त्र, कोष, इतिहास, नीतिशास्त्र, कामशास्त्र, काव्य आदि किसी भी विषय से सबध रखने वाले हो-वृक्ष[१] तथा वृक्षागवाची-लता[२], मजरी[३], पल्लव[४], कलिका[५], गुच्छक[६], कदली[७], वीज[८], आदि-नाम मे पुकारने की प्राचीन परिपाटी रही है। वेलि तथा वेल सज्ञक रचनाए भी इसी प्रकार की है। कुछ उपनिषदो मे अध्यायो या अध्यायो के विभाग का वल्ली नाम मिलता है।

१—वृक्षवाची ग्र थो के नाम मुख्यत दो रूपो मे मिलते है—

(क) द्रुमवाची —कविकल्पद्रुम, धर्मकल्पद्रुम, श्रुत्यन्तसुरद्रुम, अध्यात्मकल्पद्रुम, दैवज्ञकल्पद्रुम, शब्दकल्पद्रुम, कहावतकल्पद्रुम, रागकल्पद्रुम आदि।

(ख) तरुवाची —प्राकृतकल्पतरु, लघुत्रिमुनि कल्पतरु, कृत्यकल्पतरु, कोपकल्पतरु, स्मृतिकल्पतरु आदि।

२—लतावाची —न्यासकल्पलता, व्याकरण कल्पलता, कामकु जलता, अवदान कल्पलता, फल-कल्पलता, वाच्छा कल्पलता, कु डल कल्पलता, विष्णु भक्ति कल्पलता,वनलता, स्याद्वाद कल्पलता, प्राकृत कल्पलतिका, प्रवधकला लतिका, साषिण्य कल्पलतिका, वेदात कल्प-लतिका, परम शिवाद्वै त कल्पलतिका आदि।

३—मजरीवाची —प्राकृत मजरी, धातुमजरी, शब्दमजरी, अद्वै तरस मजरी, कर्पूर मजरी, श्रृ गारमजरी, तिलकमजरी, वृहत्कथा मजरी, सयममजरी, विवेकमजरी, कल्पमजरी, रूपकमजरी, स्याद्वाद मजरी, न्यायमजरी, जल्पमजरी, आश्चर्यमजरी, अनेकार्थ मंजरी, कर्णालकार मजरी, वैद्यमजरी, कारकपुष्प मजरी, छन्दो मजरी, अमृत मजरी, भाषा-मजरी आदि।

४—पल्लववाची यथा–वीज पल्लवम्, पल्लव शेष आदि।

५—कलिकावाची यथा–स्याद्वाद कलिका, विवेक कलिका, चिकित्सा कलिका आदि।

६—गुच्छकवाची यथा–काव्यमाला गुच्छक आदि।

७—कदलीवाची यथा–न्याय कदली, उपदेश कदली, छद कदली आदि।

८—वीजवाची यथा–क्षमावल्ली वीज, विचारशतक वीजक, कवीर वीजक आदि।

कठोपनिपद् मे दो अध्याय और छह वल्लियाँ है। तैत्तिरीय उपनिषद् के सातवे, आठवे और नवमे प्रपाठक को क्रमश 'शिक्षावल्ली', 'ब्रह्मानद वल्ली' और 'भृगुवल्ली' कहा गया है[1]। आगे चलकर वल्ली सज्ञक कई रचनाएँ लिखी गई। उनमे से कुछ के नाम इस प्रकार है –

रचना—नाम	रचनाकार	रचना-विषय
(१) कठवल्ली उपनिपद्[2]	–	उपनिषद्
(२) पडवल्ली उपनिपद्[3]	–	उपनिषद्
(३) अम्बुजवल्ली कल्याणम्[4]	श्री निवास कवि	नाटक
(४) अम्बुजवल्ली दण्डकम्[5]	–	स्तोत्र
(५) चातुर्मास्यव्रत कल्पवल्ली[6]	विरूपाक्ष	व्रतकल्प
(६) द्रव्यगुण कल्पवल्ली[7]	–	वैद्यक
(७) नानार्थ कल्पवल्ली[8]	वैंकट भट्ट	विशिष्टाद्वैत
(८) विकृति वल्ली[9]	व्यालि	वेदलक्षण
(९) पद्धति कल्पवल्ली[10]	विट्ठल दीक्षित	ज्योतिष
(१०) सूर्य सिद्धान्तसव्याख्य कल्पवल्ली[11]	व्याव्यल्लय	ज्योतिष
(११) चण्डी सपर्या क्रम कल्पवल्ली[12]	श्री निवास	देवी–तन्त्र
(१२) मधुकेलि वल्ली[13]	गोवर्धन भट्ट	काव्य
(१३) सपर्या क्रम कल्पवल्ली[14]	वीरभद्र	जैन धर्म

(१४) क्षमावल्ली वीज[1]	हरिभद्र सूरि	जैन धर्म
(१५) चिकित्सा क्रम कल्पवल्ली[2]	काशीनाथ	आयुर्वेद
(१६) पचाग कल्पवल्ली[3]	गोकुलचद्र	ज्योतिष
(१७) श्रुत्यन्त कल्पवल्ली[4]	पुरुषोत्तम प्रसाद	वेदान्त
(१८) वेदान्त सिद्धान्त कल्पवल्ली[5]	–	वेदान्त

यही 'वल्ली' शब्द प्राकृत और अपभ्र श मे 'वेल्लि' होता हुआ राजस्थानी मे 'वेलि' तथा 'वेल' मे रूपान्तरित हो गया। इस नाम की सर्व प्रथम रचना रोडाकृत 'राउव वेल' है जिसका समय ११ वी शती के लगभग है[6]। विद्यापति ने अपनी रचना का नाम 'कीर्तिलता' रखा था पर उसे 'वल्लि' भी कहा है[7]।

इस प्रकार सस्कृत-प्राकृत-अपभ्र श से होती हुई यह वेलि साहित्य की परम्परा राजस्थानी-गुजराती और व्रजभाषा मे विकसित हुई। हमारा मुख्य प्रतिपाद्य विषय राजस्थानी वेलि साहित्य है अत उसकी परम्परा और विकास का इतिहास व्रज, गुजराती और वर्तमान काल के वेलि साहित्य के बाद प्रस्तुत किया गया है।

व्रजभाषा वेलि साहित्य

व्रजभाषा मे 'लता' और 'वेलि' दोनो नाम से लिखी जाने वाली अनेक रचनाएँ मिलती है। 'लता' सज्ञक कुछ रचनाओ के नाम इस प्रकार है –

रचना–नाम	रचनाकार	रचना–काल
(१) अनुराग लता[8]	ध्रुवदास	१७वी शती का उतरार्द्ध
(२) रहसलता[9]	"	"

१—जैन साहित्य नो सक्षिप्त इतिहास मोहनलाल दलीचन्द देसाई, पृ० १५५

२—फेरिस्त कुतब महाराजा पब्लिक लाइब्रेरी, जयपुर, जिल्द २, पृ० ७७

३—वही पृ० ७२

४—सस्कृत ग्रन्थो का परिचय चौखम्बा सस्कृत सीरिज, बनारस, पृ० ३८

५—शोध पत्रिका (उदयपुर) वर्ष १२, अ क ३ मार्च, ६१, पृ० ७० पर उद्धृत।

६—हिन्दी अनुशीलन धीरेन्द्र वर्मा विशेपाक (वर्ष १३, अ क १–२) पृष्ठ, २२ पर डा० माताप्रसाद गुप्त का मत।

७—तिहुअन खेत्तहि काञि असु कित्तिवल्लि पसरेइ कीर्त्तिलता स० बाबूराम सक्सेना, पृष्ठ ४–५

८—हिन्दी साहित्य का इतिहास रामचन्द्र शुक्ल (छठा सस्करण) पृ० १९४।

९—वही

(३) प्रेमलता[१]	ध्रुवदास	१७ वी शती का उत्तरार्द्ध
(४) आनंदलता[२]	"	"
(५) शृंगारलता[३]	सुखदेव मिश्र	सं० १७५५ के आसपास
(६) छविलता विलास लीला[४]	अनन्य अली	सं० १७५९ से १७९०
(७) ललितलता विलासलीला[५]	"	"
(८) माधुरीलता विलासलीला[६]	"	"
(९) खमोलता विलासलीला[७]	"	"
(१०) कचनलता विलास[८]	"	"
(११) चद्रलता लीला[९]	"	"
(१२) इश्क लता[१०]	घनानन्द	१८ वीं० शती का उत्तरार्द्ध
(१३) रास रसलता[११]	नागरीदास	"
(१४) लालित्य लता[१२]	श्री दत्त	१८३० के आसपास
(१५) शृंगार लतिका[१३]	द्विजदेव (महाराजा मानसिंह)	१९वी शती का पूर्वार्द्ध
(१६) प्रीतिलता[१४]	महाराज प्रतापसिंह 'ब्रजनिधि'	१९ वी शती का मध्य
(१७) सुखकरण लता[१५]	अमृत राम	सं० १८९९
(१८) प्रेम सपत्ति लता[१६]	ठाकुर जगमोहनसिंह	सं० १८८५
(१९) श्यामालता[१७]	"	सं० १८८६

१—वही

२—वही

३—वही पृ० २९०

४—राधा वल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य डा० विजयेन्द्र स्नातक, पृ० ४९६

५—वही

६—वही

७—वही

८—वही

९—वही

१०—घन आनन्द और आनन्द घन विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० १७६–१८३

११—हिन्दी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (छठा संस्करण) पृ० ३४८

१२—वही पृ० २९४

१३—वही पृ० ३९९

१४—किसन रुकमणी री वेलि डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित, भूमिका, पृ० ४५

१५—मरु भारती (पिलानी) वर्ष ५ अंक २ पृ० ७६–८३

१६—हिन्दी साहित्य का इतिहास रामचन्द्र शुक्ल (छठा संस्करण) पृ० ५८२

१७—वही

संख्या मे सबसे अधिक 'लता' संज्ञक रचनाओ के प्रणेता है रसिकदास। राधा वल्लभ सम्प्रदाय के भक्त-कवियो मे रसिकदास नाम के पाच व्यक्ति हो गये है।[१] ये रसिकदास गोस्वामी धीरीधर के शिष्य थे। इनका रचनाकाल संवत १७४३ से १७५३ तक का है। इनके द्वारा रचित २० 'लता' संज्ञक रचनाओ के नाम इस प्रकार है।[२]

रचना-नाम	छंद-संख्या
(१) प्रसाद लता (सं० १७४३)	
(२) मनोरथ लता (मात्रिक वृत्त)	११७ पद
(४) अभिलाषा लता	२७ कुडलिया
(४) सौदर्य लता	१४२ दोहे
(५) माधुर्य लता (स० १७४४)	१०१ दोहे
(६) सौभाग्य लता	४७ दोहे, कवित्त, सवैये
(७) विनोद लता	६९ पद, ४१ कवित्त, ८ दोहे
(८) तरग लता	२२ दोहे
(९) विलास लता	७४ दोहे, चौपाई, कुडलिया
(१०) सुखसार लता	४० पद
(११) अदभुत लता	५७ पद
(१२) कौतुक लता	९० पद
(१३) रहस्य लता	४६ पद
(१४) रतन लता	४५ पद
(१५) अतन लता	२७ पद
(१६) रतिरग लता (स० १७४९)	३४ पद
(१७) हुलास लता	२४ पद
(१८) आनन्द लता	५९ पद
(१९) चारु लता	५४ पद
(२०) सुकसारौ लता	१०१ पद

'वेलि' और 'वल्लरी' नाम से लिखी जाने वाली कृतियाँ तो और भी अधिक है। कबीर के बीजक[३] मे "वेलि" नाम की एक छोटी सी (२३ छद) रचना है जिसकी प्रत्येक पक्ति के अन्त मे "हो रमैया राम" शब्द आते है।[४] बीजक की

१—राधा वल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य डा० विजयेन्द्र स्नातक, पृ० ४९९-५००

२—वही पृ० ५०१

३—प्रकाशक-प० मोतीदास चेतनदास पृ० ७५७-७६७

४—देखिये-हसा सरवर शरीर मे हो रमैया राम।
जागत चोर घर मूसल हो रमैया राम ॥१॥
जो जागल सो भागल हो रमैया राम।
सुतल से गेल विगोय हो रमैया राम ॥२॥

प्रामाणिकता सदिग्ध है अत नरोत्तमदास स्वामी ने कबीर के नाम से सगृहीत इस वेलि को कबीर की रचना नही माना है।[1] ब्रजभाषा मे वेलि, वेल तथा वल्लरी नाम से मिलने वाली रचनाओ के नाम इस प्रकार है—

रचना-नाम	रचनाकार	रचना-काल
(१) काया वेल[2]	दादू	१७वी शती का मध्य
(२) मनोरथ वल्लरी[3]	रामराय	स० १७८९ लेखनकाल
(३) मनोरथ वल्लरी[4]	तुलसीदास	स० १७९३ लेखनकाल
(४) रसकेलि वल्ली[5]	घनानद	१८वी शती का उत्तरार्द्ध
(५) वियोग वेलि[6]	,,	,,
(६) वैराग्य वल्लरी[7]	नागरीदास	स० १७७२
(७) कलि वैराग्य वल्लरी[8]	,,	स० १७९५
(८) मोहन की वेलि[9]	पद्माकर	१९वी शती का मध्य
(९) दुखहरण वेलि[10]	महाराज प्रतापसिंह 'ब्रजनिधि'	,,
(१०) प्रीति वेलि[11]	अमृत राम	स० १८६९ के आसपास

सख्या मे सबसे अधिक 'वेलि' ज्ञक रचनाओ के प्रणेता है चाचा वृन्दावनदास। इनका रचना-काल स० १८०० से १८४४ है।[12] ये राधा वल्लभीय गोस्वामी हित रूपजी के शिष्य थे और नागरीदास के भाई बहादुरसिंह के यहाँ रहे थे। इन्होने लगभग ७२ वेलियाँ लिखी है। इनका वर्ण्य-विषय प्रधानत कृष्ण और राधा की भक्ति तथा ब्रजभूमि का माहात्म्य रहा है। इनके द्वारा रचित 'वेलियो' के नाम इस प्रकार हैं—

१—क्रिसन रूकमणी री वेलि प्रस्तावना, पृ० २३
२—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर हस्तलिखित प्र० स० १२५४१
३—राजस्थान मे हिन्दी के हस्तलिखित ग्र थो की खोज, प्रथम भाग
मोतीलाल मेनारिया, पृ० १००–१०१
४—वही
५—क्रिसन रूकमणी री वेलि डॉ० आनन्द प्रकाश दीक्षित, भूमिका, पृ० ४५
६—घन आनन्द और आनन्द घन विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० १४६–१४९
७—नागर समुच्चय प० श्रीधर शिवलाल, ज्ञान सागर छापाखाना बम्बई से प्रकाशित
८—वही
९—राजस्थानी शोध सस्थान, चौपासनी हस्तलिखित प्रति स० ५६
१०—ब्रजनिधि ग्र थावली स० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, पृ० १८७ १८९
११—मरु भारती (पिलानी) वर्ष ५ अ क २, पृ० ७६-८३
१२—राधा वल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, पृ० ५१२ १३

रचना-नाम	रचना-काल	छद-सख्या
(१) हरिप्रताप वेलि	स० १८०३ माघबदी सातम	१०६
(२) सत्सग महिमा वेलि	स० १८०४ माघ कृष्णा त्रयोदशी	८८
(३) व्रज विनोद वेलि	स० १८०४ माघ शुक्ला सातम	१५१
(४) करुणा वेलि (प्रकाशित)	स० १८०४ ज्येष्ठ कृष्णा पचमी	६६
(५) भक्त सुजस वेलि	स० १८०४	८१
(६) जमुना महिमा वेलि	स० १८०४ पौष सुदी सातम	११०
(७) श्री वृन्दावन महिमा वेलि	स० १८०५ माघ शुक्ला एकादशी	२१०
(८) रसना हित परदेश वेलि	स० १८०५ पूप वदी एकादशी	१०१ पद, ५ दोहे
(९) मन उपदेश वेलि पद वध	स० १८०६ पूष सुदी दुतिया	१२६ पद, १३ दोहे
(१०) भक्त प्रसाद वेलि पद बध	स० १८०९ पौप शुक्ला त्रयोदशी	१७६ पद, ८ दोहे
(११) व्रज प्रसाद वेलि पद वध	स० १८११ माव सुदी पून्यौ	११६ पद, २ कवित्त
(१२) श्री राधा जन्मोत्सव वेलि	स० १८१२ भादो सुदी	६० कवित्त (पूर्वार्द्ध)
(१३) वृन्दावन अभिलापा वेलि	स० १८१२ आपाढ शुक्ला एकादशी	१६५
(१४) मगल विनोद वेलि (प्रकाशित)	स० १८१२ सुदी तीज	
(१५) कृपा अभिलाष वेलि (प्रकाशित)	स० १८१२ पौष शुक्ला एकादशी	११२
(१६) कलि चरित्र वेलि (प्रकाशित)	स० १८१२ माघ वदी नौमी	१२५
(१७) राधा प्रसाद वेलि	स० १८१२ माघ शुक्ला पचमी	१२६
(१८) श्री कृष्ण सगाई-अभिलाप वेलि (प्रकाशित)	स० १८१२ फागुन शुक्ला एकादशी	३५०
(१९) श्री कृष्ण प्रति यशुमति शिक्षा वेलि	स० १८१३ चैत्र सुदी दुतिया	१९२

(२०)	ज्ञान प्रकाश वेलि	स० १८१३ चैत्र शुक्ला नौमी	८४
(२१)	बारह खडी भजनसार वेलि	स० १८१३ चैत्र शुक्ला त्रयोदशी	१५२
(२२)	हित प्रताप वेलि	स० १८१३ माघ कृष्ण त्रयोदशी	८४ पद, ८ दोहे
(२३)	हरि कला वेलि	स० १८१३	प्रारम्भ
(२४)	मन प्रबोध वेलि	स० १८१३ श्रावण मास	८७
(२५)	हरि कला वेलि	स० १८१७ आषाढ वदी एकादशी	१६१
(२६)	जमुना प्रताप वेलि	स० १८१७ कार्तिक वदी एकादशी	१०६
(२७)	श्री वृषभानु नदिनी श्री नद नदन व्याह मगल वेलि (प्रकाशित)	स० १८१७ फागुन वदी एकादशी	२१०
(२८)	राधा जन्मोत्सव वेलि	स० १८१८	१२१
(२९)	हित रूप चरित्र वेलि	स० १८२० चैत्र शुक्ला पूर्णिमा	४६२
(३०)	श्री कृष्ण गिरि-पूजन वेलि	स० १८२० कार्तिक वदी दौज	३३५
(३१)	विमुख उद्धारन वेलि	स १५२१ चैत पूर्णिमा	१६४
(३२)	सुबुद्धि चितावन वेलि	स० १८२४ कार्तिक शुक्ला १३	५४ पद, ५ दोहे
(३३)	वृन्दावन जस प्रकाश वेलि	स० १८२५ माधव शुक्ला ११	७५ पद, ६ दोहे
(३४)	राधा नाम उत्कर्ष वेलि	स० १८३१ अगहन वदी दौज	
(३५)	श्री कृष्ण विवाह उत्कठा वेलि (प्रकाशित)	स० १८३१ वैशाख वदी सप्तमी	१२९ पद, १२ दोहे
(३६)	विवेक पत्रिका वेलि	स० १८३५ असाढ वदी पचमी	१८५
(३७)	भक्ति प्रार्थना वेलि	स० १८४० चैत सुदी सातमी	३३४
(३८)	राधा रूप प्रताप वेलि	स० १८४० वैशाख कृष्णा सप्तमी	१३३

(३९) मन परचावन वेलि	स० १८४० भाद्रपद शुक्ला तृतीया	२२८
(४०) राधा-रूप-नाम उत्कर्ष वेलि	स० १८४०	
(४१) वृन्दावन प्रेम विलास वेलि	स० १८४० पौष शुक्ला सप्तमी	१४६
(४२) कृष्ण नाम-रूप मगल वेलि	स० १८४० पौष शुक्ला दशमी	११०
(४३) इष्ट मिलन उत्कठा वेलि	स० १८४१ श्रावण शुक्ला द्वितीया	११८
(४४) बारह मासा बिहार वेलि		१८
(४५) हित कृपा विचार वेलि		८४
(४६) दान वेलि		
(४७) भक्ति उत्कर्ष वेलि		
(४८) रूप सुजस वेलि		
(४९) हित मगल वेलि		
(५०) इष्ट सुमिरन वेलि		
(५१) महत मगल वेलि		
(५२) हरिनाम वेलि		
(५३) मन चेतावनी वेलि		
(५४) मुरलिका उत्कर्ष वेलि		
(५५) आनन्द वर्धन वेलि		
(५६) हरि इच्छा वेलि		
(५७) हित रूप अन्तर्धान वेलि		
(५८) मदन मगल वेलि		
(५९) सुमति प्रकाश वेलि		
(६०) कृष्णा भिलाष वेलि		
(६१) भक्ति सुजस वेलि		
(६२) मन हितोपदेश वेलि		
(६३) भजन कु डलिया वेलि		
(६४) जमुना प्रसाद वेलि		
(६५) गुरु महिमा वेलि		
(६६) कृष्ण-नाम-रूप- उत्कर्ष वेलि		
(६७) भजन उपदेश वेलि		
(६८) गर्व–प्रहार वेलि		
(६९) हित स्वरूप वेलि		
(७०) विवाह मगल वेलि		

(७१) महत सगुन वेलि
(७२) विवेक लक्षण वेलि[1]

गुजराती वेलि साहित्य

गुजराती मे कई जैन और जैनेतर कवियो ने वेलियो की रचना की है जैन-गुजराती बेलियो की रचना जैन-सन्तो द्वारा विशेप रूप से हुई है। एक स्थान पर चातुर्मास के सिवाय अधिक दिनो तक निवास करने का आचार नही होने से जैन-साधु प्राय एक स्थान से दूसरे स्थान पर विहार करते रहते है। गुजरात और राजस्थान मे जैन-साधुओ की अधिकता है। दोनो प्रातो मे इनका विहार होता रहता है। इस कारण जैन गुजराती वेलियो की भाषा राजस्थानी मिश्रित है। अत उनका उल्लेख हमने राजस्थानी वेलि साहित्य का विकास प्रस्तुत करने समय यथा-स्थान कर दिया है। यहाँ १७वी से १९वी शती के मध्य मे रचित अजैन गुजराती वेलियो के कुछ नाम दिये जाते है—

रचना-नाम	रचनाकार
(१) वल्लभ वेल (जन्म वेलय)[2]	केशवदास वैष्णव
(२) सीता वेल[3]	वजिया
(३) श्रुत वेल[4]	जीवनदास
(४) व्रज वेल[5]	प्रेमानन्द
(५) भक्त वेल[6]	दयाराम
(६) रस वेलि[7]	—

वर्त्तमान काल का हिन्दी वेलि साहित्य

आज भी व्रज और राजस्थानी मे साहित्य रचा जाता है पर पहले की तुलना मे बहुत कम। अब अभिव्यक्ति का माध्यम खडी बोली (हिन्दी) सबने अपना लिया है। अत देखना यह है कि आज के साहित्य मे भी जहाँ गद्य की प्रधानता है 'वेलि'

१—सख्या १ से ४५ के लिए देखिये राधा वल्लभ सम्प्रदाय सिद्धात और साहित्य डा० विजयेन्द्र स्नातक, पृ० ५२४–५२८ तथा ४६ से ७२ तक की सूचना प्रभुदयालजी मीतल ने श्री अगरचद जी नाहटा को दी है उसके अनुसार।
२—प्रकाशित वैष्णव धर्म पताका (मासिक पत्र) पौष स० १९८१
३—प्राचीन काव्य विनोद, भाग १, स० छगनलाल विद्याराम रावल
४—गुजराती साहित्य ना स्वरूपो प्रो० मजुलाल मजूमदार
५—वही
६—वही
७—कल्पना वर्ष ७ अक ४ (अप्रैल,१९५६) नाहटा जी का लेख।

सज्ञक रचनाओ की परम्परा जीवित है क्या ? यह ठीक है कि परम्परा का वह रूप तो नही रहा जो पहले था। देश-काल के अनुसार उसके वस्तु और शिल्प मे परिवर्तन आया है पर 'वेलि' अभिधान अब भी देखने को मिलता है। उसका क्षेत्र अब केवल पद्य (कविता) नही रहा वरन् गद्य (उपन्यास, नाटक) भी हो गया है। कुछ रचनाओ के नाम इस प्रकार है --

रचना-नाम	रचनाकार	रचना-विधा
(१) वग वल्लरी	उर्मिला कुमारी	उपन्यास
(२) अमर वेलि	विश्वनाथ प्रसाद	उपन्यास
(३) विजय वेलि	सेठ गोविन्ददास	नाटक
(४) ममता वेलि[1]	मगल मेहता	गद्य गीत
(५) अमर आराधना की वेल[2]	माखनलाल चतुर्वेदी	कविता
(६) अमृत वेलि[3]	बच्चन	कविता

राजस्थानी वेलि साहित्य

विषय और शैली की दृष्टि से सम्पूर्ण राजस्थानी वेलि साहित्य को तीन भागो मे बाँट सकते है --

(१) लौकिक वेलि साहित्य
(२) जैन वेलि साहित्य
(३) चारणी वेलि साहित्य

काल-क्रम की दृष्टि से इस साहित्य का इतिहास १५वी शती से १९वी शती तक रहा है। विकास-रेखा प्रस्तुत करते समय हम काल और विषय-शैली को साथ साथ रखने का प्रयत्न करेगे।

पन्द्रहवी शती का साहित्य

रोडाकृत 'राउल वेल' का उल्लेख हम पहले कर चुके है। यह प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई मे रखा हुआ एक शिलाकित काव्य है। इसे छोडकर राजस्थानी मे पन्द्रहवी शती तक लिखित रूप मे 'वेलि' सज्ञक रचना का कोई उल्लेख नही मिलता है। लौकिक वेलि साहित्य[4] के रूप मे जो रचनाएँ मिली है वे इस प्रकार है-

---

१—प्रकाशित-विक्रम कार्तिक स० २०११
२—प्रकाशित-कल्पना अप्रैल, १९५६
३—प्रकाशित-आजकल फरवरी, १९६१
४—इन लौकिक वेलियो के रचना-काल के सम्बन्ध मे निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। हमने अनुमान मे जो रचना-काल निर्धारित किया है वह काव्य के प्रमुख पात्र के जीवन की सम सामयिकता को लेकर ही।

रचना-नाम	रचनाकार	रचना-काल	छद-संख्या
(१) रामदेवजी री वेल[1] (प्रकाशित)	सत हरजी भाटी	१५वी शती का उत्तरार्द्ध	२४
(२) रूपादेरी वेल[2] (प्रकाशित)	,,	,,	५८
(३) तोलादेरी वेल[3]	—	,,	४०
(४) रत्नादे री वेल[4]	तेजो	१५वी शती का अन्त	१५ पद

सोलहवी शती का साहित्य

इस शती मे जैन कवियो द्वारा 'वेलि' सज्ञक रचनाएँ प्रचुर मात्रा मे लिखी गई । लौकिक वेलियो मे 'आईमाता री वेल' ही मिली है। चारणी वेलियाँ सभवत नही लिखी गई । इस शती की उपलब्ध वेलियाँ इस प्रकार है—

(क) जैन वेलि साहित्यः

(१) कर्मचूर व्रत कथा वेलि[5]	भट्टारक सकल कीर्त्ति	सोलहवी शती का आरभ	—
(२) चिहुँगति वेलि[6]	वाछा	स० १५२० (लिपिकाल)	१३५
(३) जम्बू स्वामी वेल[7] (प्रकाशित)	सीहा	स० १५३५ (लिपिकाल)	१८
(४) रहनेमि वेल[8] (प्रकाशित)	,,	,,	१६
(५) प्रभव जम्बू स्वामी वेलि[9]	—	स० १५४८ (लिपिकाल)	२७
(६) पचेन्द्रिय वेलि[10]	ठकुरसी	स० १५५०	६ भाग

१—वरदा (बिसाऊ) वर्ष १, अ क १, पृ० ४३–४६ मे शिवसिंह चोयल द्वारा प्रकाशित ।

२—प्रकाशित–मरु भारती (पिलानी) वर्ष २ अ'क २, पृ० ७६–७१ तथा शोध पत्रिका (उदयपुर) भाग ६ अ क २, पृ० ३७–४२

३—भावी–निवासी शिवसिंह चोयल के सौजन्य से प्राप्त

४—वही

५—दिगम्बर जैन मदिर (पाटौदी) जयपुर, गुटका सख्या ११

६—अभय जैन ग्र थालय, बीकानेर गुटका सख्या २२५

७—जैन–युग पुस्तक ५, अ क ११–१२, पृ० ४७३–७४

८—वही पृ० ४७४–७५

९—लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्या मदिर, अहमदाबाद के नगर सेठ कस्तूरभाई मणिभाई का सग्रह, ह० प्रति संख्या १०८३

१०—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ह० प्र० ३६४०

(७) नेमिश्वर की वेलि[1]	ठकुरसी	स० १५५० के आसपास	५ भाग
(८) गरभ वेलि[2]	लावण्यसमय	स० १५५३–८९ के मध्य	११४
(९) गरभ वेलि (जड़त वेलि)[3]	सहज सुन्दर	स० १५७०–८२ के मध्य	३४
(१०) वेलि[4]	छीहल	स० १५७५–८४ के मध्य	४ पद
(११) नेमि परमानद वेलि[5]	जयवल्लभ	स० १५७७ के आसपास	४८
(१२) वलकल चीरकुमार ऋषिराज वेलि[6]	कनक	स०१५८२–१६१२ के मध्य	७५
(१३) क्रोध वेलि[7]	मल्लिदास	स० १५८८ वैशाख चौथ रविवार	३५
(१४) सुदर्शन स्वामिनी वेलि[8]	वीरचद	१६वी शती का अत अपूर्ण	
(१५) जम्बू स्वामिनी वेलि[9]	,,	,,	,,
(१६) बहुवलीनी वेलि[10]	,,	,,	—
(१७) भरत वेलि[11]	देवानदि	—	२२

(ख) लौकिक वेलि साहित्य ·

(१) आईमाता री वेल[12] (प्रकाशित)	मत सहदेव	स० १५७६ भादवा मास की चद्रावली बीज	

१—भट्टारक भडार, अजमेर गुटका स० ६२ पत्र ५५–६२

२—बड़ा उपासरा, बीकानेर के अभयसिंह भडार का सग्रह गुटका स० २९

३—जैन गुर्जर कवियो भाग ३, खड १ मो०द० देसाई, पृ० ५६२

४—शास्त्र भडार मदिर गोधा, जयपुर गुटका स० ८१

५—लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्या मदिर, अहमदाबाद के नगरसेठ कस्तूरभाई मणिभाई का सग्रह ह० प्र० सख्या १०८५

६—लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्या मदिर, अहमदाबाद के नगर सेठ कस्तूर भाई मणिभाई का सग्रह, ह०प्र० स० १३४९

७—जैन साहित्य-सदन, चादनी चौक, दिल्ली परमानद जैन के सौजन्य से प्राप्त।

८—खण्डेलवाल, दिगम्बर जैन मदिर, उदयपुर गुटका स० १००

९—वही गुटका स० १००

१०—अग्रवाल मदिर का शास्त्र–भडार, उदयपुर वेष्टन सख्या १७

११—दिगम्बर जैन मदिर बडा तेरह पथियो का भडार, जयपुर, गुटका स० २२३

१२—प्रकाशित–मरु भारती (पिलानी) वर्ष ३ अक १, पृ० ६८–७०

रचना-नाम	रचनाकार	रचना-काल	छंद-संख्या
(१) रामदेवजी री वेल[1] (प्रकाशित)	[illegible] हरजी भाटी	१५वीं शती का उत्तरार्द्ध	[illegible]
(२) रूपादेरी वेल[2] (प्रकाशित)	,,	,,	[illegible]
(३) तोलादेरी वेल[3]	—	,,	[illegible]
(४) रत्नादे री वेल[4]	तेजो	१५वीं शती [illegible]	[illegible]

सोलहवी शती का साहित्य

इस शती मे जैन कवियो द्वारा 'वेलि' [illegible] रचनाएँ [illegible] मे लिखी गई। लौकिक वेलियो मे 'आईमाता री वेल' ही मिली है। [illegible] नही लिखी गई। इस शती की उपलब्ध वेलियाँ इस प्रकार है—

(क) जैन वेलि साहित्य

(१) धर्मचूर व्रत कथा वेलि[5]	भट्टारक [illegible]	[illegible] का आरम्भ	—
(२) चिहुँगति वेलि[6]	वाछा	सं० १५२० (लिपिकाल)	[illegible]
(३) जम्बू स्वामी वेल[7] (प्रकाशित)	सीहा	सं० १५३५ (लिपिकाल)	[illegible]
(४) रहनेमि वेल[8] (प्रकाशित)	,,	,,	[illegible]
(५) प्रभव जम्बू स्वामी वेलि[9]	—	सं० १५[illegible] (लिपिकाल)	[illegible]
(६) पचेन्द्रिय वेलि[10]	ठकुरसी	सं० १५५०	६ भाग

१—वरदा (बिसाऊ) वर्ष १, अक १, पृ० ४३–४६ मे शिवसिंह चोयल द्वारा प्रकाशित।

२—प्रकाशित–मरु भारती (पिलानी) वर्ष २ अंक २, पृ० ७६–[illegible] तथा शोध पत्रिका (उदयपुर) भाग ६ अक २, पृ० ३७–४२

३—भावी–निवासी शिवसिंह चोयल के सौजन्य से प्राप्त

४—वही

५—दिगम्बर जैन मदिर (पाटोदा) जयपुर, गुटका सख्या ११

६—अभय जैन ग्र थालय, बीकानेर गुटका सख्या २२५

७—जैन–युग पुस्तक ५, अ क ११–१२, पृ० ४७३–७४

८—वही पृ० ४७४–७५

९—लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्या मदिर, अहमदाबाद के नगर सेठ कस्तूरभाई मणिभाई का सग्रह, ह० प्रति संख्या १०८३

१०—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ह० प्र० ३६४०

(७) नेमिश्वर की वेलि[1]	ठकुरसी	स० १५५० के आसपास	५ भाग
(८) गरभ वेलि[2]	लावण्यसमय	स० १५५३–८९ के मध्य	११४
(९) गरभ वेलि (जइत वेलि)[3]	सहज सुन्दर	स० १५७०–८२ के मध्य	३४
(१०) वेलि[4]	छीहल	स० १५७५–८४ के मध्य	४ पद
(११) नेमि परमानद वेलि[5]	जयवल्लभ	स० १५७७ के आसपास	४८
(१२) वल्कल चीरकुमार ऋषिराज वेलि[6]	कनक	स०१५८२–१६१२ के मध्य	७५
(१३) क्रोध वेलि[7]	मल्लिदास	स० १५८८ वैशाख चौथ रविवार	३५
(१४) सुदर्शन स्वामिनी वेलि[8]	वीरचद	१६वी शती का अत अपूर्ण	
(१५) जम्बू स्वामिनी वेलि[9]	,,	,,	,,
(१६) बहुबलीनी वेलि[10]	,,	,,	—
(१७) भरत वेलि[11]	देवानदि	—	२२

(ख) *लौकिक वेलि साहित्य* ·

(१) आईमाता री वेल[12] (प्रकाशित)	सत सहदेव	स० १५७६ भादवा मास की चद्रावली बीज	

१—भट्टारक भडार, अजमेर गुटका स० ६७ पत्र ५५–६२

२—बडा उपासरा, बीकानेर के अभयसिंह भडार का सग्रह गुटका स० २९

३—जैन गुर्जर कवियो भाग ३, खड १ मो०द० देसाई, पृ० ५६२

४—शास्त्र भडार मदिर गोधा, जयपुर गुटका स० ८१

५—लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्या मदिर, अहमदाबाद के नगरसेठ कस्तूरभाई मणिभाई का सग्रह ह० प्र० सख्या १०८५

६—लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्या मदिर, अहमदाबाद के नगर सेठ कस्तूर भाई मणिभाई का सग्रह, ह०प्र० स० १३४९

७—जैन साहित्य-सदन, चादनी चौक, दिल्ली। परमानद जैन के सौजन्य से प्राप्त।

८—खण्डेलवाल, दिगम्बर जैन मदिर, उदयपुर गुटका स० १००

९—वही गुटका स० १००

१०—अग्रवाल मदिर का शास्त्र-भडार, उदयपुर वेष्टन सख्या १७

११—दिगम्बर जैन मदिर बडा तेरह पथियो का भडार, जयपुर, गुटका स० २२३

१२—प्रकाशित–मरु भारती (पिलानी) वर्ष ३ अक १, पृ० ६८–७०

सत्रहवी शती का साहित्य

यह शती वेलि-साहित्य के लिए [illegible]। [illegible] साहित्य का स्वर्ण-काल कहा जा सकता है। [illegible] वेलियाँ इस शती मे विशेष [illegible] लिखी गईं। [illegible] प्रकार है —

(क) जैन वेलि साहित्य

(१)	चदन बाला वेलि[1]	अजितदेव सूरि	सं० [illegible] के मध्य [illegible]
(२)	सव्वत्थ वेलि प्रबध[2]	[illegible]	सं० [illegible]
(३)	गुणठाणा वेलि[3]	जीवराज	सं० [illegible] (निर्माणकाल) [illegible]
(४)	लघु बाहुबलि वेलि[4]	शान्तिदास	सं० [illegible] (निर्माणकाल) [illegible]
(५)	जइनपद वेलि[5] (प्रकाशित)	कनकसोम	सं० [illegible] [illegible]
(६)	गुरु वेलि[6]	भट्टारक धर्मदास	सं० १६३८ के पूर्व [illegible]
(७)	स्थूलि भद्र मोहन वेलि[7]	जयवत सूरि	सं० [illegible] [illegible]
(८)	नेमि राजुल बारहमासा[8] वेल प्रबध	जयवत सूरि	सं० [illegible] के आसपास [illegible]
(९)	वीर वर्द्धमान जिन वेलि[9]	सकलचन्द्र उपाध्याय	सं० १६४३-६० के मध्य [illegible]
(१०)	साधु कल्पलता-साधुवदना[10] मुनिवर सुरवेलि	,,	,, [illegible]

१—अभय जैन ग्रथालय, बीकानेर हस्तलिखित प्र० सख्या ३६४३ से ३६८७ (५ प्रतियाँ)

२—वही, ह० लि० प्र० सख्या ७६०८

३—दिगम्बर जैन मदिर, (खण्डेलवाल) उदयपुर गुटका पत्र स० २६७, पत्र ४ से ६

४—वही, गुटका सख्या ५०

५—प्रकाशित-ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह अगरचन्द भवरलाल नाहटा, पृ० १४०–४५

६—भट्टारक भडार, अजमेर, गुटका सख्या ५६

७—अभय जैन ग्रथालय, बीकानेर ह० लि० प्र० सख्या ३७१६

८—गुजराती साहित्य ना स्वरूपो डा० मजुलाल मजूमदार, पृ० २८२–८४

९—जैन गुर्जर कवियो भाग १ मोहनलाल दलीचद देसाई, पृ० २८०–८१

१०—वही, पृ० २८१

(11) हीरविजय सूरि देशना वेलि[1]	सकलचंद्र उपाध्याय	सं० 1652 के बाद	115
(12) ऋषभ गुण वेलि[2]	ऋषभदास	सं० 1666 87 के मध्य	9 ढाल
(13) बलभद्र वेलि[3]	सालिग	सं० 1669 (लिपिकाल)	28
(14) चार कषाय वेलि (अपूर्ण)[4]	विद्याकीर्ति	सं० 1670 के आसपास	59
(15) सोमजी निर्वाण वेलि[5] (प्रकाशित)	समयसुन्दर	सं० 1670 के आसपास	10
(16) सीता शीलपताका गुण वेलि[6]	भट्टारक जयकीर्ति	सं० 1674	
(17) प्रतिमाविकार वेलि[7]	सामत	सं० 1675 (लिपिकाल)	18
(18) बृहद् गर्भ वेलि[8]	रत्नाकरगणि	सं० 1680	109
(19) पञ्चगति वेलि[9]	हर्षकीर्ति	सं० 1683 सावण की नवमी	6 भाग
(20) पार्श्वनाथ गुण वेलि[10]	जिनराजसूरि	सं० 1689 पोष वदी 8	48
(21) मल्लिदासनी वेलि[11]	ब्रह्म जयसागर	—	—
(22) आदित्यवारनी वेलि कथा[12]	—	—	—

1—भारतीय संस्कृति विद्या मंदिर, अहमदाबाद के कस्तूरभाई मणिभाई का संग्रह ग्रंथांक 1038।

2—भारतीय संस्कृति विद्या मंदिर, अहमदाबाद के मुनि पुण्यविजय जी का संग्रह ग्रंथांक 5842।

3—अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर का सं० 1669 का लिखा हुआ एक गुटका

4—अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर की हस्तलिखित प्रति संख्या 8629

5—समय सुन्दरकृति कुसुमाञ्जलि अगरचंद भंवरलाल नाहटा, पृ० 415–17

6—हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि डा० प्रेमसागर जैन, भूमिका, पृ० 9 की पाद टिप्पणी।

7—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ह० प्र० सं० 1134, पृ० 62

8—ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, ह० प्र० संख्या 19190

9—राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची, द्वितीय भाग पृ० 90

10—जैन गुर्जर कवियो मोहनलाल दलीचंद देसाई भाग 3, खंड 1, पृ० 1049

11—शास्त्र भंडार, ऋषभदेव ग्रंथांक 620

12—शास्त्र भंडार दिगम्बर जैन मंदिर कोटड़ियों का, डूंगरपुर वे० सं० 384

(ख) चारणी वेलि साहित्य

(१) किसनजी री वेल[1] (प्रकाशित)	[illegible]	सं० १६०० के आसपास [illegible]
(२) गुणचाणिक वेल[2] (प्रकाशित)	[illegible]	[illegible]
(३) देईदास जैतावत री वेल[3] (प्रकाशित)	[illegible]	सं० १६[illegible] के आसपास [illegible]
(४) रतनसी खीवावत री वेल	[illegible]	सं० १६[illegible] के आसपास [illegible]
(५) उदैसिंघ री वेल[4]	[illegible]	सं० १६[illegible] के आसपास [illegible]
(६) चादाजी री वेल[5]	[illegible]	सं० १६[illegible] [illegible]
(७) क्रिसन रुकमणी री वेल[7]	राठोड़ पृथ्वीराज	सं० १६[illegible] [illegible]
(८) त्रिपुर सुन्दरी री वेल[8]	जसवन्त	सं० १६[illegible] [illegible]
(९) रायसिंघ री वेल[9]	[illegible]	सं० १६५३ के आसपास [illegible]
(१०) महादेव पार्वती री वेल[10]	[illegible]	सं० १६[illegible] [illegible]
(११) राउ रतनरी वेल[11]	कल्याणदास महडू	सं० १६[illegible] के आसपास [illegible]

१—अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर, ह० प्र० न० ६६ (ग), पृ० २५७–५८।
वर्तमान लेखक द्वारा प्रकाशित, मरुवाणी (जयपुर) वर्ष ४ अंक १२ (दि० ५६)

२—प्रकाशित-मरुवाणी (जयपुर) वर्ष ४, अंक ५ (मई, १९५६)

३—अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर हस्तलिखित प्रति न० १३६ (ग) पृ० १८२–८४
वर्तमान लेखक द्वारा प्रकाशित, वरदा (बिसाऊ) वर्ष ३, अंक ४

४—अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर ह० प्र० संख्या ६२ (ग) पृ० ४६–५५ तथा राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी ह० प्र० संख्या १४६

५—अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर ह० प्र० स० १३६ (ग) पृ० १८१–८२

६—मोतीचंद खजाची, बीकानेर के संग्रहालय का गुटका

७—प्रकाशित–इसके कई संस्करण निकल चुके है।

८—अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर ह० प्र० स० २७२

९—अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर ह० प्र० स० १२० (द) पृ० ४२६–३५ तथा १२६ (क) पृ० १–२

१०—वही ह० प्र० स० ६८ (क) पृ० १–२५

११—साहित्य संस्थान, उदयपुर, ह० प्र० स० १७१६

(१२) सूरसिंघ री वेल[1]	गाडण चोलो	स० १६७२	३१
(१३) सोभा री वेल[2]	सोभा	स० १६८३ (लिपिकाल)	

अठारहवी शती का साहित्य

(क) जैन वेलि साहित्य :

✓(१) प्रवचन रचना वेलि[3]	जिनसमुद्र सूरि	स० १६९७–१७४० के मध्य	अपूर्ण
(२) बारह भावना वेलि[4]	जयसोम	स० १७०३ शुक्ल पक्ष ढाल की तेरह मगलवार	१३
(३) हीरानद वेलि[5]	शुभकर	स० १७१२ (तप सयम भेद सगीते)	७४
✓(४) गुणसागर पृथ्वी वेलि[6]	गुणसागर	स० १७२४ के आसपास	४६
(५) आदिनाथ वेलि[7]	भट्टारक धर्मचद्र	स० १७३० आषाढ ५ भाग की नवमी	
(६) षडलेश्या वेलि[8]	साह लोहट	स० १७३०	

१—अनूप सस्कृत लायब्रे री, बीकानेर ह० प्र० स० १२६ (ख) पृ० २–३

२—श्री मुकनसिंह के पास सुरक्षित एक गुटके मे यह लिपिबद्ध है। यह ढाई पन्नो मे लिखी गई है। प्रत्येक पन्ने मे २३ पक्तियाँ और प्रत्येक पक्ति मे २३ अक्षर हैं। इसका विषय भगवद्भक्ति से सम्बन्धित है। इसका रचयिता सोभा प्रसिद्ध भक्त रहा है। नाभादास ने अपने 'भक्तमाल' के पद सख्या ९६ मे जिन १८ भगवज्जनो का उल्लेख किया है उनमे सोभा का नाम सर्वप्रथम है। यह वेलि बहुत सभव है पृथ्वीराज कृत 'क्रिसन रुकमणी री वेलि' से पूर्व की रचना हो। इसका छद वेलियो है यो प्रारभ मे लिखा है 'राग विलावल' इसकी पुष्पिका इस प्रकार है—

"सवत १६८३ वर्षे थावर वारे कृष्ण पक्षे तिथि दूज कडैल ग्रामे स्वामी पडसीजी का स्थले। पोथी लिखत भया घडसीजी का सिप नरहरिदास पठनार्थ दादूपथी। वंस .।"

३—लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्या मदिर, अहमदावाद का मुनि पुण्य विजय जी का सग्रह, ग्रथाक ६३२०

४—अभय जैन ग्रथालय, बीकानेर ह० प्र० स० ८५८६

५—इसकी हस्तलिखित प्रति कोटा मे महोपाध्याय विनयसागर जी के सग्रह मे है। यह एक ऐतिहासिक रचना है। इसमे श्वेताम्बर पल्लीवाल गच्छ के आचार्य हीरानद सूरि का सुयश वर्णित है।

६—भारतीय सस्कृति विद्या मदिर, अहमदाबाद का कस्तूरभाई मणिभाई का सग्रह।

७—दिगम्बर जैन मदिर (चौधरियो का) मालपुरा गुटका स० ५०

८—दिगम्बर जैन मदिर, विजयराम पाड्या, जयपुर

(ख) चारणी वेलि साहित्य

(१)	किसनजी री वेल[1] (प्रकाशित)	गाडण [illegible]	सं० १६०० के आसपास ८८
(२)	गुणचाणिक वेल[2] (प्रकाशित)	चूंडो दधवाड़िया	१७वीं शती का [illegible] [illegible]
(३)	देईदास जैतावत री वेल[3] (प्रकाशित)	आसो भाणोत	सं० १६१३ के आसपास ८३
(४)	रतनसी खींवावत री वेल[4]	दूदो विसराल	सं० १६१४ के आसपास ७८
(५)	उदैसिंघ री वेल[5]	रामा सांदू	सं० १६१६ के आसपास ५७
(६)	चादाजी री वेल[6]	वीठू मेहा रूमनाणी	सं० १६२८ के बाद [illegible]
(७)	क्रिसन रुखमणी री वेल[7]	राठौड़ पृथ्वीराज	सं० १६३७-४८ के मध्य ३०५ से ३०७
(८)	त्रिपुर सुन्दरी री वेल[8]	जनवन्त	सं० १६४३ (लिपिकाल) ६ दोहे कुंडलिया
(९)	रायसिंघ री वेल[9]	सांदू माला	सं० १६५३ के आसपास ४३
(१०)	महादेव पार्वती री वेल[10]	आढा किसना	सं० १६६०-१७०० ३८?
(११)	राउ रतनरी वेल[11]	कल्याणदास महडू	सं० १६६८-८८ के मध्य १०३

१—अनूप सस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर, ह० प्र० स० ६६ (ड), पृ० २५७–५८।
वर्तमान लेखक द्वारा-प्रकाशित, मरुवाणी (जयपुर) वर्ष ४ अक १२ (दिस० ५६)

२—प्रकाशित-मरुवाणी (जयपुर) वर्ष ४, अक ५ (मई, १६५६)

३—अनूप सस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर हस्तलिखित प्रति स० १३६ (८) पृ० १८२–८४
वर्तमान लेखक द्वारा प्रकाशित, वरदा (बिसाऊ) वर्ष ३, अक ४

४—अनूप सस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर ह० प्र० सख्या ६० (ग) पृ० ४३–५५ तथा
राजस्थानी शोध सस्थान, चौपासनी ह० प्र० सख्या १४६

५—अनूप सस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर ह० प्र० स० १३६ (७) पृ० १८१-८२

६—मोतीचद खजाची, बीकानेर के सग्रहालय का गुटका

७—प्रकाशित–इसके कई सस्करण निकल चुके है।

८—अनूप सस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर ह० प्र० स० २७२

९—अनूप सस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर ह० प्र० स० १२० (द) पृ० ४२६–३५ तथा १२६
(क) पृ० १–२

१०—वही ह० प्र० स० ६८ (क) पृ० १–२५

११—साहित्य सस्थान, उदयपुर, ह० प्र० स० १७१६

(१२) सूरसिंघ री वेल[1]	गाडण चोलो	स० १६७२	३१
(१३) सोभा री वेल[2]	सोभा	स० १६८३ (लिपिकाल)	

अठारहवी शती का साहित्य

(क) जैन वेलि साहित्य :

✓(१) प्रवचन रचना वेलि[3]	जिनसमुद्र सूरि	स० १६९७–१७४० के मध्य	अपूर्ण
(२) बारह भावना वेलि[4]	जयसोम	स० १७०३ शुक्ल पक्ष ढाल की तेरह मगलवार	१३
(३) हीरानद वेलि[5]	शुभकर	स० १७१२ (तप सयम भेद सगीते)	७४
✓(४) गुणसागर पृथ्वी वेलि[6]	गुणसागर	स० १७२४ के आसपास	४६
(५) आदिनाथ वेलि[7]	भट्टारक धर्मचद्र	स० १७३० आषाढ ५ भाग की नवमी	
(६) षडलेश्या वेलि[8]	साह लोहट	स० १७३०	

१—अनूप सस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर ह० प्र० स० १२६ (ख) पृ० २–३

२—श्री मुकनसिंह के पास सुरक्षित एक गुटके मे यह लिपिबद्ध है। यह ढाई पन्नो मे लिखी गई है। प्रत्येक पन्ने मे २३ पक्तियाँ और प्रत्येक पक्ति मे २३ अक्षर है। इसका विषय भगवद्भक्ति से सम्बन्धित है। इसका रचयिता सोभा प्रसिद्ध भक्त रहा है। नाभादास ने अपने 'भक्तमाल' के पद सख्या ९६ मे जिन १८ भगवज्जनो का उल्लेख किया है उनमे सोभा का नाम सर्वप्रथम है। यह वेलि बहुत सभव है पृथ्वीराज कृत 'क्रिसन रुक्मणी री वेलि' से पूर्व की रचना हो। इसका छद वेलियो है यो प्रारभ मे लिखा है 'राग बिलावल' इसकी पुष्पिका इस प्रकार है—

"सवत १६८३ वर्षे थावर वारे कृष्ण पक्षे तिथि दूज कडेल ग्रामे स्वामी घडसीजी का स्थले। पोथी लिवत भया घडसीजी का सिष नरहरिदास पठनार्थ दादूपथी। वैस. ।"

३—लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्या मदिर, अहमदाबाद का मुनि पुण्य विजय जी का सग्रह, ग्रथाक ६३२०

४—अभय जैन ग्रथालय, बीकानेर ह० प्र० स० ८५८६

५—इसकी हस्तलिखित प्रति कोटा मे महोपाध्याय विनयसागर जी के सग्रह मे है। यह एक ऐतिहासिक रचना है। इसमे श्वेताम्बर पल्लीवाल गच्छ के आचार्य हीरानद सूरि का सुयश वर्णित है।

६—भारतीय सस्कृति विद्या मदिर, अहमदाबाद का कस्तूरभाई मणिभाई का सग्रह।

७—दिगम्बर जैन मदिर (चौधरियो का) मालपुरा गुटका स० ५०

८—दिगम्बर जैन मदिर, विजयराम पाड्या, जयपुर

(७) अमृत वेलिनी मोटी[1] सज्झाय (प्रकाशित)	यशोविजय	स० १७००-३६ के मध्य	९६
(८) अमृत वेलिनी नानी[2] सज्झाय (प्रकाशित)	"	"	९६
(९) सुजस वेलि (प्रकाशित)[3]	कांति विजय	स० १७४५ के आसपास	९ दाने
(१०) संग्रह वेलि[4]	बालचन्द	स०१७७५ कार्तिक शुक्ला तेरस (लिपिकाल)	
(११) नेम राजुल वेल[5] (अभंग वेल)	चतुर विजय	स० १७७३ पौष सुदी १४ गुरुवार	१०४
(१२) नेमि स्नेह वेलि[6]	जिन विजय		१० दाने
(१३) विक्रम वेलि[7]	मति सुन्दर		

(ख) चारणी वेलि साहित्य

(१) रघुनाथ चरित्र नव रस[8] वेलि	महेसदास	१८वीं शती का प्रारम्भ	१६७
(२) डूंगरसीजी री वेलि[9]	समयर	स० १७१७-३८ (लिपिकाल)	८६
(३) अनोपसिंघ री वेल[10]	गाडण वीरभाण	स० १७८६ से पूर्व	९१

(ग) लौकिक वेलि साहित्य

(१) पीर गुमानसिंघ री वेल (प्रकाशित)[11]		१८वीं शती का अन्त	१०६

१—गुर्जर साहित्य संग्रह यशोविजय पहला भाग, पृ० ४३५-३८

२—वही, पृ० ४३४-३५

३—सुजस वेलि भास स० मोहनलाल दलीचंद देसाई प्रकाशक-ज्योति कार्यालय, रतनपोल, अहमदाबाद

४—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर हस्तलिखित प्रति सं० १०७२९।

५—मुनिक तिसागरजी के संग्रहालय से प्राप्त

६—कल्पना वर्ष ७, अंक ४ (अप्रैल, १९५६) मे नाहटाजी द्वारा उद्धृत

७—स्व० पंडित उमाशंकर द्विवेदी 'विरही,' उदयपुर का संग्रह

८—उदयपुर के कविराव मोहनसिंह के सौजन्य से प्राप्त

९—इसकी हस्तलिखित प्रति बीकानेर के बडे उपाश्रय मे है। इसमे कवि ने जैसलमेर निवासी राउलक्रम (?) की सुपुत्री तथा अपयराज सीसोदिया की दोहित्री का प्रचलित परिपाटी के अनुसार नखशिख वर्णन किया है। इसका नायक राठौड वंशीय उदावत डूंगरसी है।

१०—अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर ह० प्र० सं० १२६ (घ) पृ० ४-५।

११—शिवसिंह चोयल द्वारा प्रकाशित वरदा (बिसाऊ) वर्ष २, अंक १, पृ० १३-२१

उन्नीसवी शती का साहित्य

(क) जैन वेलि साहित्य :

(१) जीव वेलडी[1]	देवीदास	स० १८२४ के आसपास	२१
(२) वीर जिन चरित्र वेलि[2]	ज्ञान उद्योत	स० १८२५ के आसपास	१७
(३) शुभ वेलि (प्रकाशित)[3]	वीर विजय	स० १८६० चैत्र शुक्ला ११	
(४) स्थूलि भद्रनी शीयल वेल (प्रकाशित)[4]	,,	स० १८६२ पोष शुक्ला १२ गुरुवार	१८ ढाल
(५) स्थूलि भद्र कोश्या रस वेलि[5]	माणकविजय	स० १८६७	१७ ढाल
(६) नेमिश्वर स्नेह वेलि[6]	उत्तम विजय	स० १८७८ आश्विन शुक्ला पचमी शुक्रवार	१५ ढाल
(७) सिद्धाचल सिद्ध वेलि[7]	उत्तमविजय	स० १८८५ कार्तिक सुद १५	१३ ढाल
(८) नेमिनाथ रस वेलि[8]	,,	स० १८८९ फागुण सुदि ७	
(९) कल्प वेल[9]	—	स० १९२३ (लिपिकाल) अपूर्ण	

(ख) लौकिक वेलि साहित्य :

(१) अकल वेल[10]		१९ वी शती (लिपिकाल)	२२
(२) बावा गुमान भारती री वेल[11]	चिमनजी कविया	१९ वी शती का उत्तरार्द्ध	४४

उपर्युक्त वेलियो के अतिरिक्त निम्नलिखित पाँच वेलियो का उल्लेख और मिलता है—

१—शास्त्र भण्डार मन्दिर विजयराय पाड्या, जयपुर गुटका स० ७२ पत्र २३

२—अभय जैन ग्रथालय, बीकानेर ह० प्र० स० ८५१२

३—प्रकाशित वीरविजय उपासरा, अहमदाबाद

४—प्रकाशित शा मणिलाल गोकलदास भट्टीनीपोल, अहमदाबाद

५—जैन गुर्जर कवियो भाग ३, खड १ मोहनलाल दलीचन्द देसाई पृ० २७५–२७६

६—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, हस्त लिखित प्रति सख्या २०१७

७—जैन गुर्जर कवियो भाग ३, खड १ देसाई, पृ० २९५–३०५।

८—ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, वडोदा ह० प्र० स० १८८८३

९—राजस्थानी शोध सस्थान, चौपासनी ह० प्र० स० ८४

१०—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ह० प्र० स० २८२९

११—शक्तिदान कविया, जोधपुर के सौजन्य से प्राप्त

(१) मालदेवजी री वेलि[1]
(२) छन्दजात भ्रमर वेलि[2]
(३) दयावेलि[3]
(४) आध्यात्मिक प्रमाद वेलि[4]

हमने इन्हे प्राप्त करने का प्रयत्न किया पर असमर्थ रहे अतः इनके रचनाकार और रचना-काल के बारे मे निश्चित रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता। बहुत अधिक सभावना है राजस्थान और गुजरात के अन्य सग्रहालयो मे और भी कई अज्ञात वेलियाँ हो।

राजस्थानी वेलि साहित्य की इस विकास-रेखा से यह स्पष्ट है कि १५वी शती से १६वी शती तक वेलि साहित्य की परम्परा बिना किसी रोक टोक के चलती रही। जैन वेलि साहित्य के समानान्तर चारणी वेलि साहित्य का भी सृजन होता रहा। चारण कवियो ने एक ओर वीरगाथा काल से प्रभावित होकर (ऐतिहासिकता की रक्षा करते हुए) अपने आश्रयदाताओ का कीर्तिगान गाया तो दूसरी ओर भक्तिकाल से प्रभावित होकर किसी न किसी अलौकिक सत्ता (देवी आदि) के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की। भक्त-हृदय और वीर-हृदय इन दोनो का योग वेलि क्षेत्र मे चारणो द्वारा प्रतिष्ठित हुआ। इन कवियो की भाषा जैन कवियो की तरह सरल, सुबोध न होकर साहित्यिक डिंगल है और छन्द भी छोटा साणोर (वेलियो, सोहणो, खुडद साणोर आदि भेद) है जिसे प्राय सबने अपनाया है।

जैन वेलि साहित्य का प्रमुख स्वर आध्यात्मिक है। एक ओर रूपक तत्वो से श्रृङ्गार के द्वारा शान्तरस को प्रतिष्ठित किया गया है तो दूसरी ओर तात्विक बोध देकर विराग भाव जगाया गया है। ऐतिहासिक जैन वेलि साहित्य के द्वारा सैद्धान्तिक चर्चा और पाट-परम्परा का वर्णन भी किया गया है।

जैन और चारणी वेलि साहित्य के साथ-साथ लौकिक वेलि साहित्य की एक धारा और बही है। यह वेलि साहित्य लम्बी लम्बी रातो तक किसी देवी-देवता के मन्दिर के प्रागण मे गाया जाता रहा है।

इस प्रकार हमने सामान्य रूप से सस्कृत-प्राकृत-अपभ्र श, ब्रज, गुजराती और वर्तमान काल के हिन्दी वेलि साहित्य का तथा विशेष रूप मे राजस्थानी मे रचित वेलि साहित्य का इतिहास प्रस्तुत किया है। असभव नही कि अन्य प्रातीय एव

१—कल्पना वर्ष ७, अक ४ (अप्रैल, १९५६) मे नाहटाजी द्वारा उद्धृत
२—वही
३—वही
४—वही

द्रविड परिवार की भाषाओं ने भी वेलि-परम्परा को जीवित रखा हो। समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि वेलि साहित्य का इतिहास उस सरिता की तरह है जो विरल रूप मे अपने उद्गम स्थल से निकल कर मध्यवर्ती भागो (मैदानो) मे विपुल प्रवाह के साथ बहती हुई मुहाने तक आते आते सूख सी गई है।[1]



१—इधर सन् १९६३-६४ मे श्री मुकनसिंह ने प्राचीन चली आती हुई चारणी शैली मे ही अमर शहीद शैतानसिंह भाटी, लोक देवता पाबूजी और वीर अमरसिंह राठौड पर तीन वेलियाँ लिखकर वेलि साहित्य की परम्परा को फिर से जीवित किया है।

'गुण चाणिक वेल' के अन्त मे न तो रचना-तिथि दी है न लिपि-सवत। पर इसके रचयिता चूडो दधवाडिया पृथ्वीराज के समकालीन कवि माधोदास[1] दधवाडिया के पिता थे। ये स्वय अच्छे कवि थे। पृथ्वीराज ने अपनी 'वेलि' के लिए चूडोजी से सम्मति न माग कर माधोदास से मागी। इससे अनुमान है कि वेलि के रचनाकाल के समय चूडौजी इस लोक से प्रस्थान कर चुके थे। अत चाणिक वेल को पृथ्वीराज की वेलि से पूर्व की रचना मानना ही अधिक समीचीन होगा।

'देईदास जैतावत री वेलि' के अन्त मे भी न तो रचना-तिथि का उल्लेख है न लिपि-सवत ही। डा० हीरालाल माहेश्वरी ने इसका रचनाकाल म० १६२० के आसपास माना है।[2] वेलि को पढने से ज्ञात होता है कि इसमे हरमाडा युद्ध[3] (वि० स० १६१३ फाल्गुन वदी ६) के उपरान्त की घटनाओ का वर्णन नही है। केवल जैसलमेर विजय तथा राणा उदयसिह, राव कल्याणमल और जयमल वीरमदेवोत की सयुक्त सेनाओ को भगा देने का ही उल्लेख है। देईदास से सम्बन्ध रखने वाली ऐसी किसी घटना का—जो इस युद्ध के उपरान्त घटित हुई हो—इसमे वर्णन नही है। अत इसकी रचना सवत १६१३ मे उक्त युद्ध के उपरान्त शीघ्र ही हुई होगी।

'रतनसी खीवावत री वेलि' के अन्त मे रचना—काल सम्बन्धी किसी प्रकार का उल्लेख नही है। वेलि को पढने से ज्ञात होता है कि इसमे अजमेर के शासक हाजीखा का दमन करने के लिए अकबर द्वारा भेजी गई सेना का वर्णन है। हाजीखा के भाग जाने पर मुगल सेना ने जैतारण पर आक्रमण किया था। इसी की सुरक्षा के लिए काव्य—नायक रतनसी ने अपने प्राणो की बाजी लगा दी। जैतारण पर मुगल सेना का अधिकार हो गया। जैतारण की यह घटना स० १६१४ चैत्र मास कृष्ण पक्ष मे हुई थी[4]। दृश्य—चित्रण की सजीवता देखते हुए अनुमान है कि वेलिकार इस युद्ध मे उपस्थित रहा होगा। सभव है युद्ध के उपरान्त ही वि० स० १६१४ मे उसने इसे रचा हो।

'उदैसिघ री वेल' के अन्त मे भी रचना—तिथि का उल्लेख नही है। इसके रचयिता रामा सादू महाराणा उदयसिह के समकालीन थे[5]। ख्यातकार के अनुसार

१—पृथ्वीराज ने माधोदास की प्रशसा मे यह दोहा लिखा है—

चूडे चत्रभुज सेवियो, ततफल लागो तास।
चारण जीवो चार जुग, मरो न माधोदास॥

२—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १२०

३—उदयपुर राज्य का इतिहास प्रथम खड डा० गो० ही० ओझा पृ० ४०८

४—जोधपुर राज्य का इतिहास प्रथम खड ओझा पृ० ३२२, पाद टिप्पणी

५—नैणसी की ख्यात भाग १, पृ० १११

चित्तौड युद्ध (वि० स० १६२४) के पूर्व राणा उदयसिंह ने रामा सादू के हितार्थ ही अपने सम्बन्धी (नाती) भाण की हत्या की थी तथा इस हत्या के प्रायश्चित स्वरूप ही बून्दी के राव सुरजन हाडा के साथ द्वारिकाधीश की यात्रा को गये थे। इस यात्रा का समय वि० स० १६११ (बून्दी तथा रणथभोर पर राव सुरजन हाडा का आधिपत्य) के पश्चात का ही हो सकता है जब कि दोनो (राणा उदयसिंह तथा राव सुरजनहाडा) राजपुरुषो ने राजनीतिक जीवन मे अवकाश ग्रहण कर लिया हो। वेलिकार ने चरित्र-नायक उदयसिंह के अपराजेय होने का जो उल्लेख किया है वह उनके प्रभाव के कारण मालदेव की सेना के युद्ध-पूर्व पलायन करने (वि० स० १६१३) से सम्बन्धित है। सवत १६१४ से १६२४ तक का समय उदयसिंह के लिए शातिमय वातावरण का समय है। इसीकाल मे उन्होने धार्मिक एव निर्माण-कार्य सम्पादित किये। सम्भव है रामा सादू इसी बीच इनके सरक्षण मे रहे हो। वेलिकार ने सवत १६१६ तथा उसके बाद की इतिहास प्रसिद्ध घटनाओ का उल्लेख नही किया है जबकि चित्तौड युद्ध मे जूझने वाले चादा वीरमदेवोत सदृश वीरो की अपने अन्य गीतो मे प्रशसा की है। अत वेलि की रचना का समय स० १६१६ के आसपास का होना चाहिये।

वीठू मेहा दूसलाणी कृत 'चादाजी री वेलि' के अन्त मे भी रचना-तिथि सबधी कोई उल्लेख नही है। पुष्पिका मे लिखा है 'लिखत प० जगन्नाथ भेड मध्ये ।। स० १७४२ वर्षे फागुण वदी १ शनौ' इससे इतना तो निश्चित है कि इसकी रचना स० १७४२ फागुण वदी १ शनिवार के पूर्व हो चुकी थी। पर जब हम वेलिकार के समय और रचना-विषय पर विचार करते है तो पता चलता है कि इस वेलि की रचना सत्रहवी शती के पूर्वार्द्ध मे होनी चाहिए।[1] वेलि मे चादा जी के अजमेर, रायपुर, फलौदी, बिलाडा, ईडरगढ, मेडता, नागौर आदि के युद्धो का वर्णन है। ये प्रदेश मारवाड के अधिपति राव मालदेव के अधीन रहे हैं जिनका शासनकाल स० १५८६-१६१६ रहा है। वेलिकार ने छद सख्या ग्यारह[2] मे अपने भाई सारग देव की मृत्यु का बदला लेने के लिए चादा जी द्वारा नारायणदास के किये गये वध का भी वर्णन किया है। यह घटना चित्तौड युद्ध (वि० स० १६२४) के समय की प्रतीत होती है। अत अनुमान है कि प्रस्तुत वेलि की रचना स० १६२४ के बाद ही किसी समय हुई होगी।

उपर्युक्त चारणी वेलियो के अतिरिक्त निम्नलिखित जैन वेलियाँ भी पृथ्वीराज की वेलि से पूर्व रचित मिलती है —

१—डा० हीरालाल माहेश्वरी ने वीठू मेहा का रचना-काल १७वी शती का पूर्वार्द्ध माना है (दे० राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० ११२)

२—वैर सहोवर विढे वालीयौ, अति चद सुजस हुवौ असहाय।
पैसे गढि चित्तौड पाडीयौ, दूजडा हथ नाराईण दास ।।११।।

रचना-नाम	रचनाकार	रचना-काल
(१) कर्मचूर व्रत कथा वेलि	भट्टारक सकलकीर्ति	सोलहवी शती का आरम्भ
(२) चिहु गति वेलि	वाछा	स० १६२० (लिपिकाल)
(३) जम्बूस्वामी वेल	सीहा	स० १५३५ (लिपिकाल)
(४) रहनेमि वेल	”	”
(५) प्रभव जम्बूस्वामी वेल	—	स० १५४८ (लिपिकाल)
(६) पचेन्द्रिय वेलि	ठकुरसी	स० १५५०
(७) नेमिश्वर की वेलि	”	स० १५५० के आसपास
(८) गरभ वेलि	लावण्य समय	स० १५५३–८६ के मध्य
(९) गरभ वेलि (जइत वेलि)	सहज सुन्दर	स० १५७०–८२ के मध्य
(१०) वेलि	छीहल	स० १५७५–८४ के मध्य
(११) नेमि परमानन्द वेलि	जयवल्लभ	स० १५७७ के आसपास
(१२) वल्कलचीरकुमार ऋषिराज वेलि	कनक	स० १५८२–१६१२ के मध्य
(१३) क्रोध वेलि	मल्लिदास	स० १५८८ वैशाख वदी ४ रविवार
(१४) सुदर्शन स्वामीनी वेलि	वीरचन्द	सोलहवी शती का अन्त
(१५) जम्बूस्वामिनी वेल	वीरचन्द	”
(१६) बाहुबलीनी वेलि	वीरचन्द	”
(१७) चदनबाला वेलि	अजितदेवसूरि	स० १५९७–१६२९ के मध्य
(१८) सव्वतय वेलि प्रबन्ध	साधु कीर्ति	स० १६१४ के आसपास
(१९) गुणठाणा वेलि	जीवधर	सं० १६१९ (लिपिकाल)
(२०) लघु बाहुबली वेलि	शातिदास	स० १६२५ (”)
(२१) जइतपद वेलि	कनक सोम	स० १६२५
(२२) गुरू वेलि	भट्टारक धर्मदास	स० १६३८ के पूर्व

इधर जो लौकिक वेलियाँ प्राप्त हुई है वे पृथ्वीराज कृत वेलि से पूर्व की ही ठहरती है। 'रामदेवजी री वेल' तथा 'रूपादे री वेल' के रचयिता सत हरजी भाटी रामदेवजी के समकालीन थे। इस विषय के दोनो के सम्बन्ध मे काफी प्रवाद भी प्रचलित है।[1] रामदेव जी का समय वि० स० १४६१ से १५१५ तक माना गया है अत यही समय सत हरजी भाटी का भी रहना चाहिये। सत सहदेव ने आईमाता की वेल मे रचना-तिथि का निर्देश भी कर दिया है।[2] 'तोलादे री वेल' के प्रमुख पात्रो का ऐतिहासिक अस्तित्व रामदेवजी के समय रहा है क्योकि वे उनके भक्त माने गये

१—वरदा (बिसाऊ) वर्ष १, अंक १ पृ० ३७-४६

२—सवत १५७६ मास भादरवे बीज आई चदराजली

है। वेलि मे भी इसका सकेत है। 'रत्नादे री वेल' की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध मे कोई जानकारी नही मिल पाई है अन्त मे 'तेजो गावे बाइ थारो सोलमा' मे किसी तेजो नामक कवि का सकेत मिलता है। इसे छोड भी दे तो भी निम्नलिखित वेलियाँ तो पृथ्वीराज कृत वेलि के पूर्व की ही ठहरती है—

(१) रामदेवजी री वेल	सत हरजी भाटी	१५वी शती का उत्तरार्द्ध
(२) रूपादे री वेल	"	"
(३) तोलादे री वेल		
(४) आईमाता री वेल	सत सहदेव	१५७६ भादवा मास की चन्द्रावली बीज

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह निर्विवाद रूप से स्वीकार करना पडेगा कि पृथ्वीराज की 'वेलि' वेलि-काव्य-परम्परा की प्रवर्त्तक न होकर चली आती हुई परम्परा मे ही चिन्तामणि की भाति अपना उज्ज्वल प्रकाश विकीर्ण करती रही है जिसके आगे न तो पूर्ववर्त्ती वेलियो का प्रकाश ठहर सका है न परवर्त्ती वेलियो का। वह काव्य-स्थली का उत्तु ग हिमाचल है जिस पर आरोहण कर दोनो ओर के नयनाभिराम दृश्य देखे जा सकते है।

यहाँ पृथ्वीराज की 'वेलि' के प्रेरणा-स्त्रोत पर विचार कर लेना भी अप्रासगिक न होगा। डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित ने इस विषय मे लिखा है 'तुलसीदास वेलिकार के समकालीन थे और उस समय तुलसी का यश सूर्य परमोन्नति प्राप्त कर चुका था। तुलसीदास ने 'पार्वती मगल' तथा 'जानकी मगल', दो-दो मगल काव्यो की रचना की है सभवत पृथ्वीराज को तुलसी के इन्ही मगलो से अपनी रचना की प्रेरणा मिली होगी।[1] यह मत इसलिये नही माना जा सकता क्योकि पृथ्वीराज से पूर्व भी वेलि-काव्यो की एक सुदीर्घ परम्परा रही है।

डा० हीरालाल माहेश्वरी[2] ने करमसी कृत 'क्रिसन जी री वेलि' के साथ तथा मुकनसिह[3] ने अन्य पूर्ववर्त्ती चारणी वेलियो-गुणचाणिक वेल, देईदास जैतावत री वेल, रतन सी खीवावत री वेल, उदैसिघ री वेल-के साथ पृथ्वीराज कृत 'क्रिसन रुक्मणी री वेल' की समानता कर यह माना है कि पृथ्वीराज की वेलि मे पूर्ववर्त्ती वेलिकारो द्वारा प्रयुक्त शब्दावलियो, वाक्यावलियो एव पदावलियो का सहज मे ही प्रयोग हो गया है। पर यह मान्यता ठीक प्रतीत नही होती। उद्धृत छदो मे समानता

१—स्वसपादित वेलि भूमिका, पृ० ४९-५०

२—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १६३-१६५

३—सेनानी साप्ताहिक वर्ष ११ अक २१ (१८-३-६१), पृ० २ व ६ तथा अक २२ (२५-३-६१), पृ० २ व ६ मे "क्या पृथ्वीराज कृत 'वेलि क्रिसन रुक्मणी री' सर्वथा मौलिक रचना है ?" शीर्षक लेख।

नही है। जैसी समानताएँ उक्त विद्वानो ने बतायी है वैसी समानताएँ किन्ही भी दो कृतियो मे मिल सकती हैं और उन पर वाल्मीकि अथवा कालिदास का प्रभाव घोषित किया जा सकता है। फिर भी यह बहुत सभव है कि पृथ्वीराज ने अपने से पूर्व रचित इन चारणी वेलियो को देखा हो।

द्वितीय अध्याय

वेलि - नाम

काव्य विशेष के नामकरण मे कई प्रवृत्तियाँ काम करती है। कभी वर्ण्य-विषय, कभी छद, कभी शैली, कभी चरित्र, कभी घटना, कभी स्थान और कभी केवल मात्र आकर्षण वृत्ति मे प्रेरित होकर कवि लोग अपनी रचनाओ को विविध सज्ञाओ से अभिहित करते हैं।[1]

१—श्री अगरचन्द नाहटा ने 'प्राचीन भाषा-काव्यों की विविध सज्ञाएँ' शीर्षक निबन्ध मे ऐसी ११५ काव्य-सज्ञाओ का परिचय दिया है। उनके नाम इस प्रकार है —

(१) रास (२) सधि (३) चौपाई (४) फागु (५) धमाल (६) विवाहलो (७) धवल (८) मगल (९) वेलि (१०) सलोका (११) सवाद (१२) वाद (१३) झगडो (१४) मातृका (१५) बावनी (१६) कक्क (१७) बारहमासा (१८) चौमासा (१९) पवाडा (२०) चर्चरी (चाचरि) (२१) जन्माभिषेक (२२) कलश (२३) तीर्थ माला (२४) चैत्य परिपाटी (२५) सघ वर्णन (२६) ढाल (२७) ढालिया (२८) चौढालिया (२९) छढालिया (३०) प्रबध (३१) चरित (३२) सबध (३३) आख्यान (३४) कथा (३५) सतक (३६) बहोत्तरी (३७) छत्तीसी (३८) सत्तरी (३९) बत्तीसी (४०) इक्कीसो (४१) इकतीसो (४२) चौबीसी (४३) बीसी (४४) अष्टक (४५) स्तुति (४६) स्तवन (४७) स्तोत्र (४८) गीत (४९) सझाय (५०) चैत्यवदन (५१) देववदन (५२) वीनती (५३) नमस्कार (५४) प्रभाती (५५) मगल (५६) साझ (५७) बधावा (५८) गहूली (५९) हीयाली (६०) गूढा (६१) गजल (६२) लावणी (६३) छद (६४) नीसाणी (६५) नवरसो (६६) प्रवहण (६७) वाहण (६८) पारणो (६९) पट्टावली (७०) गुर्वावली (७१) हमचडी (७२) हीच (७३) मालामालिका (७४) नाममाला (७५) रागमाला (७६) कुलक (७७) पूजा (७८) गीता (७९) पट्टाभिषेक (८०) निर्वाण (८१) सयम श्री विवाह वर्णन (८२) भास (८३) पद (८४) मजरी (८५) रसावलो (८६) रसायन (८७) रसलहरी (८८) चद्रावला (८९) दीपक (९०) प्रदीपिका (९१) फुलडा (९२) जोड (९३) परिका (९४) कल्पलता (९५) लेख (९६) विरह (९७) मूदडी (९८) सत (९९) प्रकाश (१००) होरी (१०१) तरग (१०२) तरगिणी (१०३) चौक (१०४) हुडी (१०५) हरण (१०६) विलास (१०७) गरबा (१०८) बोली (१०९) अमृतध्वनि (११०) हालरियो (१११) रसोई (११२) कडा (११३) झूलणा (११४) जकडी (११५) दोहा, कुडलिया, छप्पय आदि। (नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५८ अक ४, पृ० ४१७-३६)

वेलि नाम भी उनमे से एक है। यहाँ हम वेलि-नाम पर निम्नलिखित दृष्टियो से विचार करेगे—

(क) वेलि शब्द की व्युत्पत्ति
(ख) वेलि शब्द का कोषपरक अर्थ
(ग) वेलि-साहित्य मे प्रयुक्त वेल या वेलि शब्द का तात्पर्य
(घ) वेलि-नाम पर विद्वानो के विभिन्न मत

(क) वेलि शब्द की व्युत्पत्ति :

वेलि या वेल शब्द का सस्कृत रूप 'वल्ली' है जिसका एक रूपान्तर वल्लरी भी है। वेलि शब्द की व्युत्पत्ति पर कतिपय विद्वानो के मत इस प्रकार है –

(१) डॉ० भोलानाथ तिवारी 'वेलि' शब्द को लता के पर्यायवाची शब्दो से व्युत्पन्न नही मानते। उनके अनुसार यह सस्कृत 'विलास' से बना है। विकास-रेखा यो है[1]—

विलास > विलाग्र > विल्ल > वेल्लि > वेलि।

(२) डा० भोलाशकर व्यास के अनुसार 'वेल' या 'वेलि' की व्युत्पत्ति वल्ली या वल्लरी अथवा अवलि किसी से न होकर वेलि (स० धातु-वेल्ल वढना, बलखाना) से है। इसका अर्थ भी वही है जो वल्ली का है[2]।

(३) डा० सरनामसिंह शर्मा 'अरुण' 'वेलि' को वल्लरी से व्युत्पन्न न मानकर 'आवलि' से मानते है। 'आवलि' के आदि स्वर लोप से वली > वल्लि > वेलि का विकास सभव है[3]।

(४) डा० टैसीटोरी ने प्रा० वेल्लि से इसका विकास यो बतलाया है[4]-वेलु, वेलउ (पु०) (प० ५४८) प्रा० वेल्लि, वेल्ला (स्त्री०)

(५) श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार 'वेलि' शब्द का विकास सस्कृत वल्ली से हुआ। सयुक्त वर्ण के पूर्व का जब लघु वर्ण दीर्घ होता है तब आगे के वर्ण दीर्घ होने पर लघु होने लगते है। वल्ली का 'व' दीर्घ हुआ अर्थात् 'वे' हुआ तो 'ली' ह्रस्व हो गई और फिर उसमे का 'इकार' हट गया।[5]

१—लेखक के नाम पत्र दिनाक ३१-३-६१
२—लेखक के नाम पत्र दिनाक ८-२-६१
३—लेखक की बातचीत अपने जयपुर प्रवास मे
४—पुरानी राजस्थानी अनुवादक-नामवरसिंह, पृ० ५०, मू० ले० टैसीटोरी
५—लेखक के नाम पत्र . दिनाक २०-४-६१

(६) श्री कैलाशचद्र मिश्र के अनुसार 'वल्ली' का दन्त्य 'व' कार के सम्पर्क से 'व' 'के' अ' का 'ए' (दन्त्य) हो जायगा। 'वल्ल' के 'ल' को कम करने से 'व' का स्वर दीर्घ 'ए' कार मे वदल सकता है[1]।

(७) डा० बाबूराम सक्सेना के अनुसार 'वेल', 'वेलि' की व्युत्पत्ति स० वल्ली मे ही माननी ठीक होगी। वल्ली का एक उच्चारण वेल्ली (तु० शय्या>सेज्जा) भी रहा होगा। स० वल्ली स्वय कोई देशी शब्द होगा जिसे स० ने आत्मसात कर लिया होगा[2]।

(८) डा० माताप्रसाद गुप्त लिखते है कि वेल शब्द प्राकृत 'वेल्ल' है जिसका अर्थ 'विलास' होता है। अनेक विवाह सम्बन्धी काव्य 'वेलि' नाम से मिलते है, इसलिए 'वेलि' और 'वेल्न' सम्बन्धित हो सकते है। 'वेल्ल' शब्द क्रिया भी है जिसका अर्थ क्रीडा करना है[3]।

हमारे मत से वेलि या वेल शब्द का सस्कृत रूप वल्ली है जिसका एक रूपान्तर वल्लरी भी है। स० वल्ली शब्द वल्ल धातु मे बना है जिसका अर्थ है छाना या आगे बढना। प्राकृत और अपभ्रश मे इसका रूप 'वेल्लि' हो गया। यही 'वल्लि' शब्द हिन्दी मे 'वेलि' और 'बेल' तथा राजस्थानी मे 'वेलि' और 'वेल' कहलाया।

(ख) वेलि शब्द का कोषपरक अर्थ :

अमरकोषकार ने 'वल्ली तु व्रततिर्लता' कहकर इस सूत्र की व्याख्या की है[४]। प्राकृत मे वेल-वेल्ल-वेल्लइ-वेल्लरी-वेल्ला-वेल्लि-वेल्लिर आदि रूप मिलते हैं[५], जिनके अर्थ इस प्रकार है[६]–

(१) वेल्लि (लता भामह १,५, हेमचद्र १,५८, मार्कण्डेय पन्ना ५, गउड, हाल)।

(२) वेल्ल (केश, बच्चा, आनन्द देशी० ७, ६४)

(३) विली (लहर देशी ७,७३, त्रिविक्रम १,३,१०५,८०)

(४) वेल्लरी (वेश्या ७,९६)

(५) वेल्लिर (लहराने वाला गउड० १३७, विद्ध ५५,८)

१—लेखक के नाम पत्र दिनाक २-२-६१

२—लेखक के नाम पत्र दिनाक २८-४-६१

३—लेखक के नाम पत्र दिनाक २८-४-६१

४—अमरकोष पृ० १३०। श्लोक ६

५—प्राकृत भाषाओ का व्याकरण रिचर्ड पिशल, अनुवादक-डा० हेमचद्र जोशी

६—वही पृ० १६४

हिन्दी-कोशो मे इसके वल्लरी-वल्ली[१], वेल-वेलडी-वेलि[२], वल्लर-वल्लरि-वल्लरी-वल्लि[३], वल्लिका-वल्ली[४], वेल-वेल्लरी-वेल्लि वेल्ली-वेल्लिका[५] आदि रूप दिखायी पडते है। कोशो मे इस शब्द के निम्नलिखित अर्थ मिलते है[६]—

(अ) वेल सज्ञा, पुल्लिग (हिन्दी)

(१) एक प्रसिद्ध कटीला वृक्ष जिसके फल का मोटा कडा छिलका होता है। बिल्व। महाफल।
(२) वह स्थान जहाँ शक्कर तैयार होती है।
(३) बेला
(४) बेल का फूल

(आ) सज्ञा स्त्रीलिग

(१) बहुत ही पतली पेडी और पतले डठलो का वह कोमल और छोटा पौधा जो दूसरे वृक्षो आदि के सहारे ऊपर की ओर बढता हो। लता। वल्ली।
(२) सतान, वश।
(३) नाव खेने का डाड
(४) घोडे के पैर का एक रोग
(५) फीते पर बना हुआ जरदोजी या रेशम का काम
(६) विवाह आदि के अवसरो पर नेगियो को देने का धन
(७) कपडे आदि पर लम्बाई के बल मे बनी हुई फूल पत्तियाँ।

(इ) मुहावरे

(१) बेल बढना—वश वृद्धि होना
(२) बेल मढे चढना— किये हुए काम मे पूरी सफलता होना

(ई) सज्ञा पुल्लिग (फारसी)

(१) एक प्रकार की कुदाली जिसमे मजदूर भूमि खोदते है
(२) सडक आदि बनाने के लिए चिन्ह रूप मे या सीमा निर्धारित करने के लिए चूने आदि से जमीन पर डाली हुई लकीर। एक प्रकार का लम्बा खुरपा।

(उ) वेलसना (क्रिया अकर्मक, हिन्दी)

१—वृहद् हिन्दी कोश (द्वितीय सस्करण) बनारस, ज्ञानमडल लिमिटेड, पृ० ९३७।
२—वही पृ० ९७१
३—वही पृ० १२०१
४—वही पृ० १२०२
५—वही पृ० १२८४
६—नालन्दा विशाल शब्द सागर स० नवलजी, पृ० ९९५

सुख या आनन्द लूटना। भोग करना।[1]

(ऊ) वेल - संज्ञा, पुल्लिग (संस्कृत)

उपवन। बाग।[2]

राजस्थान मे 'वेल' के नाम इस प्रकार मिलते है–

'लता वेल वलि वेलडी वेली व्रतति (वखाण)[3]

रामवेलि और नागरवेल के पर्याय भी इस प्रसग मे द्रष्टव्य है :-

रामवेलि नांम–

राजअनी का रसवती रायवेल सितरग,

अवजन (पुन) प्रियवलका (मधुकर भ्रमत मतंग)[4] ।।५४८।।

नागरवेल नांम–

ताबूली अदीवेल (तव) द्रुज पानदल (दाख)

नागरवेल तबोल नित (अरुण अधर मुख आख)[5] ।।५५६।।

काव्य संज्ञा के अन्तर्गत वेल शब्द के इन सभी अर्थो का समाहार नहीं होता। यहाँ केवल निम्नलिखित अर्थ ही अभिप्रेत है —

(१) लता–आन्तरिक साम्य या आकर्षण-वृत्ति से प्रेरित होकर
(२) सतान, वंश
(३) वेल वढना–वंश वृद्धि होना

} ऐतिहासिक वेलि साहित्य मे मुख्यत

(४) वेल मढे चढना–काम पूरा होना–धार्मिक वेलि-साहित्य में मुख्यत बहुत सभव है इन्ही अर्थो को ध्यान मे रखकर कवियो ने अपनी रचना को 'वेलि' या 'वेल' कहा हो।

(ग) वेलि साहित्य मे प्रयुक्त वेल या वेलि शब्द का तात्पर्य :

सपूर्ण वेलि साहित्य मे वेल या वेलि शब्द निम्नलिखित ६ रूपो (अर्थो) मे प्रयुक्त हुआ है :—

(अ) वेलि–रूपक

(आ) काव्य–सज्ञा

१—नालन्दा विशाल शब्द सागर : स० नवलजी पृ० ९९६

२—वही पृ० १३०२

३—डिंगल-कोष : स० नारायणसिंह भाटी, पृ० २३८

४—वही पृ० १४१

५—वही पृ० १४२

हिन्दी-कोशो मे इसके बल्लरी-व्रल्ली[1], वेल-वेलडी-व्रेलि[2], बल्लर-बल्लरि-वल्लरी-वल्लि[3], वल्लिका-वल्ली[4], वेल-वेल्लरी-वेल्लि वेल्ली-व्रेलिका[5] आदि रूप दिखायी पडते है। कोशो मे इस शब्द के निम्नलिखित अर्थ मिलते है[6]—

(अ) वेल सज्ञा, पुल्लिग (हिन्दी)

(१) एक प्रसिद्ध कटीला वृक्ष जिसके फल का मोटा कडा छिलका होता है। बिल्व। महाफल।
(२) वह स्थान जहाँ शक्कर तैयार होती है।
(३) बेला
(४) बेल का फल

(आ) सज्ञा स्त्रीलिग

(१) बहुत ही पतली पेडो और पतले डठलो का वह कोमल और छोटा पौधा जो दूसरे वृक्षो आदि के सहारे ऊपर की ओर बढता हो। लता। वल्ली।
(२) सतान, वश।
(३) नाव खेने का डाड
(४) घोडे के पैर का एक रोग
(५) फीते पर बना हुआ जरदोजी या रेशम का काम
(६) विवाह आदि के अवसरो पर नेगियो को देने का धन
(७) कपडे आदि पर लम्बाई के बल मे बनी हुई फूल पत्तियाँ।

(इ) मुहावरे

(१) बेल बढना—वश वृद्धि होना
(२) बेल मढे चढना— किये हुए काम मे पूरी सफलता होना

(ई) सज्ञा पुल्लिग (फारसी)

(१) एक प्रकार की कुदाली जिससे मजदूर भूमि खोदते हैं
(२) सडक आदि बनाने के लिए चिन्ह रूप मे या सीमा निर्धारित करने के लिए चूने आदि से जमीन पर डाली हुई लकीर। एक प्रकार का लम्बा खुरपा।

(उ) बेलसना (क्रिया अकर्मक, हिन्दी)

१—वृहत् हिन्दी कोश (द्वितीय सस्करण) बनारस, ज्ञानमडल लिमिटेड पृ० ९३७।
२—वही पृ० ९७१ ३—वही पृ० १२०१
४—वही पृ० १२०२ ५—वही पृ० १२८४
६—नालन्दा-विशाल शब्द सागर स० नवलजी, पृ० ९९५

सुख या आनन्द लूटना । भोग करना ।[1]

(ऊ) वेल सज्ञा, पुल्लिग (संस्कृत)

उपवन । वाग ।[2]

राजस्थान मे 'वेल' के नाम इस प्रकार मिलते है–

'लता वेल वलि वेलडी वेली व्रतति (वखाण)[3]

रामवेलि और नागरवेल के पर्याय भी इस प्रसग मे द्रष्टव्य है –

रामवेलि नाम–

राजध्रनी का रसवती रायबेल सितरग,
अवजस (पुन) प्रियवलका (मधुकर भ्रमत मतग)[4] ।।५४८।।

नागरबेल नाम–

तावूली अदीवेल (तव) दुज पानदल (दाख)
नागरवेल तबोल नित (अरुण अधर मुख आख)[5] ।।५५६।।

काव्य सज्ञा के अन्तर्गत वेल शब्द के इन सभी अर्थो का समाहार नहीं होता। यहाँ केवल निम्नलिखित अर्थ ही अभिप्रेत है —

(१) लता–आन्तरिक साम्य या आकर्पण-वृत्ति से प्रेरित होकर
(२) सतान, वश
(३) वेल बढना–वंग वृद्धि होना

} ऐतिहासिक वेलि साहित्य मे मुख्यत

(४) वेल मढे चढना–काम पूरा होना–धार्मिक वेलि-साहित्य मे मुख्यत वहुत सभव है इन्ही अर्थो को ध्यान में रखकर कवियो ने अपनी रचना को 'वेलि' या 'वेल' कहा हो ।

(ग) वेलि साहित्य में प्रयुक्त वेल या वेलि शब्द का तात्पर्य :

सपूर्ण वेलि साहित्य मे वेल या वेलि शब्द निम्नलिखित ६ रूपो (अर्थो) मे प्रयुक्त हुआ है —

(अ) वेलि–रूपक

(आ) काव्य–सज्ञा

१—नालन्दा विशाल शब्द सागर स० नवलजी पृ० ६६६

२—वही पृ० १३०२

३—डिंगल-कोप स० नारायणसिंह भाटी, पृ० २३८

४—वही पृ० १४१

५—वही पृ० १४२

(इ) छद-गीत

(ई) साथी-सहायक

(उ) लहर-तरग

(ऊ) लता-वल्लरी

(अ) वेलि-रूपक

वेलि को उपमान बनाकर साहित्य मे रूपक बाधने की प्रथा रही है। यह रूपक कभी तो विराट् साग-रूपक के रूप मे प्रस्तुत हुआ है, कभी केवल मात्र साधारण रूपक बनकर ही रह गया है। साधारण रूपको मे 'वेलि' शब्द ससार, शरीर, कनक, पाप, ज्ञान, अमृत, सुयश आदि के साथ उपमान के रूप मे प्रयुक्त हुआ है।

सागरूपक

(१) *वेलि* तसु बीज भागवत वायउ, महि थाणउ प्रिथुदास मुख।
मूल लता, जड अरथ, माडहइ, सुथिर करणि चढि, छाह सुख ।।२६१।।
पत्र अक्खर, दल द्वाला, जस परिमल, नव रस ततु विधि अहो-निसि।
मधुकर रसिक, सु अरथ मजरी, भुगति फूल, फल भुगति मिसि ।।२६२।।
कळि कळम-*वेलि*, वेळि काम धेनुका, चितामणि, सोम-वेलि चत्र।
प्रगटित प्रथमी-प्रियु-मुख-पकजि, अखराउळि मिसि थइ अेकत्र[1]।।२६३।।

(२) *भावना सरस सुर वेलडी*, रोपी तू हृदय आराम रे।
सुकृत तरू लहीय बहु पसरती, सफल फलिस्यइ अभिराम रे ।।२।।
क्षेत्र सुधि करीय करूण रसह, काटि मिथ्यादिक साळ रे।
गुपति त्रिहुँ गुपति रूडी करइ, नीकउ सुमति नीवालि रे ।।३।।
सिचीयइ सुगुरू वचनामृतइ, कुमति कथेरि तजि सग रे।
क्रोध-मानादिक सूकरा, वानरो वारि अनग रे ।।४।।
सेवता एइनइ-केवली, पनरस यती ते अणगार रे।
गौतम सीस शिवपुर गया, भावता देव गुरू सार रे[2]।।५।।

१—क्रिसन रूकमणी री वेलि राठौड पृथ्वीराज नरोत्तमदास स्वामी द्वारा सपादित पृ० १५०-५१

२—बारह भावना वेलि जयसोम, ढाल-१२

ग्र थ के प्रारभ या ग्रन्त मे इस प्रकार की रूपकावली व्यक्त करने की एक काव्य-शैली रही है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी 'रामचरित मानस' मे ऐसा ही मानस-रूपक बाधा है।[1]

साधारण-रूपक :

(१) समार-वेलि

या दुरगति तणी सहेली, *संसारा दीरध वेली* ।
खिरण खिण मे अति ललचावै, विषइ को दुख दिखावै[2] ॥

(२) तन-वेलि

(क) रस प्रेम हीडोले हीचो रे। तरूणी *तन वेलडी* सीचो रे ॥ ५ ॥
धरी प्रेम पीतावर पहरोरे। रस दीपक बालो दोहरो रे ॥ ६ ॥[3]

(ख) धरिया सु उतारे, नव तन धारे, कवि तइ वाखाणण किमत्र।
भूखण पुहप, पयोहर-फल भति, *वेलि गात्र*, तउ पत्र वसत्र ॥ ९५ ॥[4]

१—सुमति भूमि थल हृदय ग्र गाधू। वेद पुरान उदधि घन साधू ॥
बरषहि राम सुजस वर वारी। मधुर मनोहर मगल कारी ॥
लीला सगुन जो कहहि बखानी। सोइ स्वच्छता करइ मल हानी ॥
प्रेम भगति जो बरनि न जाइ। सोइ मधुरता सुसीतलातई ॥
सो जल सुकृत सालि हित होई। राम भगत जन जीवन सोई ॥
मेधा महिगत सो जल पावन। सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावना ॥
भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना ॥
सुठि सुन्दर सवाद वर, विरचे बुद्धि विचारि।
तेइ एहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि ॥
सप्त प्रवध सुभग सोपाना। ग्यान नयन निरखत मन माना ॥
रघुपति महिमा अगुन अवाधा। बरनब सोइ वर बारि अगाधा ॥
रामसीय जल सलिल सुधासम। उपमा बीचि बिलास मनोरम ॥
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मजु मणि सीप सुहाई ॥
छद सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहुरग कलम कुल सोहा ॥
ग्ररथ अनूप सुभाव सुभासा। सोई पराग मकरद सुवासा ॥
सुकृत पु ज मजुल अलि माला। ग्यान, विराग, विचार मराला ॥
धुनि अवरेख कवित्त गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भाती ॥
—श्री रामचरित मानस हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीता प्रेस, गोरखपुर—बालकाण्ड पृ० ४६—५०

२—भरत-वेलि देवानन्दि

३—स्थूलिभद्रनी शीयल वेल वीर विजय ढाल ६

४—क्रिसन रूक्मणी री वेलि राठौड पृथ्वीराज

(३) कनक-वेलि

रामा-अवतार, नाम ताइ रुक्मणि, मान सरोवरि मेरु-गिरि।
बालक-गति किरि हंस चउ बालक, *कनक वेलि* विहु पान किरि ।। १२ ।।[1]

(४) पाप-वेलि

धरधारू रे धरणीधर आप, परिहरिया पूरबला पाप।
अहंकार जग रह्यो अलाप, जग आरंभियो जपवा जाप ।। टेर ।।
भजो राम वेदन नहिं व्यापै, *पापरी वेलडी* परम गुरू कापे।
बीज सनीचर जमारी जोड, हेत रा हीरा लेसा लोड ।। १ ।।[2]

(५) ज्ञान-वेलि

धारता धर्मनी धारणा, मारता मोह वडचोर रे।
ज्ञान रुचि वेल विस्तारता, वारता कर्मनु जोर रे ।। २६ ।।
राग विष दोष ऊतारता, जारता द्वेष रस शेप रे।
पूर्व मुनि वचन संभारता, वारता कर्म निःशेष रे ।। २७ ।।[3]

(६) अमृत-वेलि

श्री नय-विजय गुरू शिश्यनी, शीखडी *अमृत-वेल* रे।
अेह जे चतुर नर आदरे, ते लहे सुजस रंग रेल रे ।। २९ ।।[4]

(७) सुजस-वेलि

श्री पाटणना संघनो लही, अति आग्रह सुविशेषि रे।
सोभावी गुण-कूलडि इम *सुजस-वेलि* म्हे लेखि रे ।। ८ ।।
उत्तम गुण उद्भावता, म्हे पावन कीधी जीभ रे।
कांति कहे *जस वेलडी* सुणता, हुइ धन धन दीहा रे ।। ९ ।।[5]

(आ) काव्य-संज्ञा

काव्य-संज्ञा के रूप में कवियों ने 'वेलि' या 'वेल' शब्द का प्रयोग प्रायः वेलि काव्य के आदि-अन्त में किया है। इससे वेलि-काव्य की लोक-प्रसिद्धि का पता चलता है। यहाँ कतिपय उद्धरण प्रस्तुत किये जाते हैं —

१—क्रिसन रुक्मणी री वेलि : राठौड पृथ्वीराज

२—रूपादेरी वेल : संत हरजो भाटी

३—अमृत वेलिनी मोटी सज्झाय : यशोविजय

४—वही

५—सुजस-वेली : कांति विजय

(१) वेली करि मुनि इंदो, मडला-चारिण श्रम चदो ।
पढ़ै सुणै नर ज्ञाता, सुरग मुक्ति सुख दाता ।।[1]

(२) आणद कद जिणद भाख्या भेद भावु भव्वए ।
गुणठाण वेलि विलास जुत्ता सुख पावु सव्वए ।। १ ।।[2]

(३) नमणो गुरू नरगथ ने, सारद दस गुण पुरे ।
कहो *वरत वेलि* उदयु, करममेण कर्मचुर ।। १ ।।[3]

(४) वेल पिराइली श्री नेमनाथ केरी आण चलण न पामीइ ।
सील सवल रखवाल वन अति रुयडउ
सदमत जु गज होइ सु ड सभालीइ
रहनेमि भूलि म भूलि मयण डे चाहीइ ।। आचली ।।[4]

(५) दिवाली दिन साहिवे, चरण *वेलि* फल लोध ।
अचल अवाधित सहज सुख, ज्ञानोद्योत समृद्ध ।।[5]

(६) चिहुँगति नी ए *वेलि* विचारी, जे पालइ जिन आण ।
तेहना चरण कमल नइ पासइ, हू वाँछू गुण ठाण ।। १३५ ।।[6]

(७) करि *वेल* सरस गुण गाया, चित चतुर मनुष्य समुझाया ।
मन मूरिख सकउ पाई, तिहि तणै चिति न सुहाई ।। १ ।।[7]

(८) रिपभ जिनेसर आदि करि, वर्द्धमान जिन अत ।
नमस्कार करि सरस्वती, वरणै *वेलि* भत ।। १ ।।[8]

(९) सिवरूँ देवी सारदा, सुमति दे आई ।
सहदेव छाण करनै, *वेल* माताजी री गाई ।।[9]

(१०) परमेसर सरसती परमगुरू, करा प्रणाम सजोडि कर ।
दीनदयाल दया दाखीजइ, हेत घणइ गाइजइ हरि ।। १ ।।
सिव सकति तणी ताइ *वेलि* वर्णविसु, सफल जनम करिवा ससार ।
वावन अख्यर तणी ऊड वाधी, वसुधा अचल हुवइ विस्तार ।। २ ।।[10]

१—आदिनाथ वेलि भट्टारक धर्मचद्र
२—गुणठाणा वेलि जीवन्धर
३—कर्मचूर व्रत कथा-वेलि सकल कीर्ति
४—रहनेमि वेल सीहा
५—वीर जिन चरित्र वेलि ज्ञान उद्योत
६—चिहुगति वेलि . वाछा
७—पचेद्रिय वेल ठकुरसी
८—पचगति वेलि हर्ष कीर्ति
९—आईमाता री वेल सत सहदेव
१०—महादेव पार्वती री वेलि आढा किशना

(११) हरि समरण, रस समझण हरिणाखी, चात्रण खत्र खगि खेत्रि चढि।
बइसे सभा पारकी बोलण, प्राणिया! वछइ त वेलि पढि ॥ २७८ ॥[1]

(१२) ब्रह्माणी वरवर आलि मझ, तु कविता जन मात।
तुझ पसाय वीनउ, गर्भ वेलि विख्यात ॥ १ ॥[2]

निम्नलिखित वेलियो के मूलपाठ मे काव्य-सज्ञा के रूप मे 'वेलि' या 'वेल' शब्द का प्रयोग नही हुआ है –

(क) चारणी वेलि साहित्य

(१) किसनजी री वेल
(२) देईदास जैतावत री वेल
(३) रतनसी खीवावत री वेल
(४) उदैसिंघ री वेल
(५) चादाजी री वेल
(६) त्रिपुर सुन्दरी री वेल
(७) रायसिंघ री वेल
(८) सूरसिंघ री वेल
(९) रघुनाथ चरित्र नवरस वेलि
(१०) अनोपसिंघ री वेल आदि

(ख) जैन वेलि साहित्य

(१) जम्बूस्वामी वेल
(२) नेमिश्वर की वेलि
(३) छीहल की वेलि
(४) भरत वेलि
(५) चदनबाला वेलि
(६) सव्वत्थ वेलि प्रबन्ध
(७) लघुबाहुबलि वेलि
(८) जइतपद वेलि
(९) स्थूलिभद्र मोहन वेलि
(१०) बलभद्र वेलि
(११) चार कषाय वेलि
(१२) सोमजी निर्वाण वेलि
(१३) प्रतिमाधिकार वेलि
(१४) जीव वेलडी आदि

(ग) लौकिक वेलि साहित्य

(१) रामदेवजी री वेल
(२) रूपादेरी वेल
(३) तोलादेरी वेल
(४) रत्नादे री वेल
(५) पीर गुमानसिंघ री वेल
(६) अकल वेल
(७) बाबा गुमान भारती री वेल

(ङ) छद गीत

छद के नामोल्लेख के रूप मे 'वेलि' शब्द का प्रयोग वेलिकारो ने एकाध वेलियो मे किया है। इससे यह ज्ञात होता है कि 'वेलि' शब्द छद की दृष्टि से तो काफी लोकप्रिय और पुरातन रहा है। यहाँ हम ऐसे दो उद्धरण प्रस्तुत कर रहे है –

१—क्रिसन रूक्मणी री वेलि पृथ्वीराज छद २७६-८४, २८६-२८८, २९०-९४, २९६, २९८ भी देखिये।

२—गर्भ वेलि लावण्य समय

(१) चित्त च्यतवण करै चौरासी, आखर छद उपमा अनूप।
नरहर विणाज रूप निरूपै, रूपक वद तिणि न रहे रूप ।।२४।।
साणोर प्रहास दूण दौढा सूज, चतुर मुवाणि केलवण चीत।
गीत गोव्यद विणा गाइज्ये, गति वाहिरा मु कहिजैं गीत ।।२५।।
स्यवू पाडगति ठाह सोरठिया, रैं दह पूर्व छयल रुख।
दूहा कहै विणा दामोदर, दूहेत्या प्रामिजें दुख ।।२६।।
कमल व्याल छत्रवध कुडलिया, सहित जाति वावीस महि।
कवित्त जु कहै विणा कमलापति, कवित्त सवित वाहिरा कहि ।।२७।।
नखगिख लग सिगार निरूपै, भेद ग्रथ दार्खं गत्य भाति।
गाये ज जाइ विणा जगत गुरु, जाति ते परैं नही काइ जाति ।।२८।।
मूढ तजैं गुण अवगुण मानें, वूहा जायैं विपैं विलासि।
कहैज रासा रसिक विण कविता, रस उपजैं नही तिणि रासि ।।२९।।
डीरघ लघ कर तजे दुवाला, समि वचने मेलैं सकेलि।
वेलि ज कहै विणा वनमाली, विप मे फल लागैं तिण वेलि ।।३०।।[१]

(२) गीत मे *वेलि* कवित मे गाहा वाजैं विरद वाधीयैं छद।
दूहै नीसाणी ये सुदाता, आखीजीये रतन सौ इद ।।११५।।
कुडलीये दौंढे कहो महाकवि, मेला रे साउ जडे सधि।
चन्द्राइण लाखडीये चूहूदिसी, वीरद रयण रूपक मैं वधि ।।११६।।
गूढारथ जोडि आटको गावैं, रसाउलो व्याकरण रसि।
राउ रतन रूपक चौरासी, कवि वाखाणै वडैं कसि ।।११७।।[२]

(ई) साथी-सहायक

साथी-सहायक के रूप मे वेलि तथा वेल शब्द का प्रयोग चार स्थलो पर हुआ है —

(१) *वेली* तदि वलिभद्र वापूकारइ, सत्र सा वतउ अजे लगि माथ।
वूठइ वाहवियइ आ वेला, हिव जीपिस्यइ जु वाहिस्यइ हाथ ।।१२३।।[३]

(२) वोलावियो चद रज *वेली* राघव तौ सारि सौ रण।
खेत सीयौ खेग रे खाफर, अतली वश आभरण ।।२६।।[४]

(३) प्यारा वायक कुण नर पैंले, सत गुरू साहिव है थारैं वेलें।
अधराता रा मैल जु मैले, सतगुरू वायक कोइयक भेलें ।।१५।।[५]

१—गुणचाणिक वेल चूडौजी

२—रावरतन री वेलि कल्याणदास महड्डू

३—क्रिसन रुक्मणी री वेलि पृथ्वीराज

४—चाँदाजी री वेलि वीठू मेहा दूसलाणी

५—रूपादे री वेल सत हरजी भाटी

(४) धिन ज्यारा भाग घणियो नै ध्यावो, पीर म्हारी वेल पधारी जै।
'प्रभाते निज नाम सायब रा, साचा सिवरण सारीजै ॥१॥[1]

(उ) लहर-तरग

लहर-तरग के अर्थ मे 'वेल' शब्द का प्रयोग तीन स्थलो पर हुआ है

(१) देह मन वचन पुद्गल थकी, कर्म थी भिन्न तुज रूप रे।
अक्षय अकलक छै जीवनु, ज्ञान आनन्द सरूप रे॥२४॥
कर्म थी कल्पना उपजे, पवन थी जेम जलधि *वेल* रे।
रूप प्रगटे सहज आपणु, देखता दृष्टि स्थिर भेल रे॥२५॥[2]

(२) 'वरणू रूप रमाजित मदन, पूर्ण शारद शशिकर वदन।
कुद कलिका हीरक रदन, सौभाग्य कला गुण सदन॥११॥
'कला गुण सदन सरूप अति, जगम-मोहण वेलि।
स्त्री वल्लभ सौभाग्य निधि, विरवइ मनमथ केलि॥१२॥
आई यौवन सागर *वेलि*, हृदयज्ञ सखा की वेलि॥[3]

(३) वाणिजू-वधू, गउ-वाछ, असइविट, चोर, चकव, विप्र-तीरथ *वेल*।
सूरि प्रगटि ऐतला समपियउ, मिलिया विरह, विरहिया मेल॥१८६॥[4]

(ऊ) लता-वल्लरी

लता-वल्लरी के अभिधेय अर्थ मे वेल, वेलि तथा वेलडी का प्रयोग कई स्थानो पर हुआ है—

(१) सर सालि रे वन दोहैलु झिड, करी वरसि रे मेहलो।
वर तरू कदरि मडीया, *वेलें* वीधु रे देह जी॥६॥[5]

(२) विधि विधि चा बरख, *वेलि* विधि विधि चो,
फल बिदि बिदि बिदि बिदि चा फूल।
बिदि बिदि तणा पछी तहा बैठे,
भवर गूंजार विबदि रस भूल॥३४॥[6]

(३) उगुणी खिडकी जोसी रो बारणो, बरडे *नागर वेल*।
केल झबुके जोसो रे बारणे, नैवो चम्पलो रो झाड॥[7]

१—रामदेवजी री वेल सत हरजी भाटी
२—अमृत वेलिनी मोटी सज्झाय यशोविजय
३—स्यूलिभद्र मोहन वेलि जयवत सूरि
४—क्रिसन रूक्मणी री वेलि पृथ्वीराज
५—लघु बाहुबली वेलि शातिदास
६—रघुनाथ चरित्र नव रस वेलि महेसदास
७—पीर गुमानसिंघ री वेल

(४) अति अब मवर तोरण, अजु अंबुज कली सु मगल कलस करि।
वदखाल बधाणी वल्ली, तरुवर ऐका वियइ तरि ॥२३॥[1]

(घ) *वेलि-नाम पर विद्वानों के विभिन्न मत :*

वेलि-नाम के सम्बन्ध मे विद्वानो के विभिन्न मत इस प्रकार है —

(१) डा० मोतीलाल मेनारिया ने छदो के आधार पर रखे गये ग्र थो के नामो मे 'वेल' की भी गणना की है।[2]

(२) कविराव मोहनसिंह के अनुसार 'वेलि' सज्ञा विशेप काव्यो मे छद मुख्य रूप से एक ही प्रकार का पाया जाता है। वह है 'वेलियो'। इसी के नाम से रचनाओ को अभिहित किया गया है।[3]

(३) श्री सूर्यकरण पारीक ने पृथ्वीराज कृत 'वेलि' के छद सख्या २९१–२९२ के आधार पर इसके नामकरण की विवेचना करते हुए लिखा है—

'भागवत वर्णित भगवद्भक्ति रूपी वीज महाराज पृथ्वीराज जैसे भक्त की हृदय-स्थली मे बोया गया, जिसके परिणाम स्वरूप उनके मुख रूपी आलबाल से यह भक्ति 'वेलि' अकुरित होकर प्रकट हुई। इस रचना रूपी बेल के मूल दोहलो की लय और सगीत ही इसकी दृड जडे है, जिनके आधार पर यह स्थित है और उनका भाव और आशय वह मण्डप है जिस पर इस काव्य वल्ली की शाखा-प्रशाखाओ का विकास मार्ग निर्दिष्ट है। यह वेलि भक्त और काव्यरसिक पाठको की रुचि और श्रद्धा को पाकर अपनी शाखा-प्रशाखाओ को फैलाती हुई उनके हृदय को अपनी भगवद्भक्ति रूपी सघन छाह के नीचे चिर शाति और अनन्त आनन्द प्रदान करेगी। इस वेलि के अक्षर ही इसके पत्ते है और भगवान का यशोगान और उनकी महिमा यही इसकी मनोहारिणी सुगन्धि। इसके विस्तृत तन्तुजाल इसके वर्णनान्तर्गत नवरसो का समूह है। सहृदय काव्य-प्रेमी पाठक लोभी भ्रमर की तरह इसके भावार्थ रूपी मधु सौरभ का आस्वादन करते हुए प्रेमानन्द मे लीन होकर इसके चारो ओर मडराते रहते हैं। इसको पढकर पाठको के हृदय मे भक्ति का जो स्वाभाविक उद्रेक होगा, वही इस वेलि पर मजरी का लगना है। तदनन्तर और ज्यादा अनुशीलन करने पर भक्त पाठको को मुक्ति के रूप मे इस वेलि का सुगन्धित पुष्प प्राप्त होना है और ससार मे रहते हुए भगवान की अनुकम्पा से ऐसे

१—क्रिसन रुक्मणी री वेलि · पृथ्वीराज छद २५१, २५२, २५६ भी देखिये।
२—राजस्थानी भाषा और साहित्य (द्वितीय सस्करण) पृ० ६६
३—लेखक के नाम पत्र दिनाक ७-१०-५६

भक्त पाठको की बुद्धि निर्मल होकर उनको अनेक ऐश्वर्य भोग के साधन प्राप्त होते हैं। वही मानो इसका इहलौकिक फल है। ऐसी है यह 'वेलि'।[1] डा० हरदेव बाहरी[2] भी इसी मत की पुष्टि करते है।

(४) डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित ने 'पृथ्वीराज की वेलि' पर लिखते हुए लिखा है कि एक और बात जो इस वेलि नाम से प्रगट होती है, वह है लेखक का कथा के कोमल तथा मधुर भाग की ओर इंगित। 'वेलि' नाम मे ही एक ऐसी लचक और मधुरता है कि काव्य का विषय खुलता सा प्रतीत होने लगता है। काव्य की नायिका का शरीर भी कनक वेलि सा ही है — 'कनकवेलि बिहु पान किरि।' इस नायिका का शरीर यदि कनकछरी सा होता तो उसके लोच और मृदुलता का पता कैसे लगता? सभव है इसी बात को लक्ष्य कर कवि ने काव्य के नाम से ही उसके विषय का ज्ञान कराने के लिए उसका नाम वेलि रखना उचित समझा। यह वेलि रुक्मिणी के हृदय को कृष्ण के हृदय से जोडती है। दोनो के बीच प्रेम-लता, प्रेम-वेलि फैल जाती है जिसके स्निग्ध बधन मे दोनो बधे रह जाते है।[3]

(५) डा० हीरालाल माहेश्वरी के अनुसार वेलि के नामकरण का 'वेलियो' गीत से कोई सम्बन्ध नही है। कृष्ण और रुक्मिणी के हृदयो मे प्रेम-वेलि के अकुर और प्रसार रूप इस काव्य (पृथ्वीराज कृत वेलि) का निर्माण हुआ है[4] वर्ण्य विषय की दृष्टि से यह विवाह के अर्थ मे प्रचलित है। रचना प्रकार की दृष्टि से 'वेलि' हिन्दी के 'लता', 'वती' आदि काव्य रूपो की तरह है।[5]

(६) डा० मजुलाल मजुमदार के अनुसार 'वेलि' शब्द विवाहना अर्थ मा प्रचलित छे। वेलिनु बीजु नाम विवाहवाची मगलपण छे।[6]

(७) डा० भोलानाथ तिवारी वेलि साहित्य को प्रमुखत शृङ्गार प्रधान काव्य मानते है। उनके मत मे वेलि और विलास एक ही है।[7]

(८) श्री शिवसिंह चोयल के अनुसार वेल अथवा वेलि किसी वीर और सती-साध्वी वीरागना की सपूर्ण और विस्तृत गाथा को ही कहते है।[8]

१—क्रिसन रुक्मणी री वेलि भूमिका, पृ० ५९–६०

२—लेखक के नाम पत्र दिनाक १२–४–६१

३—क्रिसन रुक्मणी री वेलि भूमिका, पृ० ४३

४—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १५९

५—वही पृ० २४३

६—गुजराती साहित्य ना स्वरूपो पृ० ३७५

७—लेखक के नाम पत्र दिनाक ३१–३–६१

८—लेखक के नाम पत्र दिनाक २८–९–५९

(९) डा० रामसिंह तोमर वेलि नामधारी रचनाओ को रासक, फागु आदि जैसी रचनाओ से भिन्न नही मानते ।[1]

(१०) प० लालचन्द्र भगवान गाधी को वेलि-नामकरण वल्लि-कोमल कविता, वृक्ष पुरुषाश्रित वनिता के भावो से वद्ध आरूढ प्रतीत होता है ।[2]

(११) डा० हरिवल्लभ चूनीलाल भायाणी के मत मे 'मानस' की तरह 'वल्ली' का रूपक भी कृति को लगाया गया । इसमे वेल नामक रचनाओ का प्रधान पडा ।[3]

(१२) श्री पिगलशी परवत जी पायक लिखते है "अगर साहित्य को-वाड्मय को-एक उद्यान मान लिया जाय तो 'वेलि' काव्य का शब्दार्थ यथार्थ प्रस्फुटित हो जाता है । महाकाव्यादि वृक्ष गिने जाने चाहिये जब कि एक ही पूरी कथात्मक घटना को लेकर बनाया गया काव्य वेलि कहा जा सकता है । वेलि वनिता की तरह सुन्दर होनी चाहिये, कोमलागी होनी चाहिये, सौरभ-युक्त होनी चाहिये । उसमे प्रेम और उष्मा होनी चाहिये, मनोरम अलकारो और आभूषणो मे सुश्रृगारित होनी चाहिये । वह महाकाव्य जैसे शाल वृक्षसी दृढ और दीर्घ नही हो सकती । काव्य–साहित्य मे पुरुष और प्रकृति का जो समन्वय है, उसमे से वेलि अधिकतर प्रकृति का प्रतिनिधित्व करती है । महाकाव्यो मे अधिक छद होते है, बडे बडे सर्ग होते है, यह सब पुरुष का विशाल क्षेत्र है जब कि वेलि स्त्री-प्रकृति का प्रतिनिधित्व होने के उपलक्ष्य मे उसका कार्यक्षेत्र सामान्यत मर्यादित, एक ही छद मे रहता है । एक ही धारा-प्रवाहित कथा को वेलि मे स्थान मिलता है, जब कि महाकाव्य मे अनेक कथाओ को समाविष्ट किया जाता है ।[4]

(१३) श्री नारायणसिंह भाटी के अनुसार वेलि काव्य परम्परा वह काव्य-परम्परा है जिसमे कि प्रबधात्मक ढग से किसी देवता अथवा देवता के समान ही प्रतिष्ठित व्यक्ति के जीवन तथा गुण आदि का वर्णन श्रद्धा-भाव से किया जाय ।[5]

(१४) डा० हीरालाल जैन राजस्थानी मे ही कीर्ति वर्णनात्मक रचनाओ को वेलि

१—लेखक के नाम पत्र दिनाक २३–१–६१

२—लेखक के नाम पत्र दिनाक ४–१०–६०

३—लेखक के नाम पत्र दिनाक २३–२–६१

४—लेखक के नाम पत्र दिनाक ६–१०–५६

५—लेखक की वातचीत अपने जोधपुर प्रवास मे

(वल्ली) कहने की प्रथा का आरभ मानते हैं।[१] मुनि कातिसागर जी का भी ऐसा ही मत है।[२]

(१५) श्री पुरुषोत्तम मेनारिया के अनुसार वृक्ष के बढने की मीमा होती है पर वेल के बढने की कोई सीमा नही होती। वेल की तरह ही चरित्र-नायक के यश फैलने की कामना इन काव्यो मे काम करती रही है।[३]

(१६) श्री रावत सारस्वत लिखते है वेलि एक तरफ तो वेलियो गीत सू सबधित है पण दूजी तरफ जठै इण छद रै अलावा भी वेलि री रचना मिले है, इण रो सबध जस वरणन सू दीखै। बोलचाल मे वैता-थारी वेल वधै-उणी तरे महापुरसा अर राजावा री बेल वणी। चारणी काव्य मे इण नैं वेल लिखी है अर वरणन भी जस वरणन सो ही है।[४]

(१७) श्री अगरचद नाहटा के अनुसार वेलि सज्ञा लता के अर्थ मे लोकप्रिय हुई और अनेक कवियो ने उस नाम के आकर्षण मे अपनी रचनाओ को 'वेलि' इस अन्त्य पद से सबोधित किया।[५]

(१८) श्री सौभाग्यसिह शेखावत ने राजस्थानी 'वेल' अथवा 'वेलि' के लिए निम्न शब्द और उनके प्रयोग प्रचलित बतलाए है —

(१) वेल समुद्रतट का किनारा
प्रयोग –*महावेल* खाडी हुती

(२) वेली सहायक, साथी
प्रयोग –म्हारा *वेली* था ओ काई कीधो

(३) वेलि लिए
प्रयोग –म्हारे *वेली* था क्यू लडो हो

(४) वेली समय
प्रयोग –जिण *वेली* दीटा बणे परताप नरेसुर

(५) वेल प्रवाह
प्रयोग –पाणी री *वेल* टूट रयी है।

१—लेखक के नाम पत्र दिनाक १४-१-६१

२—लेखक की वातचीत अपने उदयपुर प्रवास मे

३—लेखक की वातचीत अपने जोधपुर प्रवास मे

४—लेखक के नाम पत्र दिनाक १४-१२-५६

५—कल्पना वर्ष ७, अङ्क ४ (अप्रैल, १९५६) मे अगरचद नाहटा का 'वेलि सज्ञक काव्यो की परम्परा' शीर्षक लेख।

(६) वेल वल्लरी
प्रयोग –खारी वेल रे खारा ही फल लागै

(७) वेल जोडी
प्रयोग –धोल्या अर काल्या वेल मे एक गोळ वाल्यो

(८) वेल सतति
प्रयोग -नाजिर जी वेल वधो–वस म्हा ताई ही

और लिखा है 'वेलि' का वाछनीय प्रयोग वश–वेलि अथवा वल्लरी ही उपयुक्त जान पडता है ।[1]

(१९) श्री कृष्णचन्द्र का विश्वास है कि 'वेलियो' छद ही वेलि–साहित्य की मुख्य छद-प्रवृति के आधार पर इस (वेलियो) सज्ञा का अधिकारी बना है। क्योकि शुरू २ की वेलियाँ जैन विद्वानो द्वारा लिखी हुई है। उनमे किसी छद का सुस्पष्ट रूप नही मिलता है। सभवत वह अस्पष्ट रूप ही बाद मे इस (वेलियो) छद के रूप मे विकसित हुआ है। इस प्रकार के तर्क मे वेलि के नाम की सार्थकता 'वेलियो' छद नही दे सकता, प्रत्युत 'वेलि' शब्द (जो काव्य के लिए प्रयुक्त हुआ है) 'वेलियो' के नामकरण का आधार बनता है। 'वेलि' का आधार है लतासूचक वेल (वल्लरी) शब्द और 'वेलियो' का आधार काव्य-परम्परा का 'वेलि' शब्द ।[2]

(२०) डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार वेलि, वल्ली, वल्लरी आदि शब्द लतावाचक है। उपनिषदो मे अध्याय को 'वल्ली' कहने की प्रथा थी। यह शब्द शाखा, स्कध, पर्व, काण्ड आदि वृक्षागवाचक शब्दो के रूप मे व्यवहृत रहा होगा। पुराने ग्रथ 'पत्र' (तालपत्र, भूर्जपत्र) अर्थात् पत्ते पर लिखे जाते थे। बहुत से 'पत्रो' के समूह को वृक्ष मानकर शाखा, काण्ड, वल्ली आदि मे विभाजित करना उचित ही है ।[3]

(२१) डा० हरिवश कोछड ने द्विवेदी जी से मिलता–जुलता विचार व्यक्त करते हुए 'वेलि' को 'मजरी' का ही एक रूप माना है। उनके अनुसार अनेक ग्रथो मे अध्यायो या सर्गो का विभाजन गुच्छक और स्तबक शब्दो से किया गया है। गुच्छक और स्तबक लता या वल्ली के ही हो सकके है। इसलिये सभवत वल्ली या लता ने काव्य का रूप धारण कर लिया हो ।[4]

१—शोध–पत्रिका वर्ष १२, अङ्क २, पृ० ६४–७०
२—शोध–पत्रिका वर्ष १२, अङ्क १ पृ० ७४–७७
३—लेखक के नाम पत्र दिनाक ११–१–६१
४—लेखक के नाम पत्र दिनाक १५-३–६१

(२२) डा० टीकमसिंह तोमर ने 'वेलि' शब्द को 'वृद्धि', 'वश', 'वल्लरी', 'लता' के अर्थ मे प्रयुक्त माना है।[१]

(२३) श्री मुकनसिंह ने कल्पना की है कि चूडो और करमसी काफी प्रसिद्ध हो चुके थे। उनकी वेलि की प्रसिद्धि के कारण जैन कवियो के स्तोत्रा को लिपि-कारो ने वेलि सज्ञा से अभिहित कर दिया।[२]

(२४) श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार 'वेलि' एक लाक्षणिक प्रयोग है। अपभ्र श मे जैसे 'रासक' शब्द का काव्य के अर्थ मे प्रयोग चल पडा उसी प्रकार यह 'वेलि' शब्द लाक्षणिक रूप मे प्रचलित हुआ और बाद मे ऐसी कथाओ के लिए आने लगा जिनका छोटे से वडे मे विस्तार किया गया हो। वेलि और लता शब्द फैलाव या विस्तार के ही लिये जोडा गया है। किसी के शरीर के लिये यष्टि या लता का व्यवहार काव्य मे बहुत मिलता है। इसमे यह भी माना जा सकता है कि जिसमे कथा का विस्तार होते हुए परिपूर्णता भी हो। स्वत पूर्ण प्रबधात्मक कृति के लिए इस शब्द का व्यवहार चला। कल्पतरु आदि शब्दो का व्यवहार भी होता रहा। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी बडी कृति के लिए वेलि शब्द का व्यवहार नही होता। बडे आकार को सूचित करने के लिए वृक्ष या कल्पवृक्ष का लाक्षणिक व्यवहार होना प्रचलित था।[३]

(२५) श्री मनोहर शर्मा ने काव्य-सज्ञाओ को दो भागो-(१) जिन रचनाओ मे किसी रूप मे आन्तरिक समानता पाई जाती है और (२) जिनमे ऐसा होना आवश्यक नही -मे विभक्त कर वेलि सज्ञक काव्यो को इन दोनो के अन्तर्गत रखा है, और नामकरण की मूल भावना मे आकर्षण पैदा करने की चेष्टा को प्रधानता दी है।[४] डा० दशरथ शर्मा भी ऐसा ही मानते है।[५]

(२६) डा० श्याम परमार के अनुसार लम्बी गीत बद्ध कथाएँ 'वेलि' कही जाती है। 'वेल' अथवा 'वेलि' के प्रयोग का सीधा सबध दूर तक फैली हुई कथा से है। जिस प्रकार वल्लरी या वल्लि मे फैलाव होता है वैसे ही कथा का सूत्र बडा होने पर सहज बुद्धि उसे भी 'वेलि' या 'वल्लि' कह सकती है।[६]

१—लेखक के नाम पत्र दिनाक १५–२–६१

२—लेखक की बातचीत अपने जयपुर प्रवास मे

३—लेखक के नाम पत्र दिनाक २०–४–६१

४—वरदा वर्ष ४, अङ्क १ सम्पादकीय पृ० १०१–१०४

५—लेखक के नाम पत्र दिनाक १०–२–६१

६—लेखक के नाम पत्र दिनाक ६–५–६१

(२७) प्रो० हीरालाल कापडिया के अनुसार 'वेलि' नो मुख्य विषय गुणगान छे।[1]

(२८) डा० सुकुमार सेन ने लिखा है 'वेला ऑर वेलि इज दी नेम ऑफ लिरिकल नरेटिव्ज"।[2]

उपर्युक्त विद्वानो द्वारा व्यक्त किये गये विचारो को निष्कर्ष रूप से ८ वर्गो मे बाँटा जा सकता है –

(१) वेलियो छद के आधार पर 'वेलि' नामकरण की कल्पना करने वाला वर्ग।

(२) 'वेलि' के आधार पर 'वेलियो' छद को सभावना प्रकट करने वाला वर्ग।

(३) वेलि को विवाह–मगल–विलास के अर्थ मे ग्रहण करने वाला वर्ग।

(४) वेलि–रूपक की प्रतिपादना करने वाला वर्ग।

(५) स्तोत्रो को ही लिपिकारो की भूल से वेलि समझने वाला वर्ग।

(६) वेलि को केवल मात्र वीर–वीरागनाओ के चरिताख्यान तक ही सीमित रखने वाला वर्ग।

(७) वेलि को यश और कीर्ति–काव्य के रूप मे ग्रहण करने वाला वर्ग।

(८) वेलि को वल्ली, गुच्छक–स्तवक आदि अध्यायो से स्वतन्त्र काव्य-विधा के रूप मे विकसित मानने वाला वर्ग।

यहाँ हम प्रत्येक वर्ग के विषय मे अपने विचार प्रस्तुत करने का प्रयत्न करेगे।

(१) वेलियो छद के आधार पर वेलि नामकरण की कल्पना इसलिये सर्वमान्य नही हो सकती क्योकि इस छद मे लिखी हुई तो केवल चारणी कृतियाँ ही मिली हैं जिनकी परम्परा जैन–वेलियो से बाद की रही है। जैन–वेलियो का छदानुबन्ध तो विविध प्रकार का रहा है। कही ढाले है तो कही लोकधुन, कही 'दोहरो' की कसावट है तो कही 'चालि' की मन्थरता। अत वेलियो छद 'वेलि' नाम का आधार न होकर चारणी वेलि–काव्य की एक विशेषता भर है।

१—जैनधर्म प्रकाश वर्ष ६५ अङ्क २ पृ० ४५–५० 'वेलि अने वेल' शीर्षक लेख

२—प्रिफेस ए डिस्क्रिप्टिव केटलाग ऑफ दी राजस्थानी मेन्यूस्क्रिप्ट इन दी कलेक्शन्स ऑफ दी एशियाइटिक सोसाइटी भाग १

(२) वेलि के आधार पर 'वेलियो' छद की कल्पना करना युक्तिसगत प्रतीत नही होता। सबमे प्राचीन जो जैन-वेलियाँ मिली है उनमे न तो वेलियो छद का ही कोई लक्षण प्रतीत होता है और न बाद मे जाकर इस छद मे ही वेलियाँ लिखी गई है। इसके विपरीत 'वेलियो' छद चारणी गीतो का प्रमुख छद रहा है जो न केवल वेलिकारो द्वारा अपनाया गया है बल्कि अन्य गीतिकारो का भी प्रिय-भाजन रहा है। इन सबसे परे (यदि इसे मान भी लिया जाय तो भी) इस क्लिष्ट कल्पना से वेलि-नामकरण की समस्या नही सुलझती वह तो केवल वेलि की प्रभाव-प्रसिद्धि को ही सूचित करती है।

(३) वेलि को विवाह-मगल-विलास के अर्थ मे ग्रहण करने मे दो आपत्तियाँ है। पहली तो यह कि सभी विवाह-प्रधान काव्यो को 'वेलि' नही कहा जा सकता दूसरे जिन वेलियो का पता चला है उनमे से अधिकाश मे विवाह की प्रधानता तो दूर रही उसका उल्लेख तक नही है। जहाँ विवाह का वर्णन है भी वहाँ प्रमुखता शान्त रस को ही दी है। फिर 'विवाहलु', 'मगल' एव 'विलास' काव्यो की स्वतत्र सुदीर्घ परम्परा भी चलती आयी है[1]। यह वर्ग अतिव्याप्ति दोष से ग्रसित है।

(४) केवल मात्र पृथ्वीराज कृत 'वेलि' के लता-रूपक के आधार पर इस नामकरण की कल्पना करना सगत प्रतीत नही होता। इस प्रकार की रूपकावली प्रस्तुत करना तो काव्य-शैली मात्र है। जायसी और तुलसी ने भी अपने ग्र थो मे ऐसा विराट साग-रूपक बाधा है। अन्य चारणी तथा जैन-वेलियो मे ऐसा सर्वा ग सम्पूर्ण रूपक नही मिलता। यह तो भक्त कवि पृथ्वीराज की उदात्त भावना मात्र है कि उसने लता के साथ अपने प्रेरणा-स्त्रोत को बतलाने के लिए वेलि की तुलना करदी। दूसरी कमी इस मत मे यह है कि इसमे पृथ्वीराज-पूर्व-वेलि-परम्परा पर कुछ भी प्रकाश नही पडता।

(५) यह मानना कि चू डो और करमसी की वेलियाँ इतनी प्रसिद्धि पा चुकी थी कि लिपिकारो ने भ्रम से जैन-कवियो के स्तोत्रो को वेलि सज्ञा से अभिहित कर दिया और यह परम्परा चलती रही, निरी मिथ्या कल्पना है। क्योकि इसमे एक तो यह तथ्य निकलता है कि सबसे प्राचीन वेलियाँ चारणो द्वारा ही लिखी गई है जबकि (पद्रहवी शती के प्रारम्भ की जैन वेलियाँ काफी सख्या मे उपलब्ध हो रही है)। दूसरे जितनी जैन-वेलियाँ लिखी गई, उसकी चतुर्थाश भी चारणी वेलियाँ नही लिखी गई। जैन-वेलियो के आरम्भ या

१—भारतीय साहित्य जनवरी, १९५६ अगरचद नाहटा का 'विवाह और मगल काव्यो की परम्परा' शीर्षक लेख।

अन्त मे वेलि गाने का भी उल्लेख है जबकि कई चारणी वेलियो मे न आरम्भ मे न अन्त मे कही 'वेलि' शब्द आया है। अत स्तोत्रो को ही जैन-वेलियाँ मानकर चलना और उनकी अलग परम्परा न मानना ठीक प्रतीत नही होता। इस तर्क को ठीक इसके विपरीत भी बैठाया जा सकता है।

(६) वेलि काव्य का वर्ण्य-विपय वीर-वीरागनाओ का चरित्राख्यान ही नही रहा है उसमे श्रृ गार की गुदगुदी भी है, उपदेशो की अध्यात्म-धारा भी है। यह वर्ग अव्याप्ति दोष से पीडित है।

(७) चारणी कवियो ने जितनी भी वेलियाँ लिखी हैं उनमे अधिकतर किसी न किसी राजा-महाराजा का यशोगान ही है। उसकी वश-वेलि की गुण-गाथा ही गाई गई है। जैन-वेलियो मे भी तीर्थकरो, सतियो, सन्तो, चक्रवर्तियो तथा अन्य महापुरुषो का कीर्तन ही किया गया है। अत वेलि के नामकरण के मूल मे यही कीर्ति-भावना रही है। पर उपदेशात्मक वेलि-साहित्य पर यह मत भी लागू नही होता।

(८) वास्तव मे वेलि शब्द मूलत किसी साहित्य के विशेष प्रकार का नाम नही है। 'लता' की भाति किसी भी रचना के साथ यह जोडा जा सकता है। वेलि का नामकरण कुछ उपनिषदो के अध्याय–जिन्हे वल्ली कहा गया है–से ही विकसित प्रतीत होता है। काल-प्रवाह के साथ 'वल्ली' शब्द अध्याय या सर्ग का वाचक न रहकर एक स्वतन्त्र काव्य-विधा का ही प्रतीक बन गया।

अन्त साक्ष्य के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते है –

(१) वेलि काव्य की परम्परा काफी पुरानी और प्रसिद्ध रही है। यही कारण है कि कवि लोगो ने रचनाओ के प्रारम्भ या अन्त मे काव्य-सज्ञा के रूप मे वेलि या वेल शब्द का प्रयोग किया है।

(२) वेलि-काव्य का वर्ण्य-विषय प्रमुख रूप से देव-तुल्य श्रद्धेय पुरुषो का गुण-गान करना रहा है। ये पुरुष राजा-महाराजा, तीर्थ कर, चक्रवर्त्ती, बलदेव, सती, धर्माचार्य, लोकदेवता आदि रहे हैं। जैन-वेलियो मे जहाँ केवल 'भव सबोधन काजै' उपदेश दिया गया है वहाँ भी प्रारम्भ मे तथा अन्त मे तीर्थ-कर–धर्माचार्यादि का प्राय स्तवन कर लिया गया है।

(३) गेयता इसका प्रमुख तत्व है। जैन साधु इसकी रचना कर बहुधा गाते रहे है। पाठ करने की परम्परा भी रही है[1]। पृथ्वीराज ने अपनी वेलि में पाठ-विधि[2] तक दी है। आई-पथ मे लोक-वेलियाँ अब भी गाई जाती है।

(४) वेलि-काव्य स्तोत्रो का ही एक रूप प्रतीत होता है जिसमे दिव्य पुरुषो के साथ साथ लौकिक पुरुषो का वीर-व्यक्तित्व भी समा गया है। रचना के प्रारम्भ या अन्त मे वेलिकारो ने वेलि-माहात्म्य बतलाया है। ऐतिहासिक चारणी वेलियाँ प्रशस्ति बन कर रह गई हैं। उनमे कही भी अन्त साक्ष्य के रूप मे 'वेलि' शब्द नही आया है। वहाँ 'वेलियो' छद मे रचित होने के कारण ही उन्हे 'वेलि' नाम दे दिया गया प्रतीत होता है।

(५) वेलि काव्य विविध छन्दों मे लिखा गया है। जैन वेलियो मे ढालो की प्रधानता है। मात्रिक छन्द-दोहा, कुण्डलिया, सार, सरसी, सखी, हरिपद-भी अपनाये गये है। चारणी वेलियाँ छोटेसाणोर के भेद-वेलियो, सोहणो, खुडद साणोर-मे ही लिखी गई है। लौकिक वेलियाँ लोक-धुन प्रधान है।

(६) वेलि-काव्य मे दो प्रकार की भाषा के दर्शन होते है। एक साहित्यिक-डिंगल-अलकारो से लदी हुई और दूसरी बोलचाल की सरल राजस्थानी, अलकार विरल पर मधुर और सरस। पहले प्रकार की भाषा चारणी वेलियो का प्रतिनिधित्व करती है तो दूसरे प्रकार की भाषा जैन तथा लौकिक वेलियो का।

१—१८ वी शती के कवि जयचद ने एक स्थल पर लिखा है कि साधु लोग पृथ्वीराज रासो, वेलि, नागदमण, पचाख्यान, हरिरस आदि का वाचन क्यो नही करते ?

पृथ्वीराज रासो, वेलि, वचनिका, पचाख्यानन वाचै।
नागदमणि, हरिरस, अग सुकन सामुद्रिक साचै ॥
दय काक विचार अग फरिकै, जै सास्य रापै।
विसहरा सन्निभेद, द्विपूछि त्रिपुच्छि सभेद भापै ॥
धूर्त कल्प चोर काटणै स्वेतोक गणेस, विधि जै कहै।
गाइ उगाल जर समारिनी पूजि जै जै-चद मार्गे लहि ॥
—मुनि कातिसागर जी का 'यति जयचद और उनकी रचनाए'
शीर्षक लेख (अप्रकाशित)

२—महि सुइ खट मास, प्रात जलि मजे,
अप-सपरस-हर, जित-इन्द्री ॥ २९० ॥

(छै मास तक पृथ्वी पर सोवे, प्रात काल उठकर जल मे स्नान करे और सबका स्पर्श त्याग कर– एकाकी मौन धारण कर– तथा जितेन्द्रिय होकर नित्य वेलि का पाठ करे– नरोत्तमदास स्वामी स्व सपादित वेलि)

(७) प्रवन्धात्मकता वेलि-काव्य की एक सामान्य विशेषता है। गीत-शैली होते हुए भी प्रवन्ध-धारा की रक्षा हुई है। मुक्तक के शरीर मे भी प्रवन्ध की आत्मा है। सवमे छोटी वेलि शायद छीहल की वेलि (४ पद) है और सवसे वडी महादेव पार्वती (छद सख्या ३८२) की।

(८) प्रारम्भ मे मगलाचरण और अन्त मे स्वस्ति–वाचन वेलि-काव्य की एक सामान्य विशेषता है।

तृतीय अध्याय

राजस्थानी-वेलि-साहित्य का वर्गीकरण

राजस्थानी वेलि साहित्य विभिन्न भण्डारो और पुस्तकालयो मे हस्तलिखित प्रतियो के रूप मे बिखरा पडा है। अब तक पृथ्वीराज कृत 'क्रिसन रुक्मणी री वेलि' ही प्रकाशित होकर विद्वानो के सामने आई है। उसके आधार पर सामान्यत यह धारणा बनाली गई है कि वेलि साहित्य शृङ्गारपरक होता है और उसमे विवाह अथवा विलास की ही प्रधानता रहती है। पर वास्तव मे ऐसी बात नही है। वेलि साहित्य विषय की विविधता लिये हुए है। यहाँ निम्नलिखित दृष्टियो से राजस्थानी वेलि साहित्य का वर्गीकरण प्रस्तुत किया जाता है—

(१) रचना-स्थल

(२) रचनाकार

(३) रचना-शैली

(४) रचना-स्वरूप

(५) रचना-विषय

(१) *रचना-स्थल*

कुछ वेलियो मे अन्त साक्ष्य के रूप मे रचना-स्थल का उल्लेख हुआ है उसके दो प्रकार है —

(क) वेलिकार द्वारा वेलि के मूलपाठ मे किया गया उल्लेख

(ख) लिपिकर्त्ता द्वारा पुष्पिका मे किया गया उल्लेख

इस आधार पर सपूर्ण राजस्थानी वेलि साहित्य को दो भागो मे बाँटा जा सकता है—

(क) राजस्थान मे रचित वेलि-साहित्य

(ख) गुजरात मे रचित वेलि साहित्य

(क) राजस्थान मे रचित वेलि-साहित्य — वेलि साहित्य का अधिकाश भाग-कतिपय जैन वेलियो को छोडकर-राजस्थान मे ही रचा गया है। रचनाकार और रचना-विपय को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि बीकानेर व जोधपुर का प्रदेश चारणी-वेलियो का, जयपुर, अजमेर व उदयपुर का प्रदेश जैन वेलियो का तथा गौडवाड प्रात लौकिक वेलियो का प्रधान रचना-स्थल

रहा है। अन्त साक्ष्य के रूप मे वेलि के मूल पाठ मे जैसलमेर[1], महारोठपुर[2] (मारोठ), चपानेरी चाटसू[3] आदि का ही उल्लेख हुआ है। पुष्पिका मे कल्पवल्ली नगर[4], गागरोनगढ,[5] भेड़,[6] बूसी[7] आदि के नाम आये है।

(ख) गुजरात मे रचित वेलि साहित्य —राजस्थानी वेलि साहित्य की अधिकाश रचनाएँ जैन-साधुओ द्वारा लिखी गई है। ये साधु राजस्थान के अतिरिक्त गुजरात मे भी विशेष रूप से घूमते रहे है। अत गुजरात भी इनका रचना-स्थान बना रहा है। वेलि के मूल पाठ मे राजनगर[8] (अहमदाबाद), दर्भावति[9] (डमोई), पाटण[10] आदि का उल्लेख हुआ है। पुष्पिका मे

१—भगत हेतु भावना भणी, जैसलमेर मझार।
बारह भावना वेलि जयसोम, ढाल १३।५

२—महारोठपुर मझारी, आदिनाथ भवियण तारी।
आदिनाथ वेलि भट्टारक धर्मचद

३—चपानेरी चाटसू केते भट्टारक भये साधा।
कर्मचूर व्रत कथा वेलि भट्टारक सकलकीर्ति

४—इति श्री त्रिपुर सुन्दरी वेलि ॥ श्री सवत १६४३ वर्षे पोष वदि ६ दिने शुक्रवारे चे० देवजी लिखित कल्पवल्ली नगरे लिखित ॥
त्रिपुर सुन्दरी री वेलि जसवन्त

५—इति श्री कृष्णदेव रुक्मिणी वेलि सम्पूर्ण समाप्त राठौड श्री किल्याणमल सुत पृथ्वीराज कृतम बधव सुरताण जी गागरोनगढ मध्ये ॥ सम्वत् १६६६ वर्षे माघ सुदी ४ दिने लिखितम् रामा फूलखेडा मध्ये समम् भवतु कल्याण।
पृथ्वीराज कृत वेलि की स० १६६६ की नाहटा जी की प्रति—

६—लिखित प० जगन्नाथ भेड़ मध्ये
चादाजी री वेल वीठू मेहा दूसलाणी

७—इति साखला करमसी रूणेचा कृत श्री किसनजी री वेलि। लिखित सावलदास सागावुत—लिखित ग्राम—बूसी मध्ये।
किसनजी री वेल साखला करमसी रूणेचा

८—राजनगर मुनिवर निरदोप शीयल वेली प्रेम गाई रे।
स्थूलिभद्रनी शीयल वेल वीर विजय, ढाल १८

९—दर्भावति मडन दुह विहडन, साभल लोढण पास।
शीलभेद समकित गुण वर्ष, शुद तेरस सीत मास ॥ १० ॥
स्थूलिभद्र कोश्या रस वेलि माणक विजय

१०—श्री पाटणना सघनो लही, अति आग्रह सुविशेषि रे।
सोभावी गुण कून्डि इम सुजस वेल्ली म्हे लेखि रे ॥ ढाल ४।८॥
सुजस वेलि काति विजय

देकपुर[1], पगमनगर[2], विक्रमनगर[3] आदि के नाम आये है।

(२) *रचनाकार :*

स्थूल रूप से वेलिकारो की दो श्रेणियाँ है—

(क) चारण-कवि

(ख) सत-कवि

(क) चारण-कवि,

चारण कवियो के दो वर्ग हैं—

(१) जन्म से चारण कवि

(२) काव्य-शैली से चारण कवि

(१) जन्म से चारण कवि – वे कवि जो जन्म से चारण है। करमसी, चूडौ, अखो भाणौत, दूदो विसराल, रामासादू, वीठू मेहा दूसलाणी, सादूमाला, आढा किशना, कल्याण दास महडू, गाडण चोलो, गाडण वीरभाण आदि कवि इसी वर्ग के है।

(२) काव्य-शैली मे चारण कवि– वे कवि जो जन्म से तो चारण नही है पर जिनकी काव्य-शैली चारणी शैली रही है। राठौड पृथ्वीराज, जसवन्त, महेसदास आदि कवि इस वर्ग मे आते हैं।

(ख) सत-कवि

सत कवियो के भी दो वर्ग हैं—

(१) जैन सत कवि

(२) जैनेतर सत कवि

१—इति श्री थूलिभद्र मोहण वेलि समाप्त सवत् १६४४ वर्षे आपाढ वदी ४ गुरू लषित। आगमगछे पूज्य श्री धर्मरत्नसूरि प्रभोग्य स्ववाचानाय--देकपुर मध्ये लाखित ।।

स्थूलिभद्र मोहन वेलि जयवत सूरि

२—श्री–पगमनगरे ऋप श्री पाच जीवाजी तत शिष श्री धन जाजा तत् शिष मुना बालचद्र लिखत।

सग्रह वेलि

३—इति मोमजी निर्वाण वेलि गीत सपूर्णम्। कृत विक्रमनगरे समय सुन्दर गणिना ।। शुभ भवतु ।।

सघपति सोमजी निर्वाण वेलि समय सुन्दर

(१) जैन सत कवि इस वर्ग के प्रधान रूप से दो भाग किये जा सकते है—
(अ) श्वेताम्बर जैन सत कवि
(आ) दिगम्बर जैन सत कवि

(अ) श्वेताम्वर जैन सत कवि — इन्हे फिर दो भागो मे वाँटा जा सकता है—

(इ) तपागच्छ के कवि– लावण्य समय, जयवत सूरि, सकलचद्र उपाध्याय, जयसोम, काति विजय, ज्ञान उद्योत, वीर विजय, माणक विजय, उत्तम विजय आदि कवि इस वर्ग मे आते है।

(ई) खरतर गच्छ के कवि– कनक, साधुकीर्ति, कनक सोम, विद्याकीर्ति, समय सुन्दर, श्रीसार, जिनराज सूरि आदि कवि इस वर्ग मे आते हैं।

(आ) दिगम्बर जैन सत कवि— भट्टारक सकलकीर्ति, ठकुरसी, मल्लिदास, देवानदि, जीवधर, शातिदास, भट्टारक धर्मदास, भट्टारक धर्मचद, हर्षकीर्ति आदि कवि इस वर्ग मे आते है।

(२) जैनेतर सत-कवि — रामदेव जी और आई माता के भक्त सत हरजी भाटी और सत सहदेव इस वर्ग के कवि है।

(३) *रचना शैली* ·

रचना-शैली की दृष्टि से वेलि साहित्य के तीन भाग किये जा सकते है–
(क) चारणी शैली
(ख) जैन शैली
(ग) लौकिक शैली

(क) चारणी शैली – इस शैली मे ऐतिहासिक और धार्मिक-पौराणिक वेलियाँ लिखी गई है। ऐतिहासिक वेलियाँ वीर रसात्मक है। शृ गार रस कही आया भी है तो वीर रस का सहायक बनकर। धार्मिक–पौराणिक वेलियाँ कृष्ण-रुक्मणी और शिव-शक्ति से सम्बन्ध रखने वाली है। इस शैली की प्रधान विशेषता है साहित्यिक डिंगल भाषा का प्रयोग। वयणसगाई शब्दालकार का प्रयोग सर्वत्र किया गया है। अन्य अलकारो मे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा का व्यवहार अधिकता से हुआ है। इस शैली की लगभग सभी वेलियाँ छोटे साणोर के भेद– वेलियो, सोहणो, खुडदसाणोर– मे लिखी गई है।

(ख) जैन शैली –विषय विविधता की दृष्टि से इस शैली का अपना विशेष महत्व है। इस शैली मे कथात्मक वेलियाँ लिखी गई है तो ऐतिहासिक भी। उपदेश देने की भावना से प्रेरित होकर वेलिकारो ने धार्मिक सिद्धान्तो की तात्विक विवेचना भी की है। इस शैली की प्रधान विशेषता है सरल-सुबोध जन साधारण की भाषा का प्रयोग। छद भी लोक-धुन पर आधारित ढाल आदि प्रयुक्त हुए हैं। मात्रिक छदो मे दोहा, सार, सखी, हरिपद आदि प्रमुख है।

(ग) लौकिक शैली – इस शैली मे लिखी गई वेलियाँ लोक-साहित्य के अतर्गत आती है। किसो देवी देवता के मदिर के प्रागरण मे लम्बी-लम्बी रातो तक गाने के लिए ही रामदेव जी, आईमाता तथा उनके भक्तो के जीवन चरित्र को इन वेलियो का वर्ण्य-विपय बनाया गया है। गायन-तत्व इस शैली की प्रमुख विशेपता है। भापा ग्रामीरण है जो आज भी जन-साधारण मे बोली जाती है।

(४) रचना–स्वरूप

रचना–स्वरूप की दृष्टि मे वेलि साहित्य के दो रूप मिलते हैं–

(क) प्रबध

(ख) मुक्तक

(क) प्रबध – प्रबधात्मकता वेलि माहित्य की एक सामान्य विशेपता है। पृथ्वीराज कृत 'क्रिसन रुक्मणी री वेलि', आढा किशना कृत 'महादेव पार्वती री वेलि', जयवन्त सूरि कृत 'स्थूजिभद्र मोहन वेलि', चतुर विजय कृत 'नेम राजुल वेल' वीर विजय कृत 'स्यूली भद्रनी शीयल वेल', उत्तम विजय कृत 'नेमिश्वर स्नेह वेलि' आदि रचनाएँ प्रबन्ध की दृष्टि से खण्ड काव्य मानी जा सकती है। अन्य कई वेलियाँ–वलभद्रवेलि, चदनबाला वेलि, जिन चरित्र वेलि, जम्बू-स्वामी वेलि आदि–प्रबन्ध की आत्मा को छिपाये हुए भी आकार मे बहुत छोटी है। कुछ वेलियो मे तो शीर्पक के ही साथ काव्य-स्वरूप का उल्लेख कर दिया गया है, जैसे–सव्वत्थ वेलि प्रबन्ध, नेमि-राजुल बारह मासा वेल प्रबन्ध आदि।

(ख) मुक्तक –जिन वेलियो मे कथा की कोई धारा नही चलती है वे मुक्तक के अन्तर्गत आती है। ऐसी वेलियो मे या तो किसी राजा महाराजा, चक्रवर्त्ती, आदि की कीर्ति-गाथा गाई गई है या कोई न कोई उपदेश दिया गया है। उदैसिघ री वेल, सूरसिंघ री वेल, अनोपसिंघ री वेल, भरत वेलि, आदि रचनाएँ प्रथम कोटि की है। चिहुगति वेलि, पचेन्द्रिय वेलि, पचगति वेलि, चार कपाय वेलि, जीव वेलडी, अमृत वेलिनी सज्झाय आदि रचनाएँ द्वितीय कोटि की है।

(५) रचना-विपय

रचना-विपय की दृष्टि से सम्पूर्ण राजस्थानी वेलि साहित्य के स्थूल रूप से तीन भाग किये जा सकते है–

(क) चारणी वेलि साहित्य

(ख) जैन वेलि साहित्य

(ग) लौकिक वेलि साहित्य

(क) चारणी वेलि साहित्य

यह साहित्य चारणी शैली मे लिखा गया है। इसके दो प्रधान भेद है—

(१) ऐतिहासिक

(२) धार्मिक-पौराणिक

(१) ऐतिहासिक – इसमे राजकुल तथा सामन्त कुल के विभिन्न वीरो का यशोगान किया गया है। यह यशोगान प्राय युद्ध-वर्णन (देईदास जैतावत री वेल, रतनसी खीवावत री वेल, चादाजी री वेल, रायसिघ री वेल) तथा श्रृगार-वर्णन (राउल वेल) के रूप मे हुआ है। 'सूरसिघ री वेल', 'अनोपसिघ री वेल' तथा "राउरतन री वेल" मे चरित्र-नायक की वश-परम्परा का उल्लेख कर उसकी प्रशसा की गई है।

(२) धार्मिक-पौराणिक –इसमे विष्णु और शिव के प्रति भक्ति भावना प्रकट की गई है। विष्णु के रूप मे राम (रघुनाथ चरित्र नव रस वेलि) और कृष्ण (क्रिसन रुक्मणी री वेलि, गुण चाणिक वेलि) दोनो अपनाये गये है। शिव और शक्ति के सम्बन्ध को लेकर 'महादेव पार्वती री वेलि' तथा 'त्रिपुर सुन्दरी री वेल' का सृजन किया गया। भक्ति के साथ-साथ श्रृगार की सुन्दर योजना इस साहित्य की विशेषता है।

(ख) जैन वेलि साहित्य

यह साहित्य जैन शैली मे लिखा गया है। इसके तीन प्रधान भेद है—

(१) ऐतिहासिक

(२) कथात्मक

(३) उपदेशात्मक

(१) ऐतिहासिक –इसमे वेलिकारो द्वारा अपने गुरू (धर्माचार्य) का ऐतिहासिक जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया गया है। भट्टारक धर्मदास ने भट्टारक गुणकीर्ति की (गुरू वेलि) काति विजय ने यशो विजय की (सुजस वेलि) सकलचन्द्र ने हीर विजय सूरि की (हीर विजय सूरि देशना वेलि) वीर विजय ने शुभ विजय की (शुभ वेलि) तथा साधुकीर्ति ने जिनभद्र सूरि से लेकर जिनचन्द्र सूरि तक की खरतर गच्छीय पाट-परम्परा का वर्णन करते हुए युग प्रधान जिनचन्द्र

सूरि की (सव्वत्थ वेलि प्रबन्ध) जीवन-गाथा को अपना काव्य-विषय बनाया है। समय सुन्दर ने श्रमण होकर भी 'सोमजी निर्माण वेलि' मे सघपति श्रावक सोमजी को अपनी श्रद्धाजली अर्पित की है। कनकसोम ने 'जइतपद वेलि' मे खरतरगच्छ और तपागच्छ के बीच हुई ऐतिहासिक पौषध चर्चा (वि० स० १६२५ मिगसर वदी १२, आगरा) का वर्णन किया है।

(२) कथात्मक –इसमे जैन कथाओ को काव्य का विषय बनाया गया है। कथाएँ विशेषकर तीर्थंकर, चक्रवर्त्ती, बलदेव, सती तथा अन्य महापुरुषो से सबधित है। तीर्थंकरो मे ऋषभदेव (ऋषभगुण वेलि, आदिनाथ वेलि) नेमिनाथ (नेमिपरमानन्द वेलि, नेमिश्वर की वेलि, नेमिश्वर स्नेह वेलि, नेमिनाथ रस वेलि, नेमि–राजुल बारहमासा वेल प्रबन्ध, नेम-राजुल वेल) पार्श्वनाथ (पार्श्वनाथ गुण वेलि) और वर्द्धमान महावीर (वीर वर्द्धमान जिन वेलि, वीर जिन चरित्र वेलि) का आख्यान गाया गया है। चक्रवर्त्ती मे भरत (भरत की वेलि) बलदेव मे वलभद्र (बलभद्र वेलि) तथा सतियो मे चदन-बाला (चदनबाला वेलि) का वृत्त अपनाया गया है। अन्य महापुरुषो मे जम्बूस्वामी (जम्बूस्वामी वेल, प्रभव जम्बूस्वामी वेलि) बाहुबलि (लघु बाहु-वली वेलि) स्थूलिभद्र (स्थूलिभद्र मोहन वेलि, स्थूलिभद्र नी शीयल वेल, स्थूलिभद्र कोश्या रस वेलि) रहनेमि (रहनेमि वेलि) वल्कल चीरी (वल्कल-चीर ऋपि वेलि) आदि की कथा को काव्यबद्ध किया गया है। तीर्थ व्रतादि के माहात्म्य को वतलाने के लिए 'सिद्धाचल सिद्ध वेलि' तथा 'कर्मचूर व्रत कथा वेलि' की रचना की गई है।

(३) उपदेशात्मक –इसमे आध्यात्मिक उपदेश दिया गया है। ससार की दुखद-दशा और असारता का वर्णन कर जीव को जन्म-मरण से मुक्त होने के लिए प्रेरित किया गया है। यह उपदेश इन्द्रिय (पचेन्द्रिय वेलि) गति (चिहु गति वेलि, पचगति वेलि, वृहद् गर्भ वेलि, जीव वेलडी) लेश्या (पडलेश्या वेलि) गुणस्थान (गुणठाणा वेलि) कपाय (चार कपाय वेलि, क्रोध वेलि) भावना (वारह भावना वेलि) आदि का तात्विक विश्लेषण कर दिया गया है। 'अमृत वेलिनी सज्झाय', तथा छीहल कृत 'वेलि' मे सामान्य रूप मे मन को विपय-वासना मे हटाकर आत्म-ज्ञान प्रज्वलित करने की बात कही गई है। 'प्रतिमाधिकार वेलि' मे जिन प्रतिमा के पूजने की देशना दी गई है।

(ग) लौकिक वेलि साहित्य .

यह साहित्य लौकिक शैली मे लिखा गया है। इसके तीन प्रधान भेद है–

(१) ऐतिहासिक

(२) जनश्रुतिपरक

(३) नीतिपरक

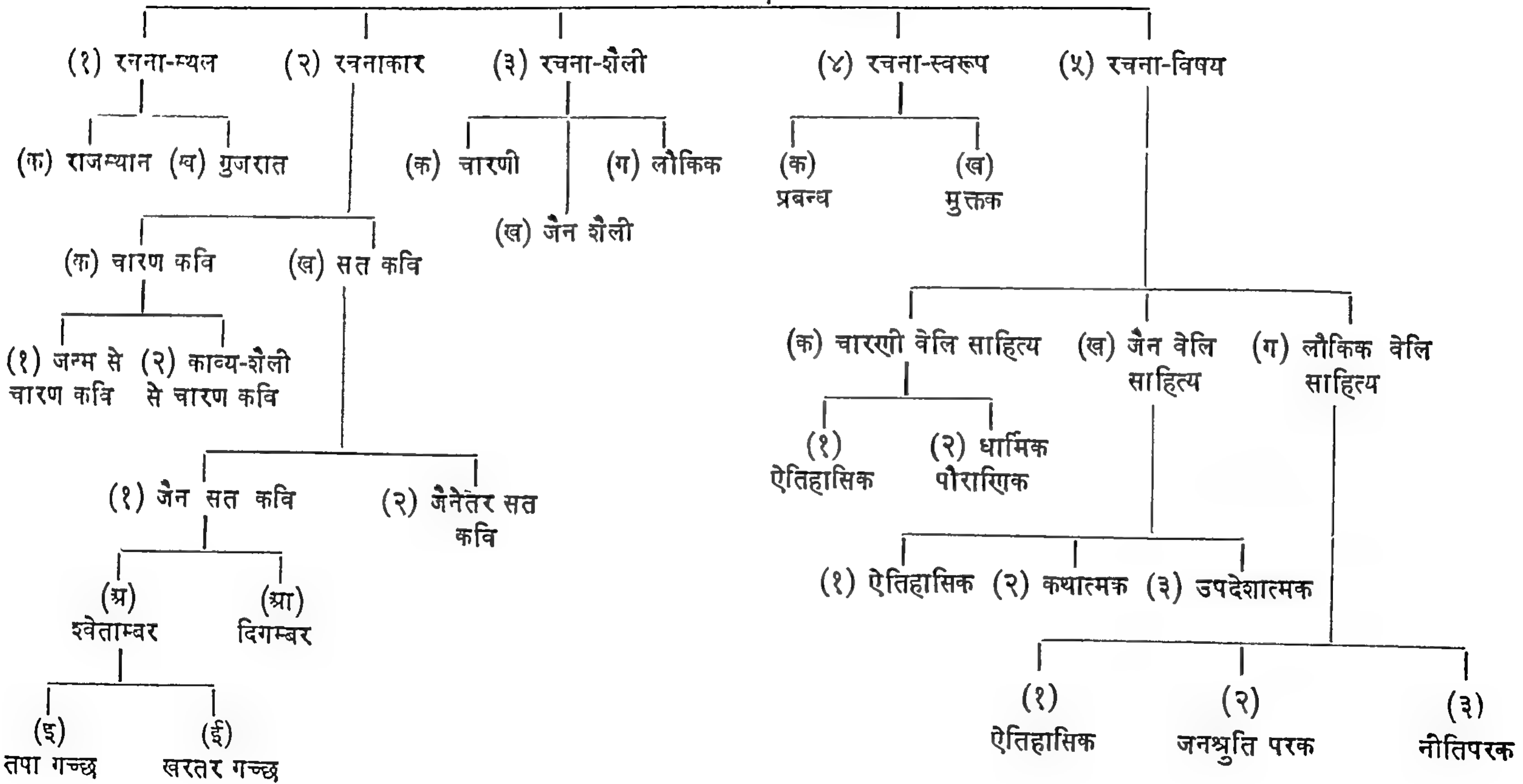
(१) ऐतिहासिक –इसमे रामदेवजी (रामदेव जी री वेल) आईमाता (आईमाता री वेल) तथा उनके भक्तो–रूपादे (रूपादे री वेल) तोलादे (तोलादे री वेल) पीर गुमानसिंघ (पीर गुमानसिंघ री वेल), बाबा गुमान भारती (बाबा गुमान भारती री वेल)–का जीवन चरित्र वर्णित है। वेलिकार स्वय रामदेव जी तथा आईमाता के भक्त रहे है अत चरित्र नायक का अस्तित्व भर ऐतिहामिक है। उसके साथ जो आश्चर्य तत्व सयोजित हुए है वे भक्ति-भावना की प्रभावना के द्योतक प्रतीत होते है।

(२) जनश्रुतिपरक.–इसमे 'रत्नादे री वेल' आती है। रत्नादे आईमाता की उपासिका है। इस वेल मे आये हुए चरित्रो का ऐतिहासिक वृत्त ज्ञात नही हो पाया है। जनश्रुति के रूप मे इनकी कथा चली आई है। अत इस वेल का समावेश हमने जनश्रुति परक लौकिक वेलि साहित्य के अन्तर्गत किया है।

(३) नीतिपरक –इसमे 'अकल वेल' आती है। इसके रचयिता का पता नही लग पाया है। विषय और शैली को देखते हुए इसे नीतिपरक लौकिक वेलि साहित्य मे रखा जा सकता है।

वेलि साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत करते समय हमने इसी अन्तिम वर्गीकरण (रचना–विषय) को अपना आधार बनाया है।

वर्गीकरण का रेखा-चित्र इस प्रकार बनाया जा सकता है—



द्वितीय खण्ड

(चारणी वेलि साहित्य)

चतुर्थ अध्याय

चारणी वेलि साहित्य (ऐतिहासिक)

सामान्य–परिचय

सम्पूर्ण चारणी वेलि साहित्य को हमने दो रूपो मे बाँटा है :–

(१) ऐतिहासिक
(२) धार्मिक–पौराणिक

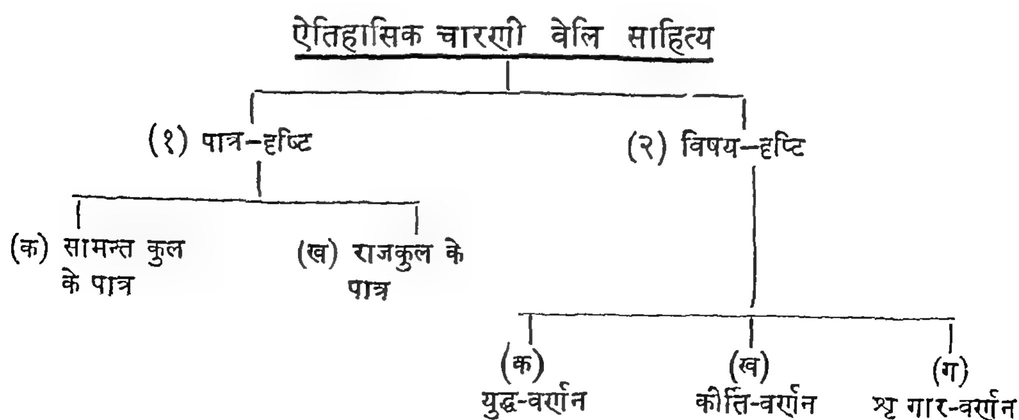
इनमे ऐतिहासिक चारणी–वेलि साहित्य को पात्र–दृष्टि से दो भागो मे बाँटा जा सकता है :–

(क) सामन्त कुल के पात्र
(ख) राजकुल के पात्र

इसी प्रकार विषय की दृष्टि से भी इनके तीन भाग किये जा सकते है–

(क) युद्ध–वर्णन (मुख्यत सामन्त–पात्री वेलियो मे)
(ख) कीर्ति–वर्णन (मुख्यत राजकुल-पात्री वेलियो मे)
(ग) शृंगार-वर्णन (राउल वेल मे)

इसका रेखा-चित्र इस प्रकार बन सकता है–



(क) सामन्त कुल के पात्र –इस वर्ग के अन्तर्गत निम्नलिखितित वेलियाँ आती है–

(१) राउल वेल
(२) देईदास जैंतावत री वेल
(३) रतनसी खीवावत री वेल
(४) चादाजी री वेल

(ख) राजकुल के पात्र –इस वर्ग के अन्तर्गत निम्नलिखित वेलियाँ आती है–

(५) उदैसिंघ री वेल
(६) रायसिंघ री वेल
(७) राउ रतन री वेल
(८) सूरसिंघ री वेल
(९) अनोपसिंघ री वेल

सामान्य विशेषताएँ

ऐतिहासिक चारणी वेलि साहित्य की सामान्य विशेषताए निम्नलिखित है –

(१) वीरगाथा कालीन कवियो की तरह यहाँ भी राजा–महाराजा–सामन्तो की वीर प्रशस्ति गाई गई है। जहाँ वीर गाथाकालीन कवि अतिशयोक्ति के प्रवाह मे आकर ऐतिहासिकता को विस्मृत कर कथा को विरूप बना देते थे वहाँ ये वेलिकार ऐतिहासिकता की पूरी पूरी रक्षा कर पाये हैं। केवल नामो और स्थानो मे ही नही बल्कि घटनाओ और तिथियो मे भी ऐतिहासिकता की रक्षा हुई है। कही–कही राजा–महाराजाओ की वैयक्तिक जीवन सबधी घटनाए भी आई हैं जिनकी पुष्टि भी ख्यातो से होती है। अलौकिक तत्वो और कथानक रूढियो का प्राय आश्रय नही लिया गया है।

(२) यहाँ जो नायक है वे या तो राजा-महाराजा हैं या सामन्त-सरदार। वीरता उनमे कूट कूट कर भरी है। अपने देश की रक्षा के लिए अथवा स्वामि-भक्ति के निर्वाह के लिए शत्रुओ से मुकाबला करने की अमिट साध लेकर ये आगे बढते है। विजय मिलने पर ये जितने प्रसन्न होते है प्राणोत्सर्ग करके भी उतने ही उल्लसित। वीर होने के साथ साथ ये दानी, उदार, विद्वान और दयालु भी होते है। इनकी प्रेम भावना-विलासित-का चित्रण (राउल वेल को छोडकर) यहाँ नही किया गया है। यदि कही श्रृङ्गार आया भी है तो वीर भावना को उद्दीप्त करने के लिए विप-कामिनी का रूपक बनकर जैसे 'रतनसी खीवावत री वेल' मे।

(३) नायक की प्रशस्ति के साथ साथ नायक की वशावली का भी कतिपय वेलियो मे उल्लेख किया गया है। 'सूरसिंघ री वेल' मे जयचद से लेकर सूरसिंह तक की राठौड वशावली का और 'अनोपसिंघ री वेल' मे आदिनारायण से लेकर अनोपसिंह तक की वशावली का उल्लेख है।

(४) वीर रस अगी-रस बनकर आया है। वीभत्स, रौद्र और भयानक वीर रस के ही सहायक हैं। 'रतनसी खीवावत री वेल' मे विप-कामिनी के सागरूपक मे सुन्दर श्रृगार की सृष्टि हुई है पर वह वीर रस को ही उद्दीप्त करता है। 'राउल वेल' मे नायिकाओ के नखशिख-निरूपण का वर्णन है। यह वेल सर्व प्रथम रचना होने के कारण ही अपवाद के रूप मे यहाँ सम्मिलित कर ली गई है। वैसे ऐतिहासिक चारणी वेलि साहित्य से उसका सीधा सबध नही है।

(५) इसमे जो चरित्र नायक आये है उनका समय सामान्यत १७वी-१८वी शताब्दी रहा है (राउल वेल को छोडकर)।

(६) वेलिकार प्राय चरित्र-नायक के समकालीन रहे हैं और वे स्वय अपने नायक (आश्रयदाता) के साथ युद्ध-क्षेत्र मे भी लडते रहे है या युद्ध के समय उप-स्थित रहे हैं।

(७) प्रदेश की दृष्टि से इस साहित्य का सबध बीकानेर, जोधपुर, उदयपुर, और बूदी राज्यो से है (राउल वेल को छोडकर)।

(८) काव्य-रूप की दृष्टि से इन वेलियो का समाहार वर्णन-मुक्तक मे होगा। प्रबध सी कोई कथा चलती प्रतीत नही होती।

(९) इस साहित्य की भापा साहित्यिक राजस्थानी (डिंगल) है। उसमे ओज गुण की प्रधानता है। शब्दालकारो मे वयण सगाई[1] का प्रयोग सर्वत्र किया गया

१—वयण-सगाई डिंगल कविता की एक प्रमुख विशेषता है। यह एक प्रकार का शब्दानुप्रास है। इसका अर्थ है वर्ण द्वारा स्थापित शब्दो की सगाई या सम्बन्ध। यह सगाई साधारणत चरण के प्रथम और अन्तिम शब्दो की होती है पर कभी कभी अन्यान्य शब्दो की भी होती है। इस दृष्टि से वयण सगाई के दो भेद होते हैं—

(१) साधारण —जिसमे चरण के प्रथम शब्द की चरण के अन्तिम शब्द के साथ सगाई हो।

(२) असाधारण —जिसमे (क) चरण के प्रथम शब्द की चरण के उपान्त्य शब्द के साथ, अथवा (ख) चरण के द्वितीय शब्द की चरण के अन्तिम शब्द के साथ सगाई हो। वयणसगाई कभी एक ही वर्ण द्वारा और कभी दो भिन्न वर्णों के द्वारा स्थापित की जाती है। इस दृष्टि से इसके तीन भेद होते है—

(१) उत्तम या अधिक —जब सगाई उसी वर्ण के द्वारा हो।

(२) मध्यम या सम —जब सगाई भिन्न स्वरो और अर्धस्वरो (य, व) के द्वारा हो।

(३) अधम या न्यून —जब सगाई भिन्न व्यजनो के द्वारा हो।

वयणसगाई को स्थापित करने वाला वर्ण कभी अन्तिम शब्द के आदि मे आता है, कभी मध्य मे और कभी अन्त मे। इस दृष्टि से भी वयणसगाई के तीन भेद होते हैं—

(१) आदि–मेल —जब वयणसगाई को स्थापित करने वाला वर्ण अन्तिम शब्द के आदि मे आवे।

(२) मध्यमेल —जब वयणसगाई का स्थापक वर्ण अन्तिम शब्द के मध्य मे आवे।

(३) अन्तमेल —जब वयणसगाई का स्थापक वर्ण अन्तिम शब्द के अन्त मे आवे।

है। अर्थालकारो मे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति का विशेष प्रयोग हुआ है।

(१०) छद की दृष्टि से छोटा साणोर[1] अपने तीन भेदो–वेलियो, सोहणो, खुडद साणोर–मे प्रयुक्त हुआ है। प्रारम्भ मे सरस्वती-गणेश आदि के मङ्गलाचरण मे कही दोहा और छप्पय भी आये है।

(११) इतिहास की दृष्टि से इस साहित्य का बडा महत्व है। आगे के पृष्ठो मे उपलब्ध प्रमुख वेलियो का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

१—छोटासाणोर चारणी गीतो मे सबसे अधिक प्रसिद्ध गीत है। इसके चार मुख्य भेद हैं–

(१) वेलिलो –जिसके चारो चरणो मे क्रमश १६।१५।१६।१५। मात्राएँ हो। इसकी गति वीर या आल्हा छद के समान होती है। अन्त मे ऽ। आता है।

(२) सोहणो –जिसके चरणो मे १६।१४।१६।१४ मात्राएँ हो। इसकी गति ताटक के समान होती है। अन्त मे ऽ। नही आता।

(३) खुडद साणोर (खास छोटा साणोर) –जिसके चरणो मे १६।१३।१६।१३ मात्राएँ हो। इसके चरण के पूर्वार्द्ध की गति वीर या ताटक के पूर्वार्द्ध के समान और उत्तरार्द्ध की गति धरणी चडिका के समान होती है। अन्त मे ।।। या ।ऽ आता है।

(४) जागडो –जिमके चरणो मे १६।१२।१६।१२ मात्राएँ हो।

इसकी गति सार छद के समान होती है। अन्त मे ऽ। नही आता। यह स्मरणीय है कि इस गीत के प्रथम चरण मे सर्वत्र २ मात्राएँ अधिक होती हैं अर्थात् प्रथम चरण १६ मात्रा के स्थान पर २+१६=१८ मात्रा का होता है। ये अतिरिक्त दो मात्राएँ चरण के आरम्भ मे जुडती हैं अन्त मे नही। ऐतिहासिक चारणी वेलि साहित्य मे छोटासाणोर का अन्तिम भेद जागडो प्रयुक्त नही हुआ है। यहाँ जो छन्द व्यवहृत हुआ है उसका विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है–

विषम चरण–

प्रथम चरण – १८ मात्राएँ
तृतीय चरण – १६ मात्राएँ

समचरण–

द्वितीय चरण) (१५ मात्राएँ, अन्त मे ऽ। अथवा
) – (१४ मात्राएँ, अन्त मे ।ऽ अथवा
चतुर्थ चरण) (१३ मात्राएँ, अन्त मे ।।। या ।ऽ

(१) राउल वेल[1]

प्रस्तुत वेल नायिकाओं के नख-शिख वर्णन से सम्बन्ध रखती है[2]। ये नायिकाएँ कलचुरि वंश के राजाओं के किसी सामन्त की थीं। कवि ने चरित्र-नायक को 'टेल्ल'[3] (त्रिकलिंग निवासी) और 'टेल्लिपुत्र'[4] कहा है। गौड तथा गोदावरी तट के निवासी उसके भाग्य की ईर्ष्या करते थे[5]। ग्यारहवीं तथा बारहवीं शती में त्रिकलिंग त्रिपुरी के कलचुरि वंश के राजाओं के शासन में था। कलचुरि गौड[6] नहीं थे। अतः काव्य-नायक का राजा न होकर उन्हीं राजाओं का सामन्त होना अधिक सम्भव है[7]।

१—(क) मूल पाठ में वेल नाम आया है—

रोडें राउर वेल वखाणी। पुणु तह भासह जइसी जाणी ।।पंक्ति ४६।।

(ख) यह वेलि एक शिला पर अङ्कित है जो बम्बई के प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम में विद्यमान है। यह लेख मालवा के धार नामक स्थान से प्राप्त हुआ था। यह काले पत्थर पर है और उक्त म्यूजियम के पुरातत्व विभाग का नवा प्रदर्शितव्य (एग्जिबिट) है। इसका आकार ४५"×३३" है। वर्तमान रूप में यह भग्नावस्था में है। लेख की प्रथम पंक्ति सर्वथा अपाठ्य हो गई है। अन्तिम पंक्ति का अधिकांश भाग भी अपाठ्य है। बीच बीच में कुछ स्थानों पर भी पत्थर घिस गया है। सर्व प्रथम इसका प्रकाशन डा० हरिवल्लभ चूनीलाल भायाणी ने भारतीय विद्या (भाग १७ अङ्क ३-४ पृ० १३०-१४६) में कराया। तत्पश्चात डा० माताप्रसाद गुप्त ने "हिन्दी अनुशीलन" के धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक (वर्ष १३ अङ्क १-२ जनवरी-जून, १९६० पृ० २१-३८) में इसे प्रकाशित किया। पाठ और अर्थ के सम्बन्ध में दोनों में बहुत मतभेद है। प्रस्तुत विवेचन डा० गुप्त के पाठ के आधार पर किया गया है।

२—डा० हरिवंश कोछड ने इसमें राधे रावल के वंशज राजकुमार के सौन्दर्य का वर्णन होना लिखा है (अपभ्रंश साहित्य पृ० ३५ पाद टिप्पणी)

३—एहा वेहु सुहावा टेल्ल (१८)

४—केहा टेल्लिपुतु तुहु भाखहि (१५)

५—गौडहो गोल्लाहो वोलउ जो जमु भावइ (४१)

६—कवि ने नायक को गौड कहा है—

(क) गौड तुहु एकु को पनु अउर वर (२८)

(ख) गौड सुआणु स तइ कत दीठे (१९)

७—डा० माताप्रसाद गुप्त हिन्दी अनुशीलन धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक पृ० २३

कवि परिचय

कवि ने वेल के अन्त मे अपना नामोल्लेख किया है।[1] उसके अनुसार उसका नाम रोडो (रोडा) है। यह कौन था? इस सम्बन्ध मे कुछ भी ज्ञात नही होता। शिलालेख मे इसने अपने को 'वडिरा'[2] (∠वदी) कहा है। सभव है यह चरित्र नायक का वदी-जन हो।

रचना-काल

इसका समय ११वी शती के लगभग है।[3]

रचना-विषय

प्रस्तुत प्राप्य वेल ४६ पक्तियो की है। अनुमान है प्रारम्भ मे कुछ पक्तियां और रही होगी। इसमे कुल ६ नायिकाओं[4] का नख-शिख वर्णन है जो सिर मे प्रारम्भ होकर पैरो तक चलता है। ये नायिकाएँ नायक की नव-विवाहित पत्नियाँ या रखेलियां है।

(१) पहला नख-शिख वर्णन —इसका वर्णन १ से ५ तक की पक्तियो मे हुआ है। प्रारम्भ की पक्तियो तथा कुछ अन्य अ शो के खडित हो जाने के कारण नायिका का पता नही चलता। आंखो से पूर्व का अ श भी नही है। नायिका की आँखो मे तरल काजल दीखता है।[5] अधर के ताम्बूल द्वारा उसका मन लाल हो गया है।[6] उसके गले मे जाल कठी शोभा देती है।[7] रक्तवर्णीय सुन्दर कचुक उसके अ गो मे कसकर बधा हुआ है।[8] आभरण रहित होने पर भी उसके पैरो की विशिष्ट शोभा है।[9] ऐसी बेटी जिस घर मे आवे उस घर की समानता कौन कर सकता है?[10]

१—रोडे राउल वेल वखाणी (४६)

२—(क) बुद्धिरे वडिरो आपणी हारमि (२२)

(ख) सु जो देखि वडिरो को न मू भइ जणु (२४)

(ग) काठी वेंही वडिरो आलु (२६)

३—इसी पुस्तक के प्रथम अध्याय का परिशिष्ट पृ० २३

४—डा० भायाणी ने लेख की अन्तिम पक्ति के 'आठह मासह' शब्दो के आधार पर इसमे आठ प्रदेशो की स्त्रियो के नख-शिख वर्णन की सभावना प्रकट की है।

भारतीय विद्या भाग १७ अ क ३-४, पृ० १३१

५—आखिहिं काजलु तरल उदा-जई (२)

६—अहर तबोलें मणु मणु रातउ (२)

७—जाला काठी गलइ सुहावइ (३)

८—रातऊ कचुआ अति सुठु चागउ। गाढउ वाधइ आगउ (४)

९—विणु आहरणें जो पायेन्हु सोह (५)

१०—अइसी बेटिया जा घरू आवइ। ताहि कि तूलिम्व कोऊ पावइ (५)

(२) दूसरा नख-शिख वर्णन —इसका वर्णन ५ से १० पक्तियो मे हुआ है। नायिका कोई हूणि है।[1] उसने वलि हुए सर्पो को बालो के रूप मे बाध रखा है।[2] कठ मे कठी पहन रखी है जो लोक की दृष्टि मे मण्डित होती और उन्हे क्षुब्ध करती है।[3] उसका यौवन उभर रहा है।[4] पैरो मे पाद-हसिका है जिसने उसके अ गो मे लावण्य भर दिया है।[5]

(३) तीसरा नख-शिख वर्णन —इसका वर्णन १० से १४ पक्तियो मे हुआ है। नायिका राउल[6] नाम की क्षत्रिय कन्या प्रतीत होती है। उसकी आँखो मे अल्प अ जन आजा गया है।[7] कानो मे करडिम (कर पत्रिका-आरे के समान दाँतदार एक कर्णाभरण) और काचडी (एक प्रकार का कर्णाभरण) पहन रखी है।[8] गले मे खोखली कठी है जो काम की शृ खला सी लगती है।[9] लम्बा रक्त वर्णीय कचुक जो उसने धारण कर रखा है वह सबको उन्मत्त करने वाला है।[10] उसके पीन पयोधर तरुणो को देखते ही बावला कर देते है।[11] उसकी बाहे मल्ल-अवष्टम्भन स्तम्भ के समान लम्बी है।[12] लहराता हुआ उसका परिधान सबको मोहित करने वाला है।[13] नूपुरो की ध्वनि कानो को सुहाती है।[14] हस की गति उसकी गति मे आधी भी नही है।[15] जिस घर मे यह अवलग्ना प्रवेश करती है वह घर (सचमुच) राउल (राजभवन)

१—(क) चा अनु मण हुणि तो ते आपुली गम्वारिम्व आखइ (१०)

(ख) इस समय हूण कन्याओ मे विवाह होते थे। प्रसिद्ध कलचुरि शासक कर्ण (लक्ष्मीकर्ण) का उत्तराधिकारी और पुत्र यश कर्ण उसकी हूण रानी आवल्ल देवी से था (दे० इपिग्राफिया इ डिका, भाग २, पृ० ४ तथा भाग १२ पृ० २१२)

२—वलि अहि वाधलि अहि जे चागिम्व (६)

३—कचि काठी काठिहि सोहइ। लोकह ची दिठि माड चि खोहइ (७)

४—आविलु कान्हडा दढ गाढा। आनिकु जोवरगु ऊ रू थाढा (८)

५—पाईहि पाहसिया चिरू चागा। लोण चि आनिक माडी आगा (९)

६—आ उ डउ जो राउल सोहइ (११)

७—डहरउ आखिहि काजलु दीनउ। जौ जाणइ सो थइ नउ वानउ (११)

८—करडिम्व अनु काचडिअउ कानहि। काइ करेवउ सोहहि आनहि (११)

९—गलइ पुलू कौ भावइ ? काठी। काम्वतणी साहर इन (१२)

१०—लावभ लावउ काचू रानउ। कोकुन देखतु कर इउ मातउ (१२)

११—थणहि सो ऊ चउ किअउ राउल। तरुणा जोवन्त करइ सो वाउल (१२)

१२—वाहडि अउ सो म्वालउ दीहइ (१३)

१३—पहिरणु फरहरे पर सोहइ। राउल दीसतु सउ जगु मोहइ (१३)

१४—भणि नेउराणी कान सुहावइ (१४)

१५—हास गइ जा चालति अहसी। सा वाखर णहु राउल कइसी (१४)

जैसा दीखता है।[1] ऐसी सुन्दरी नायिका का मग्गण हाथ समस्त क्षत्रियजन चाहते है।[2]

(४) चौथा नख-शिख वर्णन — इसका वर्णन १७ से १६ पक्तियो मे हुआ है। नायिका कोई टक्किणी[3] है। दिन के लिए निर्मित चन्द्रमा का सवर्ण कोई पदार्थ उसके मुख की शोभा के एक भाग को भी प्राप्त नही कर सकता।[4] उसके दोनो गण्ड कय्यडियो (एक प्रकार का कर्णाभरण) से अति शोभा देते है जिसके कारण अन्य मडन सब ही दब चुके है।[5] कठ मे जलारी (जल्लार देश की) कठी शोभित है।[6] अर्द्धनग्न स्तनो पर कञ्चुक है जो कामदेव का कवच लगता है।[7] कञ्चुक के बीच मे जो स्तन दिखाई पडते है उन्हे देखकर लोग सब वस्तुओ को उद्वेपित करते है।[8] गोरे अग पर दोरगा कञ्चुक ऐसा लगता है मानो सध्या और ज्योत्स्ना का सगम हुआ हो।[9] राजभवन मे प्रवेश करती हुई ऐसी नायिका को लोग आँखे मलमल कर देखते है।[10]

(५) पॉचवा नख-शिख वर्णन — इसका वर्णन १६ से २८ पक्तियो मे हुआ है। इसकी नायिका कोई गौडी है।[11] बधनो मे बधे हुए केश उसके मुख पर लोल हो रहे है।[12] खोप के ऊपर बधा हुआ अमेअल (शेखरक-जूडे ऊपर बाधी जाने वाली माला) इस प्रकार सुशोभित होता है मानो रवि राहु के द्वारा ग्रसित कर लिया हो।[13] उसकी दृष्टि के फल को देखकर तरुण (मृग) शावक मूर्च्छित हो जाते है,[14] तारे हारकर रजनी-मुख गिने जाने लगे है।[15]

१—जहिं घरे अइसी ओलग पइसइ। तं घरु राउलु जइसउ दीसइ (१४)
२—हार्थाहिं माठि अउ सुठु सोहहिं। अु खता जणु सयनइ चाहहिं (१३)
३—एही टक्किणि पइसति सोहइ (१८)
४—चद सवाणा टी दीहा कियइ। जें मुहु एक्के णवि मडिज्जइ (१६)
५—कय्यडि अहि सोहहिं दुइ गन्न। मडन सडन डहि परे अन्न (१६)
६—कठी कठि जलाली सोहइ। एहा तेहा सउ जणु मोहइ (१६)
७—आधूघाडें थणहिज कच्चू। सो–सन्नाहु अणग हो न–(१७)
८—कच्चू विच्चहिं जे थण दीसहिं। ते निहालि सब वत्थु उवीसहिं (१७)
६—गोरइ अ गि वेरगा कच्चू। सझहि जोन्हहिन सगउ हू (१७)
१०—एही टक्किणि पइसति सोहइ। सा निहालि जणु मलमल चाहइ (१८)
११—अइसी गउडिज राउलें पइसइ (२७)
१२—उेन्हु वाधेन्हु केस ज लुडहिम्ब (२०)
१३—खोपहि ऊपर अम्बेअल कइसे। रवि जणि राहू छे तले जइसे (२०)
१४—दिठहुल फूल अम्हा–म्वाभथि। ते देखि तरुणे सावइ मूभथि (२०)
१५—तारे मण हारे। रयणि मुहा जणु गणि ए तारे (२१)

उसकी सुन्दर भौहे कामदेव के धनुष की अहुणी सी लगती है।[1] वत्त ुल तिलक मानो मुख-चद्र की अवलग्नता मे नमित हुआ हो।[2] कानो मे पहना हुआ ताडरपत्ता (पत्ते के आकार का एक कर्णाभरण) शुद्धि (निर्मलता) के पत्ते की तरह सुशोभित है।[3] गूआ मे रगे हुए रक्तवर्णी दाँत आर्त्त कपर्दिका-पुत्र की तरह मत्त हो रहे है।[4] कठ मे पहना हुआ लडो का तागा ऐसा लगता है मानो कामदेव के हृदय मे अह्मोत्पल लगा हो।[5] गले मे तारिकाओ (नवग्रहो) का जो हार है उसको देखकर अन्य प्रकार के हारो का अपहार (त्याग) हो गया है।[6] भारी स्तनो के बीच जो सूत का हार है वह मानो स्थविर (वृद्ध) कुज (मगल) शोभित हो।[7] पारडी (परार्द्ध–एक प्रकार का बहुत महीन मलमल) की ओट मे उसका भारी स्तन शरद के बादल के बीच चन्द्रमा की तरह लगता है।[8] सूत का हार रोमावली से इस प्रकार मिल गया है मानो गगा का जल यमुना के जल से मिल गया हो।[9] बाहो मे जो चन्द्रहाई पहनी है वह दूसरे चाँद की तरह लगती है।[10] जो श्वेत परिधान उसने पहन रखा है वह ऐसा लगता है मानो मुख-चन्द्र ने ज्योत्स्ना फैलाई हो।[11] ऐसी नायिका जब राजभवन मे प्रवेश करती है तब वह राज-भवन लक्ष्मी के द्वारा मडित दीखता है।[12]

(६) छठा नख-शिख वर्णन – इसका वर्णन २८ से ४६ पक्तियो मे हुआ है। नायिका कोई मालवीया[13] प्रतीत होती है। जब उसकी सुधि आती है तब कामदेव भी अपना हथियार भूल जाता है, इस डर से कि यहाँ हमारी (हमारे शरीर की) ही भागी खोप बन जाएगी[14]। खोप के ऊपर जो सौलडा

१—भउही तु न्दरी देखु वर्व्वर कइसी। ताहि काम्बकरी धणु अउणी जइसी (२१)
२—वेट्टुला टीका केहर भावइ। मुह ससि ओलगचा–नावइ (२२)
३—कानन्हु पहिल ताडर पात। जणु सोहइ एव्र सोहि रे पात (२२)
४—गूआ रागे दसण रे राते। आट कुडी पुत त माते (२३)
५—काठहि माडणु लर तागु। सो लहि मयण हिए वभोअल लागु (२३)
६—नव तु तरी अन्हु कर हार। सो देखि हारन्हु भउ अवहारू (२४)
७—थणहर मार्झे जो हारू सुतेरउ। सोहन्हु न्हु सोए कुज ठेरउ (२४)
८—पारडी अ.तरे थण हृ्‌ कइसउ। सरय जलय विच चादा जइसउ (२५)
९—सूतेर हारु रोमावलि कनिअउ। जणि गागहि जलु जउणहि मिलिअउ (२५)
१०—पैन्हि अलबाही जे चदहाई। बीजेर चादहि ते चदहाई (२५)
११—धवलर कापड ओटि अल कइसे। मुह ससि जोन्हृ पसारिल जइसे (२७)
१२—अइसी गइडिज राउलें पइसइ। सो जणु लाछि माडेउ दीसइ (२७)
१३—ज पुणु मालवीउ वे मुहि आवतु २८
१४—काम्बदेउ जाउ नु आपणाह हथिआरहु भूलइ
इहा अम्हार इ दु मगी खोप करि उभइ (२८–२९)

दिया हुआ है वह ऐसा लगता है मानो सिंदूरिया के राजा देश ने कामदेव कर नमित कर रहा हो[1]। उन्नत ललाट अष्टमी के चांद की तरह लगता है[2]। भौंहें सुन्दर हैं। उनकी आड़ में आँखों का गुण (वैशिष्ट्य) ऐसा लगता है मानो कामदेव ने धनुष नवाया हो[3]। आँखों की फांकें तीखी, उज्ज्वल और तरल हैं। ऐसा (आँखों का) हथियार पाकर कामदेव जगत को क्या करेगा यह बृहस्पति को भी नहीं सूझता[4]? दोनों कपोल ऐसे दीखते हैं मानो विधाता ने पूर्णिमा के चांद को फाड़ कर हरिण को अलग डाल दिया है[5]। कानों में पहने हुए खटिवन (कुंडल?) ऐसे लगते हैं मानो पूर्णिमा के दो चांद उनकी कोड़ में सुहाते हों[6]। गले में बंधी हुई एकावली इस प्रकार भाती है मानो मुखचंद्र की सेवा में आकर सत्ताईस नक्षत्र-बालाएं नमस्कार कर रही हों[7]। उसके ऊंचे, वर्तुल और पीन स्तन ऐसे लगते हैं जैसे सोने के मङ्गल-कलश या कामदेव के घट हों जो जल की ओट में उनकी शोभा पाते हों[8]। त्रिवली की रोमराजि ऐसी लगती है मानो शोभा के दो आधे-आधे पक्ष युद्ध करते हों और वह वहां उस युद्ध का निवारण करती हो[9]। मोती का जो एक हार है उसकी शोभा के आगे यह संसार

१—सोपहि ऊपरि गोलट्टउ दीनउ जानु स सिंगउ भावइ
जिमउ सिंदूरिअउर जायगु काम्भदेव ह करउ नावइ (२९)

२—लाडु रतु स्वर उगु पवाणु न गान्हउ न ऊ गउ
सो देखिउ आठम्यिहि करउ चादु उगउ भावइ (३०)

३—भउह ह हु र दुइ तु स्वरी हि गाम्ही हि माभाह आंखिहि करउ गुणइ
जइसउ काम्भ करउ धणु हु चडाविउ (३०–३१)

४—आखिर फाटा तीखा ऊजला तरला ते आनति जीभ ग्रहइ।
तइसउ हथिआरु पाविउ काम्भदेउ जग ही काइ करिसी
अइसउ बृहस्पति ही नउ सूझइ (३२)

५—पूनि महि करउ चादु फाडिउ हरिणु पासइ घातिउ (धा)
दुई कपोल जिसा थिआ।

६—तेन्हर पाइन्हिया घडिअन किसा भावथि
जणु पूनिमहि पूनिमहि करा चाद कोडइ तहि करउ सुहावइ (३४)

७—एकावली कण्ठि बाधी सहरइ सो भावइ
जणुमुह चदु ओलगणह नखत बाल सत्तावीस
री आई अइसउ लागइ (३७)

८—थण र पहुला ऊ चा वाटुला पीणा
सोनाहर करा मङ्गल कलस जिसा—हि
आनु कि काम्भदेवह कराह धरह
वारि ओढु तास सोह पावहिं (३८–३९)

९—तिवलिहि माझि रोम राइ—धरइ।
ज सोहहि करइ पाखइ दुहु आधह जूझतह निवाडउ करइ (३८)

असार लगता है[1]। उसकी जवार्ध (जौ के आकार की सोने की गुरियो की वह माला जो आधी अर्थात् गले मे केवल सामने की ओर रहती है) कामद्रुम के आलवाल जैसी लगती है[2]। पैरो मे रक्तोत्पल को जीत लिया है जो लक्ष्मी का निवास कहा जाता है[3]। उसके सौन्दर्य का क्या वर्णन किया जाय ? कवि की बुद्धि कूडी (अपटु) और बानिनी (व्यवसायिनी) है[4]।

कला पक्ष :

प्रस्तुत वेल का कलापक्ष अत्यन्त निखरा हुआ है। भाषा अलकृत है। उपमा रूपक, उत्प्रेक्षा, भ्राति, सदेह आदि अलंकार पद-पद पर प्रयुक्त हुए है। नख-शिख निरूपण मे सौन्दर्य वर्णन करते समय कवि ने जो कल्पनाएँ की हैं वे अनूठी बन पडी हैं।

यह वेल उत्तर अपभ्र श काल की रचना है। इसकी भाषा को लेकर विद्वान एक मत नही है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने इसकी भाषा को पुरानी दक्षिण कोशली कहा है[5]। डा० भायाणी के अनुसार ये आठ नख-शिख वर्णन है जो अपभ्र शोत्तर आठ बोलियो के विशिष्ट तत्वो से सम्बन्धित रहे होगे[6] और लेख मे जो छ नख-शिख बचे है, वे क्रमश अवधी, मराठी, पश्चिमी हिन्दी, पजाबी तथा मालवी के पूर्वरूपो मे लिखे गये है[7]। कवि के अनुसार जैसी भाषा उसने जानी थी (तह भासह जइसी जाणी) उसी मे यह वेल कही गई है।

१—मोतीहु करह एकु जि हारू
स सोह देखतहं अइसउ भावइ
अण सारउअ " उहु अउ एहु ससारू (३९)

२—जवाध ताह काम्वद्रूमह आलवालु जइसी भावइ (४२)

३—पायहिर रतूपल "जिआ
जे लोकहिं लाछिहि करउ निवासु भणिउ (४२)

४—कोइ इत उपमान करहु।
वुधि आपणी अछइस कूडी वानणी (३६)

५—हिन्दी अनुशीलन धीरेन्द्र वर्मा विशेषाक पृ० २३

६—भारतीय विद्या पृ० १३०-३१-३२ (भाग १७-३-४)

७—वही पृ० १३८

(२) देईदास जैतावत री वेल[1]

प्रस्तुत वेल वगडी के सामन्त देवीदास से सबध रखती है। ये जोधपुर नरेश राव मालदेव के सेनापति पृथ्वीराज जैतावत के सहोदर कनिष्ठ भ्राता थे। ये बडे वीर और साहसी थे। स० १६१६ मे इन्होने बिहारी पठानो को पराजित कर जालोर पर अधिकार किया था। बदनोर पर भी इन्होने विजय पाई थी। 'अकबर नामा' के अनुसार मेडते पर मिर्जा शरफुद्दीन हुसैन की अध्यक्षता मे भेजी गई मुगल सेना के साथ युद्ध करते हुए इनका प्राणान्त हुआ।

कवि-परिचय :

प्रस्तुत वेल के रचयिता बारहठ अखो भाणोत है। जैसा कि वेलि के शीर्षक से पता चलता है 'वेलि राइ देईदास जैतावत री बारहठ अखौ भाणोत कहै'। ये रोहडिया शाखा के चारण तथा बादशाह अकबर के समकालीन थे। इनके पिता का नाम भाना था (जिससे ये भाणोत कहलाये) जो जोधपुर के राव मालदेव के कृपा-पात्र थे। पाँच वर्ष की अवस्था मे ही अखा के माता-पिता चल बसे। कहा जाता है कि तब मालदेव की राणी झाली स्वरूपदे ने इन्हे पाला पोसा था। मालदेव के पुत्र उदयसिंह इनके हमजोली थे और ये प्राय उन्ही के साथ रहा करते थे। सवत १६४३ मे जोधपुर के तत्कालीन राजा उदयसिंह ने चारणो पर क्रोधकर समस्त चारण जाति को देश निकाला दिया था। इसके प्रतिवाद स्वरूप चारणो ने आउवा ठिकाने मे धरना दिया। इन्ही धरना देने वालो मे सुलह का मार्ग निकालने के लिए उदयसिंह ने अखा को भेजा। अखाजी सुलह कराने की बजाय स्वय धरने मे सम्मिलित हो गये। इस पर उदयसिंह ने इन्हे कहलवाया कि इनसे अच्छा तो कटार खाकर मर जाना था। इन्होने ऐसा ही किया। कटार खाकर प्राण त्याग दिये। इनके वशजो के मारवाड मे बहुत से गाँव है जिनमे मू दियाड का ठाकुर इन्ही का वशज है।

रचना-काल

वेलि मे रचना-काल का सकेत नही है। वि० स० १६१६ मे देईदास जैतावत शरफुद्दीन के नेतृत्व मे लडने वाली मुगल सेना मे मेडता की सुरक्षा करते हुए मारे

१—(क) मूल पाठ मे वेलि या वेल नाम नही आया है। शीर्षक दिया है 'वेलि राइ देईदास जैतावत री, बारहठ अखौ भाणोत कहै'।

(ख) प्रति-परिचय — इसकी हस्तलिखित प्रति अनूप सस्कृत लायब्रेरी बीकानेर मे गुटका न० १३६ (८) मे सुरक्षित है। यह १८१-८४ पत्रो पर लिखी गई है। इसका आकार ७½"×८½" है। प्रत्येक पृष्ठ मे १२ पक्तियाँ है और प्रत्येक पक्ति मे २१-२२ अक्षर है।

(ग) वर्तमान लेखक ने इसे प्रकाशित किया है वरदा वर्ष ३ अक ४ पृ० ३०-३३

गये।[1] इस आधार पर डा० हीरालाल माहेश्वरी ने प्रस्तुत वेल का रचना-काल सं० १६२० के आसपास माना है।[2] वेलि को पढ़ने मे ज्ञात होता है कि इसमे हरमाडा युद्ध[3] (वि० स० १६१३ फाल्गुन वदी ६) के उपरान्त की घटनाओ का वर्णन न होकर देईदास द्वारा राणा उदयसिंह, राव कल्याणमल तथा जयमल वीरमदेवोत की सयुक्त सेनाओ को भगा देने का ही आलेखन है। अत इस वेलि की रचना स० १६१३ मे युद्ध के उपरान्त शीघ्र ही हुई होगी।

रचना–विषय

प्रस्तुत वेलि २३ छदो की छोटी सी रचना है। इसमे बगडी के सामत देवीदास जैतावत के युद्ध-कौशल एव वीर-व्यक्तित्व को व्यजित किया गया है। ये राव मालदेव के सेनापति पृथ्वीराज जैतावत के कनिष्ठ भ्राता थे। वि० स० १६११ के वैशाख मे जब राव मालदेव ने जयमल मे बदला लेने के लिए मेडते पर चढाई की तब पृथ्वीराज जैतावत उनके साथ थे। युद्ध मे पराजित होकर भागते हुए मालदेव का जयमल ने पीछा किया तब अपने स्वामी (मालदेव) के प्राणो की रक्षा करने के लिए वापिस फिर कर पृथ्वीराज ने जयमल से युद्ध किया और मृत्यु को प्राप्त हुए।[4]

इस युद्ध के थोडे ही दिनो बाद (वि० स० १६११ आपाढ कृष्णा १३) काव्य-नायक देवीदास जैतावत ने अपने ज्येष्ठ भ्राता पृथ्वीराज का बदला लेने के लिए मालदेव के पुत्र चद्रसेन के साथ मिलकर जयमल पर (मेडते पर) आक्रमण कर दिया।[5] कई दिनो तक घमासान युद्ध होता रहा। अन्त मे (जयमल के महाराणा उदयसिंह के साथ विवाह मे बीकानेर जाने के कारण) मेडते पर जोधपुर का अधिकार हो गया।

देवीदास बडे साहसी और वीर पुरुष थे। उन्होने मालदेव की तरफ से हाजीखा को सहायता देकर वि० स० १६१३ मे हरमाडा गाव के पास उदयपुर के

१—मारवाड का मूल इतिहास आसोपा पृ० १३६-४०

२—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १२०

३—उदयपुर राज्य का इतिहास प्रथम खण्ड गौरीशकर हीराचद ओझा पृ० ४०८

४—(क) द्रिढ पीथल मरण मेडतै देदा, छात्रवि रावा तणा छल।
तै तिण दी जैता सी तणो भ्रम, वल छूटै वाधियो वल ॥ ८ ॥

(ख) जयमल वश प्रकाश वदनोराधीश ठाकुर गोपालसिंह राठौड मेडतिया पृ० ११८-११६

५—(क) माडाया जुतै पृथीमल मागिग, वसुधा ताइ माचा वाखाण।
माल कलोधर हीयो मेडतै, तै माल दे तणा मेल्हाण ॥१२॥

(ख) जयमल वश प्रकाश गोपालसिंह राठौड, मेडतिया पृ० ११८-१६

महाराणा उदयसिंह, बीकानेर के महाराजा राव कल्याणमल और मेड़ता नरेश जयमल की सम्मिलित सेना को परास्त किया ।[1]

देवीदास का व्यक्तित्व बडा जबरदस्त था । उसने जालोर, बदनोर आदि पर भी अधिकार किया था । कवि ने बार बार उसे 'अखेराज अभिनवा'[2] कहा है । उसे देखकर जैतसी का भ्रम हो जाता है । वह दल का शृ गार और देश तथा वश का दीपक है । उसके जन्म लेते ही परिवार मे आशा बध गई और शत्रुओ मे आशका फैल गई । बादशाही सेना के लिए वह उस सिंह के समान है जिस पर रौद्ररूपी प खर पडी है । कवि ने ऐतिहासिकता की पूरी रक्षा की है ।

कलापक्ष

कवि की भाषा विशुद्ध डिंगल है । वयणसगाई शब्दालकार सर्वत्र आया है । साधारण और असाधारण दोनो प्रकार के उदाहरण देखिये —

साधारण

(१) दल सिणगार देश वस दीपक (१)
(२) *गयण* तणा कुण नखित *गिणे* (२३)
(३) *साल* कलोधर अमली *माण* (१७)

असाधारण

(१) तो जनमियो देद जडधार (२)
(२) *मिलता* देद हुवौ मुह रावत (७)
(३) ते *साकोडि* घातिया *सिगळे* (१०)

अन्य अलकार भी यथास्थान आये है । कुछ उदाहरण देखिये —

यमक

आसवधी आपणा तणैउर, (२)
आसक सत्रावधी ऊदार । (२)

रूपक

पाखर-रौद्र लगे पतिसाही (४)

१—(क) मिलि जैमलि, राण, कल्याण मेडतै, घणूज वैह्रता बिरद घण ।
बल छाडियौ तुहारे बोले, त्रिह ठाकुरे जैततण ।। ११ ।।
(ख) जयमल वश प्रकाश गोपालसिंह राठौड मेडतिया पृ० १२१

२—अखैराज बगडी के मूल सस्थापक थे । राव रणमल का पौत्र तथा अखैराज का पुत्र पचायण हुआ जिसका बेटा जैता हुआ जिससे ये जैतावत कहलाये ।

उपमा :

प्रघट पचाइण तणि परि (४)

छंद —वेलियी, सोहणो और खुडदसाणोर का प्रयोग हुआ है।

(१) *वेलियो* मेडतिया मुहे, माझया प्राझी, ऊपाडियै कुत अवसाण।
मिलता देद हुवौ मुह रावत, पुलतै दलि फिरियौ पछिवाण ।।७।।

(२) *सोहणो* उदयागिर पखै अन्तर कुल आणै, महि वामण विण कमणमिणै।
कमध प्रवाडा गान करै कुण, गयण तणा कुण नखित गिणै ।।२३।।

(३) *खुडदसाणोर* . दलनाइक अगड तुहारी देदा, कोइ न हाले अडस करि।
पाखर रौद्र लगैं पतिसाही, प्रघट पंचाइण तणि परि ।।१७।।

(३) रतनसी खीवावत री वेल[1]

राजस्थान के वीर सपूत मृत्यु का आलिंगन उसी उल्लास और प्रसन्नता के साथ करते रहे है जिस उल्लास और प्रसन्नता के साथ वे किसी षोडसी का वरण

१—(क) मूल पाठ मे वेल या वेलि नाम नही आया है । पुष्पिका मे लिखा है 'इति रतनसी खीवा ऊदावत री वेल सपूर्ण'।

(ख) प्रति-परिचय -अनूप संस्कृत लायब्रेरी बीकानेर मे इसकी निम्न लिखित तीन प्रतियाँ हैं जो तीन नामो से मिलती है—

(१) राठौड रतनसी वेलि – इस नाम की प्रति क्रम संख्या ६२ वाले गुटके मे है। इसकी अवस्था अच्छी है। कुल पत्र ७ हैं। प्रत्येक पृष्ठ मे ११ पक्तियाँ हैं और प्रत्येक पक्ति मे १८ अक्षर है। प्रति का आकार ५"×४" है। इसमे ६३ छद हैं। कवि का नाम नही दिया है।

(२) राठौड रतनसी खीवावत री वेल — इस नाम की प्रति भी ऊपर वाले गुटके (न० ६२ ग) मे ही है। यह जीर्ण अवस्था मे है। कुल पत्र १६ है प्रत्येक पृष्ठ मे ११ पक्तियाँ है और प्रत्येक पक्ति मे १६ अक्षर है। छद सं० ६६ है। कवि का नाम नही दिया है। डा० टैसीटोरी ने इसी का हवाला दिया है (डिस्क्रिप्टिव केटलॉग, सेक्शन दो भाग १, पृ० ७०)

(३) रतनसी री वेलि- इस नाम की प्रति ६८ (२) नम्बर वाले गुटके मे है। प्रति की अवस्था जीर्ण-शीर्ण है और पत्र भीग जाने के कारण लिपि अस्पष्ट होगई है। अक्षर सुवाच्य नही हैं। कुल पत्र २ है। प्रति पृष्ठ मे १७ पक्तियाँ हैं और प्रति पक्ति मे २६ अक्षर हैं। प्रति का आकार ७"×६½" है। छदो की सख्या ७० है। कवि का नाम नही दिया है।

(४) रतनसी रो वेलियो गीत – इस नाम की प्रति राजस्थानी शोध-सस्थान चौपासनी मे है। क्रमाक १४६ है। इसमे कवि का नाम दूदो विसराल दिया हैं। छदो की सख्या ७२ है।

करते है। यहाँ के कवि भी विषकन्या के रूपक द्वारा उस लोमहर्षक दृश्य का चित्रण कर अपने आपको धन्य मानते रहे। प्रस्तुत वेलि मे राठौड रतनसी खीवावत का ऐसा ही ओजस्वी व्यक्तित्व चित्रित हुआ है।

कवि-परिचय :

अनूप सस्कृत लायब्रेरी बीकानेर की प्रतियो मे कवि का नामोल्लेख नही है। पर इधर राजस्थानी शोध-सस्थान चोपासनी मे जो 'रतनसी री वेलियो गीत ॥ दूदो विसरत' नाम की प्रति मिली है उसमे कवि का नाम ज्ञात होता है। इसका रचयिता कोई दूदो विसराल नाम का कवि रहा है।

रचना-काल :

किसी भी प्रति मे रचना-काल का उल्लेख नही किया गया है। अनूप सस्कृत लायब्रेरी की ६८ (२) क्रमाक वाली जो प्रति है उसमे कई महत्वपूर्ण रचनाएँ है। इस प्रति की अधिकाश रचनाएँ सवत १६७१ तक लिपिवद्ध हो चुकी थी। आलोच्य वेलि तो सवत १६७१ तक निश्चित रूप मे लिपिवद्ध हो चुकी थी क्योकि इसके पश्चात ही इसी प्रति मे 'राव जैतसी रो पद्धडी छद' लिखा गया है जिसके अन्त मे लिपिकाल का निर्देश इस प्रकार किया गया है 'इति श्री राय श्री जयतसिहजी रउ पद्धडी छद सपूर्ण समाप्त सवत १६७१ वर्षे आसोज मासे शुक्ल पक्षे अग्ठमी तिथे शनिवासरे' (पत्र ८८)। प्रस्तुत रचना को पढते समय घटना-वर्णन और दृश्य-चित्रण की सजीवता को देखते हुए अनुमान होता है कि कवि चरित्र-नायक का समकालीन रहा है और उसने इसकी रचना जैतारण पतन[1] (वि० स० १६१४) के बाद ही की होगी।

रचना-विषय :

यह ७२ छदो की रचना है। इसमे एक ऐतिहासिक घटना-हाजीखा का पलायन तथा जैतारण-पतन-का वर्णन है। हुमायू का देहान्त होने के बाद अकबर ने शेरशाह के सेनापति हाजीखा का दमन करने के लिये एक सेना भेजी। हाजीखा ने उस समय अजमेर पर अधिकार कर रखा था। सेना के आने का समाचार पाते ही हाजीखा गुजरात की तरफ भाग गया और मुगल सेना ने अजमेर पर अपना अधिकार कर लिया। उसी समय जैतारण पर भी शाही फौज भेजी गई जिसने सामान्य युद्ध के बाद अपना अधिकार कर लिया। जोधपुर राज्य की ख्यात से पता चलता है कि जो शाही सेना जैतारण भेजी गई थी उसमे राजा भारमल, जगमाल, पृथ्वीराज, राठौड जयमल, ईश्वर वीरमदेवोत आदि भी थे। जैतारण के हाकिम

१—जोधपुर राज्य का इतिहास . प्रथम खण्ड गौ०ही० ओझा, पृ० ३२२ की पाद टिप्पणी।

ने मालदेव को सहायता के लिये लिखा था पर उसने सहायक सेना नही भेजी और युद्ध मे राठौड रतनसिंह खीवावत, राठौड किशनसिंह जैतसिहौत आदि सरदार मारे गये। बादशाह की सेना का वहाँ अधिकार हो गया।[1]

कवि ने हाजीखा के पलायन का सकेत कर जैतारण के युद्ध का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। वर्णन मे विष-कन्या का विराट् साग रूपक[2] बाधा गया है। मुगल सेना रूपी कुमारी को—जो अपने पूर्ण यौवन पर है— दुल्हिन बनाकर तथा राठौड रतनसिंह खीवावत को दूल्हा बनाकर कवि ने पाणिग्रहण सस्कार की मर्यादा का पूर्ण निर्वाह किया है। अन्त मे काम-क्रीडा रत रतनसिंह विषाक्त प्रभाव से मृत्यु का ग्रास बनता है और मोरकुमारी अट्टहास करती है।

प्रारम्भ मे कवि सरस्वती की वदना के साथ वस्तु का निर्देश करता है।[3] तत्पश्चात् चरित-नायक की प्रशसा करता हुआ कहता है कि रतनसी का शरीर कमल के पराग की तरह पवित्र और मन गगा-जल की तरह निर्मल है। वह राजाओ द्वारा वदनीय और निर्बाध गति से सर्वत्र सचरण करने वाला है। उसका व्यक्तित्व निष्कलक, सुन्दर और अनश्वर है।[4] तत्पश्चात् मुगल सेना द्वारा अजमेर पर किये गये आक्रमण का कवित्वमय वर्णन किया गया है। कवि का कथन है कि जोश मे भरी हुई अखण्ड कुमारी मुगल सेना कामदेव के समान मतवाली है। उसमे विवाह करने का उत्साह भरा हुआ है। वह नगाडो की गडगडाहट के साथ मदमस्त हो जब चलने लगती है तब उसका यौवन उफनने लगता है।[5] हाथी घोडो का आडम्बर उसके घू घट का घेरा है। जो भी वीर उसके साथ वरण करने का प्रयत्न करता है

१—जोधपुर राज्य का इतिहास प्रथम खण्ड गौ० ही० ओझा पृ० ३२१-२२

२—डा० टैसीटोरी ने इस विषय मे लिखा है 'द पोइम कोम्मेमोरेट्स रतनसीज करेज इन फेसिंग एन एम्पेरियल फोर्स विच हेड बीन डिस्पेच्ड अगेन्स्ट हिम, एण्ड दी ग्लोरियस डेथ ही मेट इन दी बेटल। थ्रू आउट द पोइम द ओथर हेज डवलप्ड द सिमलि ओफ दी हीरो व्हू लाइक ए ब्राइडग्रूम गोज टू स्पोज द एनीमी आर्मी, ए सिमलि कोमन इन बारडिक पोइट्री।'
—डिस्क्रिप्टिव केटलोग सेक्शन दो, पार्ट एक, पृ० ७०

३—सुपूसन हु सुरराये सारदा, विमळ सर आखर वयण।
कलिजुग रूखमागद राव कमधज, राजा वाखाणीसि रयण ॥१॥

४—प्रवित प्रिराग रतनसी पोहकर, मन निरमल गगाजल जेम।
नर नार्देत नरीद निरोहण, निकल निघट निपाप निगेम ॥३॥

५—जोगिणि पुणि पूरी मयण तण जोसवस, वर प्रापति गह पुरिति वेस।
परणणज कोचड हीर्ते परणण, नवखड हींदू तुरक नरेस ॥५॥
रोस कसाय घू मती रमती, चुवती मदन महारम चोल।
हाली घडा नीसाण हुवाए, रिण पाखर करिने वर रोल ॥६॥

वह स्वत ही तलवारो के घाट उतर जाता है। हाजीखा उसके आतक मे काप कर गुजरात की ओर भाग गया और अपने दूल्हेपन को सिद्ध न कर सका।[1]

पाणिग्रहण सस्कार को यो विगडते देखकर मुगल-सेना रूपी युवती को अत्यधिक चिता हुई। पुन वह विवाह करने की बलवती इच्छा लेकर किसी वीर की तलाश मे जैतारण की ओर बढी। उसके हृदय की काम-भावना हिलोरे लेने लगी। उसे कोई वीर ऐसा नही दिखाई दिया जो उसके साथ गठ-बधन कर सके। उसके उभरते यौवन ने मदनोन्मत्त होकर साडी को अस्त व्यस्त कर दिया। उसकी गति मे विषमता आ गई और वह आकाश को स्पर्श करती हुई दशो दिशाओं को कम्पायमान कर उठी।[2] उस विष-कन्या ने सोलह से दूने श्रृ गार सजे। तीक्ष्ण भालो की अणी के उसके नाखून थे और तेज चमचमाते हुए कु त ही कटाक्ष थे। दुश्मनो की घडो को नष्ट करने वाले आयुध ही उसके लिये सवालखा हार थे।[3] इसी रूप पर मोहित होकर रतनसिह ने शीशा डमने वाली तोपो के वक्र नेत्रो से प्रणय के इशारे किये, तलवार के रूप मे कुसुमायुध के पचशरो का सन्धान किया, सेना की

१—घुसम जूस जागीये धिद्धते, वित अकबर घडवल चडै ।
हैमाद उदमाद विरोटै हगति हत, खान वरोवा खगि खडै ॥७॥
हैंवर गति गैंवर गति अति अडवर, घू घट घाट किये घणघेर ।
ओपडि रूप कीये आडम्बर, अकबर घड आई अजमेर ॥८॥
लगन कू ठेन लू विहि लिखी आ, लू म घड देखे असमान ।
वीदपणौ अजमेर विसारे, खिसियो ल्हिसीयो हाजीखान ॥६॥
हुवु इ हये काप कपे मन हाजन, अवजिकि द्र मकि चमकि ओर ।
मीर घडा कु मारी माडिहइ, अण परणी ल्हसीओ असुर ॥१०॥
जुडण न जोडन नामा जोडो, नारि नामा न मत रो नाह ।
घाये खान हाजन खाफार घड, वीरित सिरजीयो वीमाह ॥११॥

२—आसालुध अजइपुरि आई, जगि नहि जोवती जुवा जुई ।
लिसयो हाजन पाठो लाडो, अकबर घड सचीत हुई ॥१२॥
डहली मीर घडा गजडबर, वाजति नर हैमर करि वेस ।
आउगती हीदूवा उपरि, हस सहसी नव सहस्रे देसि ॥१३॥
दलपति कोय न दूजो वर दलि, निरिदलीया मत लोकि नर .
कर अ खिणि विशिकिन्या कहियो, वीर तणै धरि लहसी वर ॥१४॥
वड सिरि हू नाखे वडवडती, विपरीत गति अवगति सर सरोसि ।
लाडी देखे गगनि लोडती, दुडीया मिडवाया दस देसि ॥१५॥

३—विकट अणो नख कु त वधारे, भुजि भलका भाला भालोड ।
खाफर फौज पाधरी खडिया, जैतारिणि उपरि जकु जोड ॥१७॥
अरि धड दृणा सुवालख आवध, सोलह दू णि सजे सिणगार ।
कत कबाण छुरी कावोली, मल्हपी गुरिज ग्रहे चक्रमार ॥१८॥

हु कारो के मगल गीतो के बीच सिर पर मौड धारण किया और मन मे क्षत होने का अनुराग लेकर कृपाण की मेखला बाधे विवाह के नगाडे वजवाये।[1]

पाखरो की पायल पहने, कराघातो का काकण धारण किये,[2] जडित जिरह की कचुकी और कवच की साडी लपेटे,[3] नयनो के कटाक्ष वाण छोडती हुई, कवच कडियो को झकझोरती हुई, घूमर नृत्य करती हुई वत्तीस लक्षणो से युक्त मुगल सेना रूपी विप-कन्या रतनसिंह का वरण करने के लिये आगे बढी।[4] उसने सोने का सेहरा वाधा और तलवार से पाणिग्रहण किया। जैतारण के युद्ध मे लटकती हुई तलवारो ने तोरण वादने की रस्म पूरी की तो हाथी-दातो के रूप मे हसती हुई मुगल सेना की विष-कन्या ने अपनी प्रसन्नता प्रकट की। योद्धाओ के मरने से अग-रहित अर्थात् अनग होकर वह कामार्त्त हो उठी।[5]

रावतो का सरदार रतनसिंह उसी दिन मे सचमुच दूल्हा बना। उसका मौड आकाश के लिये स्तभवत वन गया।[6] किले के लिये कोट स्वरूप किशनसिंह यशस्वी वराती सिद्ध हुआ।[7] ढाल रूपी थाल मे भाले रूपी अक्षतो से रतनसिंह को वधाया गया।[8] युद्धस्थल रूपी सेज पर गलबाही देकर रतनसिंह ने मीर-कुमारी के साथ आनन्द-भोग भोगा।[9]

१—सीहण डसण तण वयण नयण सिध, वनप मदन सरणध पच सुधूप।
रूप कियो तो ओपरी रतन, रिम घडि नीव्रते रह तस रूप ॥१९॥
अति दिन लगन महुरति उपडि, धवल मगल दल हुकलि धौड।
मीर घडा परणण कु मारी, मारू रैणि वाधीयो मौड ॥२०॥
मन खत राग वधालक मौंजा, कटि मेखला कसीयै कुर वाण।
आवी मीर घडा ओपडाखी, निधसि तेने वरि नी आण ॥२२॥

२—पाखर घोर वाजती पायलि, काकण हाथल चूडि कसि ॥ २३ ॥

३—वीर जहर पाखर वदाडणि, काचू जिरह जडाव करि ॥ २५ ॥

४—नयण कटाक्ष वैण नीछरतैं, कसि विहु दिसि फरती कडा।
उठि रयण परणेवा आई, घू मर कीधै मीर घडा ॥ २६ ॥

५—मड है वियण सेहरा कामणि, करगेवा माती करिमालि।
ढूकी डालवेलि ढलकती, तोरणि जैतारिणि रिणि तालि ॥२७॥
ढूठि घडा हसती गज दाते, आरति गति अनग अनग।
पाटिओ धोरि राखण परणेवा, चवरी वोपडि चढे ववरग ॥२८॥

६—रावत वीद नरिंद रतनसी, विरत दैति वीदवगि।
मोड मुगटि मिरि टोप माडीयै, लागे ओठियो आभि लगि ॥२९॥

७—काला कोटि दुवाहा कमवजि, किसन अणवर रयण कन्है ॥३०॥

८—उडीयण थाल आवये आग्वे, अति प्रवहुला हाथ ले अनीद।
भलके खगे उनगे भाले, वधाविजे रतनसी वीद ॥ ३३ ॥

९—उनण सयण रतनमी दमगलि, माथ गलोयलि भीच रहै।
घड आरति उतारै धरि, वरमाला करिमाल वहै ॥३४॥

विधिवत् सभी वैवाहिक रस्मे पूरी की गई । शत्रुओ का शिरोच्छेदन करना ही कलश उतारना है,[१] अत्यन्त गभीर घावो को सहन करना ही मुँह दिखाना है,[२] गिद्धो के पखो का फैलना ही छत्र-चवरो का सजना है,[३] तलवारो की मुठभेड मे रुधिर के परनालो का बहना ही सिन्दूर का छिटकना है ।[४] छतीस प्रकार के शस्त्रो का सचरण ही ३६ प्रकार के व्यजनो का रसास्वादन है ।[५] दोनो सेनाओ का परस्पर युद्ध करना ही वर-वधू का जुआ खेलना है ।[६]

वर-वधू का समागम भी बडा विचित्र है । क्षत्रियत्व की रक्षा करने वाले रतनसिंह ने तलवारो के प्रहारो से मीर-सेना रूपी युवती की कचुकी के कसने तोड तोड कर उसे रति-क्रीडा मे परिश्रान्त कर लिया ।[७] वह बेचारी अस्त-व्यस्त वस्त्रो को लेकर जा छिपी ।[८]

रतनसिंह मुगल सेना रूपी विप-कामिनी के साथ सयोग-सुख मे इतना लव-लीन हो गया कि उसके टुकडे टुकडे हो गये ।[९] हाड, मास और रक्त चारो ओर फैल गया । सुअर, डाकणियाँ, भूत, प्रेत, आदि इकट्ठे होकर आनन्द के साथ इनका भक्षण करने लगे । रतनसिंह ने वीरो को खड-खड कर, हाथियो को मार मार कर इतना रक्त प्रवाहित किया कि सभी उसे पीकर तृप्त हो गये ।[१०] वह इस ससार मे

१—उतबग वर वेहडा-नु तारै, हा पावी रतन हाथि हूवा ॥३५॥

२—मिल रजधूलि नहु मड है, मिल घण घाय मुह मडणै ॥३६॥

३—पुडगण ग्रीध पखारव छत्र, गो मग है गज घाट गड ॥३७॥

४—धमचक धोमहि मे धार हैरवि, पुरि सदूरि रुधिर परनाल ॥४२॥

५—भापा रट विखट तीस छतीस भखीजै, घसि पुडि घाय निहाय धुन्राय ॥४३॥

६—वाहै हाथिह वेहथि वाहा अ ग अणीसर फूटै अ गि ।
वीदणि वोद बिन्हे समवादी, जूअर मे मातै रिणि ज गि ॥४४॥

७—रिणवट रुयाग खत्रीवटि रतनै, घाई मनाई मीर घडा ।
लोहा खीथै तोडीया लाडै, काचू जोसण कसण कडा ॥४८॥

८—धार सन्नाह वसत घसटीया, नमी नीजाम दुरी मुखि नारि ॥ ४६ ॥

९—रिमि रसि अउ कसि अभित गति रतनै, भाजे खग रग अ ग जुवा जुवा ।
खड विहडि हुवे खेंडाचो, हवइ घडा लवलीण हुवा ॥ ५१ ॥

१०—भईरवि भूत प्रवावक भेला, ग्रीधावलि धरत अघासि ।
खड खडीया कितईण खाफर, उडीयण गहक अकासि ॥ ५८ ॥
मड हट मस लोही महमहीया, गोधूलक मिले गमेममा ।
करका उपरि हिवीया कोल, साकणि सावज एक ग्रमा ।
चाचर महार मागणि हार निसाचरि, वतरि प्रे त धवे निरवाण ॥५९॥
सकति मालसिध ग्रीधणि साधिक, रतनै मोकलिया आराणि ॥६०॥
खड खटि छाट लाख ठटि खलखट, गजघट वीर कीधै गजगाहि ।
रातल सावज धवीया रतनै, पूजवीया रत पल प्रगल प्रवाहि ॥६१॥

अब नही रहा, वह तो मरकर स्वर्गलोक का स्वामी बन गया। देवता रतनसिंह को आशीर्वाद दे रहे है। अप्सराओ और सतियो की आत्माओ के साथ रमण करता हुआ वह वैकुंठ मे निवास कर रहा है। भाला अब भी उसके हाथ मे वीरता का उद्घोष कर रहा है।[1]

वीर और शृङ्गार रस का अद्भुत मेल इस वेल की विशेषता है। डिंगल के प्रसिद्ध कवि ईसरदास बारहठ ने भी 'हाला झाला रा कुंडलिया' मे झाला रायसिंह की सेना को विष-कन्या का और हाला जसाजी को दूल्हे का रूप दिया है[2]। डिंगल काव्य मे ऐसे रूपको की परम्परा रही है। पर पूरे काव्य मे ऐसे व्यापक रूपक की सृष्टि आलोच्य कृति की अपनी ही विशेषता है।

कलापक्ष :

प्रस्तुत वेल का कलापक्ष अत्यन्त निखरा हुआ है। छोटी सी ऐतिहासिक घटना को रूपक का आधार देकर इतना प्राणवान बना देना कल्पना-कुशल कवि का ही काम है।

वेल की भाषा साहित्यिक डिंगल है। वह उत्साहवर्धिनी, प्रभावोत्पादक और हृदय के तारो को झङ्कृत करने वाली है। कवि की 'विमल सर आखर वयण' की गर्वोक्ति मिथ्या नही है। अनुप्रास की योजना सुन्दर बन पडी है—

(१) नर नादंत नरीद निरोहण, निकल निघट निपाप निगेम ॥३॥

(२) आसालुध अजइपुरि आई, जगि सहि जोवती जुवा जुई ॥१२॥

वयणसगाई का प्रयोग सर्वत्र हुआ है। उसके साधारण और असाधारण दोनो प्रकार देखे जा सकते है-

साधारण ·

(१) *पाखर* घोर वाजती *पायलि* (२३)

(२) *व*रमाला करिमाल वहै (३४)

(३) जुधि हथलीयो जुडे जुवाण (३७)

१—राज करै सुरथान कुं रतनौ, जाम आप कन्है जगदीस।
हालीया प्रल भूख करता, हुविता, उग्रजिता देवता आसीस ॥६२॥
रभ झकोळ विवालइ रतनो, आतम वरभ सतिया विवि अंत।
झलर झलहल तें भू भारे, कू तहछो वसीयउ वैकुंठ ॥६३॥

२—हाला झाला रा कुंडलिया स० मोतीलाल मेनारिया छद सख्या २२,२३,२४,२५ २६,२७,२८।

असाधारण

(१) *वित* अकवर घड वल चडॅ (७)
(२) चवरी वोपडि चढे ववरग (२८)
(३) सुधि रस चोल तवोल रगि (५०)

अर्थालकारो मे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा का ही विशेष प्रयोग हुआ है–

उपमा

प्रवित पराग रतनसी पोहकर, मन निरमल गगाजल जेम ॥३॥

रूपक

(१) पाखर घोर वाजती पायलि, काकण हाथल चूडि वमि ॥२३॥
(२) उडीयण थाल ग्रावचे ग्राखे, ग्रति प्रघहुला हाथ ले ग्रनीद ॥३३॥

उत्प्रेक्षा

(१) मोड मुगटि सिरि टोप माडीयै, लागै ग्रोठियो ग्राभि लगि ॥२६॥
(२) वीरति रायण तणै ते वेला, उगामुखि वारह ग्रादीत ॥३२॥

एकाध जगह मुहावरे भी ग्राये है—

(१) कर *ग्रखिणि* विर्णिकिन्या कहियो, वीर तर्ण घरि लहसी वर ॥१४॥
(२) लाडी देखे *गगनि लोडती*, दुडीया भिडवाया दम देसि ॥१५॥

छन्द

कवि ने छोटासाणोर के भेद वेलियो का प्रयोग किया है। एकाध छन्द खुडदसाणोर का भी है।

उदाहरण

वेलियो —

इन्द्रपुर ब्रह्मपुर, नागपुर, शिवपुर,
परम पुरताइ ऊपरि पार ।
राजा सरग सात मै रतनौ,
मिलियो जोत सरूप मझार ॥७०॥

(४) चादाजी री वेल[1]

प्रस्तुत वेल मेडता के राव वीरमदेवजी के चतुर्थ पुत्र चादाजी से सम्वन्ध रखती है। चादाजी बडे वीर ग्रौर साहसी थे। मारवाड की ख्यात के ग्रनुसार उन्होने

१— (क) मूल पाठ मे वेलि नाम नही ग्राया है। एक जगह सहायक के ग्रर्थ मे वेली शव्द प्रयुक्त हुग्रा है– वोलावीयो चद रज वेली (२६)
(ख) प्रति-परिचय इसकी ह० लि० प्रति मोतीचद खजाची, वीकानेर के सग्रहालय मे है। हमे इसकी नकल श्री ग्रगरचद नाहटा से मिली है।

बहुत से मनुष्यो को लेकर मारवाड के अधिपति राव चन्द्रसेन (स० १६१६–३७) की ओर से मुसलमानो के साथ वीरतापूर्वक युद्ध किया था। यह युद्ध वि० स० १६२१ वैशाख कृष्णा १० को हुआ था।[1] वि० स० १६१० मे मेडते की सम्मिलित सेना के प्रबल आक्रमण को न सहन कर सकने के कारण जब मालदेव की सेना पीछे हटने लगी तब इसी वीर सरदार ने रुककर कुछ साथियो सहित बीकानेर की सेना का मुकाबला किया था।[2]

कवि-परिचय :

कवि ने वेल मे कही भी अपना नामोल्लेख नही किया है। लिपिकर्त्ता प० जगन्नाथ ने इसका शीर्षक 'गुणवेलि वीठू मेहा दूसलाणी री कही राजि श्री चादाजीनु दिया है और पुष्पिका मे लिखा है 'इति श्री वेलि राठौड चादा वीरमदेयोत वीरमदे दूदावत रा नु मेहा दूसलाणी री कही' इससे यह सूचित होता है कि वीरमदेव के पुत्र तथा दूदा के पौत्र चादाजी इस वेल के चरित्रनायक है और वीठू मेहा दूसलाणी इसका रचयिता। दूसलाणी से कवि का दूसला का पुत्र या वशज होना ध्वनित होता है। डा० हीरालाल माहेश्वरी ने कवि की निम्नलिखित कृतियो का उल्लेख किया है[3] –

(१) पाबूजी रा छद
(२) गोगाजी रा रसावला
(३) करनी जी रा छद
(४) गोगाजी रा छद

रचना-काल :

वेलि मे कही भी रचना-काल का उल्लेख नही है। पुष्पिका मे लिपिकाल दिया है 'लिखत प० जगन्नाथ भेई मध्ये॥ स० १७४२ वर्षे फागुण वदि १ शनौ' इसके अनुसार प० जगन्नाथ ने स० १७४२ फागुण कृष्णा १ शनिवार को भेइ मे इसे लिपिबद्ध किया था। वेलि को पढने से पता चलता है कि इसमे चादा द्वारा अजैपुर, रायपुर, फलौदी, बिलाडा, ईडरगढ, मेडता, नागौर आदि को अधीन करने का वर्णन है। ये प्रदेश राव मालदेव (स० १५८९–१६१९) के राज्य मे थे।[4] बाकीदास के ऐतिहासिक सग्रह से विदित होता है कि चित्तौड दुर्ग पर चादाजी ने नारायणदास

१—जयमल वश प्रकाश प्रथम भाग, ठाकुर गोपालसिंह राठौड मेडतिया, पृ० १०८-९

२—ओझाजी ने लिखा है कि मुकाबला करते समय चादा यही वणीर के हाथ से मारा गया (जोधपुर राज्य का इतिहास प्रथम खण्ड पृ० ३१५-१६) नैणसी की ख्यात के अनुसार चादा मारा नही गया वरन् उसने ही मालदेव तथा अन्य घायल सरदारो को सुरक्षित रूप से जोधपुर पहुचाया था (भाग २, पृ० १६५-६६)

३—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० ११२ तथा ११५

४—मारवाड़ का इतिहास प्रथम खण्ड-विश्वेश्वरनाथ रेऊ, पृ० १४२

असाधारण

(१) *वित* अकबर धड *वल* चडै (७)
(२) चवरी वोपडि चढे ववरग (२८)
(३) सुधि रस चोल तबोल रगि (५०)

अर्थालकारो मे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा का ही विशेष प्रयोग हुआ है–

उपमा

प्रवित पराग रतनसी पोहकर, मन निरमल गगाजल जैम ।।३।।

रूपक

(१) पाखर घोर वाजती पायलि, काकण हाथल चूडि कसि ।।२३।।
(२) उडीयण थाल आवधे आखे, अति प्रबहुला हाथ ले अनीद ।।३३।।

उत्प्रेक्षा

(१) मोड मुगटि सिरि टोप माडीयै, लागै ओठियो आभि लगि ।।२६।।
(२) वीरति रायण तणै ते वेला, उगामुखि बारह आदीत ।।३२।।

एकाध जगह मुहावरे भी आये है—

(१) *कर अखिणि* विर्शिकन्या कहियो, वीर तणै घरि लहसो वर ।।१४।।
(२) लाडी देखे *गगनि लोडती*, दुडीया भिडवाया दस देसि ।।१५।।

छन्द

कवि ने छोटासाणोर के भेद वेलियो का प्रयोग किया है। एकाध छन्द खुडदसाणोर का भी है।

उदाहरण

वेलियो —

इन्द्रपुर ब्रह्मपुर, नागपुर, शिवपुर,
परम पुरताइ ऊपरि पार ।
राजा सरग सात मै रतनौ,
मिलियो जोत सरूप मझार ।।७०।।

(४) चादाजी री वेल[1]

प्रस्तुत वेल मेडता के राव वीरमदेवजी के चतुर्थ पुत्र चादाजी से सम्बन्ध रखती है। चादाजी बडे वीर और साहसी थे। मारवाड की ख्यात के अनुसार उन्होने

१— (क) मूल पाठ मे वेलि नाम नही आया है। एक जगह सहायक के अर्थ मे वेली शब्द प्रयुक्त हुआ है– बोलावीयो चद रज वेली (२६)
(ख) प्रति-परिचय इसकी ह० लि० प्रति मोतीचद खजाची, बीकानेर के सग्रहालय मे है। हमे इसकी नकल श्री अगरचद नाहटा से मिली है।

बहुत से मनुष्यो को लेकर मारवाड के अधिपति राव चन्द्रसेन (स० १६१९–३७) की ओर से मुसलमानो के साथ वीरतापूर्वक युद्ध किया था। यह युद्ध वि० स० १६२१ वैशाख कृष्णा १० को हुआ था।[1] वि० स० १६१० मे मेडते की सम्मिलित सेना के प्रबल आक्रमण को न सहन कर सकने के कारण जब मालदेव की सेना पीछे हटने लगी तब इसी वीर सरदार ने रुककर कुछ साथियो सहित बीकानेर की सेना का मुकाबला किया था।[2]

कवि-परिचय :

कवि ने वेल मे कही भी अपना नामोल्लेख नही किया है। लिपिकर्त्ता प० जगन्नाथ ने इसका शीर्षक 'गुणवेलि वीठू मेहा दूसलाणी री कही राजि श्री चादाजीनु' दिया है और पुष्पिका मे लिखा है 'इति श्री वेलि राठोड चादा वीरमदेयोत वीरमदे दूदावत रा नु मेहा दूसलाणी री कही' इससे यह सूचित होता है कि वीरमदेव के पुत्र तथा दूदा के पौत्र चादाजी इस वेल के चरित्रनायक है और वीठू मेहा दूसलाणी इसका रचयिता। दूसलाणी से कवि का दूसला का पुत्र या वशज होना ध्वनित होता है। डा० हीरालाल माहेश्वरी ने कवि की निम्नलिखित कृतियो का उल्लेख किया है[3] –

(१) पाबूजी रा छद
(२) गोगाजी रा रसावला
(३) करनी जी रा छद
(४) गोगाजी रा छद

रचना-काल :

वेलि मे कही भी रचना-काल का उल्लेख नही है। पुष्पिका मे लिपिकाल दिया है 'लिखत प० जगन्नाथ भेई मध्ये ॥ स० १७४२ वर्षे फागुण वदि १ शनी' इसके अनुसार प० जगन्नाथ ने स० १७४२ फागुण कृष्णा १ शनिवार को भेड मे इसे लिपिबद्ध किया था। वेलि को पढने से पता चलता है कि इसमें चादा द्वारा अजैपुर, रायपुर, फलौदी, बिलाडा, ईडरगढ, मेडता, नागोर आदि को अधीन करने का वर्णन है। ये प्रदेश राव मालदेव (स० १५८९–१६१९) के राज्य मे थे।[4] बाकीदास के ऐतिहासिक सग्रह से विदित होता है कि चित्तौड दुर्ग पर चादाजी ने नारायणदास

१—जयमल वश प्रकाश प्रथम भाग, ठाकुर गोपालसिंह राठौड मेडतिया, पृ० १०८-९

२—ओझाजी ने लिखा है कि मुकाबला करते समय चादा यही वणीर के हाथ से मारा गया (जोधपुर राज्य का इतिहास प्रथम खण्ड पृ० ३१५-१६) नैणसी की ख्यात के अनुसार चादा मारा नही गया वरन् उसने ही मालदेव तथा अन्य घायल सरदारो को सुरक्षित रूप से जोधपुर पहुचाया था (भाग २, पृ० १६५-६६)

३—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० ११२ तथा ११५

४—मारवाड़ का इतिहास प्रथम खण्ड-विश्वेश्वरनाथ रेऊ, पृ० १४२

सोलकी को अपने हाथ से मारा था। वेलिकार ने इस तथ्य की ओर सकेत करते हुए लिखा है कि चादाजी ने अपने भाई सारगदेव की मृत्यु का बदला लेने के लिए ही-जो सोलकियो के हाथ मे मारे गये थे–नारायणदास का वध किया था।[1] यह घटना अकबर द्वारा चित्तौड पर किये गये आक्रमण (वि० स० १६२४) के समय की हो सकती है। इस आधार पर यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इस वेलि की रचना वि० स० १६२४ के बाद ही हुई होगी।

वेलिकार ने अन्यत्र ३१ कवित्तो मे बागड के कर्मसी और सावलदास[2] की वीरता का वर्णन किया है। ये दोनो वीर महाराणा उदयसिंह की सेना के विरुद्ध डूगरपुर के महारावल आसकरण (स० १६०६ से १६३७) की ओर से लडते हुए मारे गये थे। यह घटना सवत १६१३ के पहले किसी समय हुई थी।[3] इन तथ्यो से पता चलता है कि कवि वीठू मेहा का रचनाकाल सत्रहवी शती का पूर्वार्द्ध रहा है।[4] अत अनुमान है कि प्रस्तुत वेलि का रचना-काल स० १६२४ के बाद किसी समय रहा हो।

रचना-विषय :

४१ छदो की इस वेल मे राव मालदेव (वि० स० १५८९–१६१९) के यशस्वी सरदार चादाजी के वीर व्यक्तित्व की गौरव गाथा गाई गई है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस कृति का बडा महत्व है। वेलि को पढने से ज्ञात होता है कि चरित्र-नायक चादाजी ने सोलकियो के दात खट्टे किये थे।[5] अपने भाई जगमाल के साथ मिलकर अजैपुर (अजमेर) और रायपुर पर एक दिन मे अधिकार किया था।[6] फलौदी के रणक्षेत्र मे भाटियो का भ्रम दूर भगाया था।[7] गुजरात की सेना का यश मिट्टी मे मिला दिया था।[8] बिलाडे के रणक्षेत्र मे सुलतान बादशाह की सेना का दमन किया

१—वैर सहोत्रर विढे वालीयौ, अति चद सुजस हुवौ असहास।
पैसे गढि चित्तौड पाडीयो, दूजडा हथ नाराईणदास ॥११॥

२—बासवाडा राज्य का इतिहास गौ० ही० ओझा पृ० ८२,२२१ पाद-टिप्पणी।

३—डूगरपुर राज्य का इतिहास . गौ० ही० ओझा, पृ० ८९–९०

४—राजस्थानी भाषा और साहित्य डा० हीरालाल माहेश्वरी, पृ० ११२

५—पहलोइ सोलीकिया जाय पौहतौ, निरभय चद बाधीयै नेत।
भागौ ने कीलण हर भिडते, खाडा पाणि वण हटै खेत ॥२॥

६—घोडै दीह अजैपुर धोपहि, असुर घणा रायपुर उथालि।
एकै दीह उभै आखाडा, जीता वद अनै जगमालि ॥ ४ ॥

७—भ्रम भाटिया तणौ तदि भागौ, विढे माल छलि वीर सुवेत।
वाढाडीयौ कधीयौ वाज्यद, खाडेराय फलौदी खेत ॥ ६ ॥

८—घडि गुजराति तणि घण भूझै, काय दिखालि हाथ कळ।
मेल्हावीयौ चद मुणिमागुर, वारह खाना तणौ वल ॥ ७ ॥

था।[1] हस्तिनापुर के अर्जुन की तरह जूझ कर चादा ने कौरव दल के समान शत्रु सेना का संहार कर ईडरगढ पर आधिपत्य जमा लिया था।[2] डीडूपुरा (डीडवाना) को दडित किया था।[3] मेडता के मणिखान के साथ दो माह तक युद्ध-मन्थन किया था।[4] नागौर के खान (दौलतखा) के साथ मुकाबला कर चादा ने अपनी वीरता प्रदर्शित की। इस लडाई मे वरसिंघ, सूरसिंघ, कान्हा, हपरा, अखा, सीहावन आदि भी वहादुरी से लडे।

कलापक्ष :

काव्य की भाषा साहित्यिक डिगल है। वयणसगाई का प्रयोग सर्वत्र किया गया है। साधारण और असाधारण दोनो प्रकार देखे जा सकते है—

साधारण :

(१) कुलमडण वाहिया कर (५)
(२) विढे माल छवि वीर सुवेत (६)
(३) रुमर कोट तणौ इधकार (३६)

असाधारण :

(१) घडि गुजराती तणि घण झूझे (७)
(२) कैरव दल पेखे किल वाहिण (६)
(३) राठौड वडा रिमराह रूक हथ (१०)

अर्थालकारो मे उपमा-उत्प्रेक्षा का प्रयोग हुआ है

(१) सिरि सीमाडा वीर समौ भ्रम (३)
(२) जुडि हथणापुर अजण जिम (६)
(३) चाँदे कियौ राव चूडे जिम (१७)

छंद-विधान

कवि ने छोटे साणोर के भेद वेलियो और खुडद साणोर का प्रयोग किया है। छद के प्रथम चरण मे यहाँ २ मात्राएँ अधिक नही है अर्थात प्रथम चरण २+१६=१८ मात्रा का न होकर १६ मात्रा का ही है।

१—लागा जुतै वागछर लाई, दो सारी सुरताण दलि।
रहचि पठाण आणीया रेवत, वीलाडै रिण वाधि वलि॥ ८॥

२—कैरव दल पेखे किल वाहिण, त्रिजधि घडा निहसीया तिम।
ईडरगढ चादे उग्रहीयौ, जुडि हथणापुर अजण जिम॥ ६॥

३—चादे कीयौ राव चूडै जिम, डीडूपुरा उपरै दड॥ १७॥

४—मास बे महण मेडतै मथीयौ, असख कटक मेले अगियान।
आगमणि चादौ नह आवै, खार खद्यो जोवै मणिखान॥ १६॥

उदाहरण

वेलियो

उ गिम लगै चद अरिजगण (१६ मात्राएँ)
आषाड सिध बडा असवार (१५ मात्राएँ)
तै लोहिमौ फेरीयो लागा (१६ मात्राएँ)
मेस अडाम घरे सघार (१५ मात्राएँ) ।।१३।।

खुडद साणोर

राशि जुतै चादा वडरावत (१६ मात्राएँ)
खाड कमल खेलते खत (१३ मात्राएँ)
सिरि सीमाडा वीर समौ भ्रम (१६ मात्राएँ)
असि मर फेरे आवरत (१३ मात्राएँ) ।।३।।

(५) उदैसिघ री वेल[1]

प्रस्तुत वेलि मेवाड के महाराणा उदयसिंह से सम्बन्ध रखती है। उदयसिंह वि० स० १५९४ मे अपने पैतृक राज्य के स्वामी बने।[2] ये राणा सागा के पुत्र और महाराणा प्रताप के पिता थे। पन्नाधाय ने अपने पुत्र का बलिदान कर बनवीर की रक्त पिपासु तलवार से इनकी रक्षा की थी। वि० स० १६२४ मे अकबर ने चित्तौड पर हमला किया तब ये कुभलगढ की ओर चले गये और वही रहने लग गये थे। वि० स० १६२८ मे इनका देहान्त हुआ।[3]

कवि-परिचय :

कवि ने वेल मे कही भी अपना नामोल्लेख नही किया है। शीर्षक 'वेलि राणा उदैसिंघ री रामा सादू री कही' से सूचित होता है कि रामा कवि का नाम है और सादू उसकी (चारणो की) शाखा। नैणसी की ख्यात से पता चलता है कि कवि महाराणा उदयसिंह का समकालीन था।[4]

१—(क) मूल पाठ मे वेलि नाम नही आया है। शीर्षक दिया है 'वेलि राणा उदैसिंघ री रामा सादू री कही'।

(ख) प्रति-परिचय — इसकी ह० लि० प्रति अनूप सस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर के गुटके न० १३६ (७) मे सुरक्षित है। यह ३ पत्रो पर लिखी हुई है। इसका आकार ७½''×८½'' है। प्रत्येक पृष्ठ मे १२ पक्तियां हैं और प्रत्येक पक्ति मे २०-२१ अक्षर है।

२—वीर विनोद भाग २ पृ० ६४

३—उदयपुर राज्य का इतिहास प्रथम खण्ड ओझा पृ० ४२१

४—नैणसी की ख्यात भाग १ पृ० १११

रचना-काल :

वेलि के अन्त मे रचना-काल का उल्लेख नही है। कवि चरित्रनायक का समकालीन रहा है। वेलि को पढ़ने मे ज्ञात होता है कि वेलिकार ने उदयसिंह के अपराजेय होने का उल्लेख किया है[1] जो सभव है मालदेव की सेना के युद्ध पूर्व ही पलायन करने (वि० स० १६१३) मे सम्बन्धित हो। सवत १६१८ से १६२४ तक का समय उदयसिंह के लिए शातिमय वातावरण का समय है। इसी काल मे उन्होने धार्मिक एव निर्माण कार्य सम्पादित किये। अनुमान है रामा साद् इसी बीच इनके सरक्षण मे रहे हो। वेलिकार ने स० १६१६ तथा उसके बाद की इतिहास प्रसिद्ध घटनाओ का उल्लेख नही किया है, जबकि चित्तौड युद्ध मे जूझने वाले चादा की अपने अन्य गीतो मे प्रशसा की है। अत वेलि का रचना-काल स० १६१६ के आस-पास का होना चाहिए।

रचना-विषय

प्रस्तुत वेलि १५ छदो की छोटी सी रचना है। इसमे राणा उदयसिंह की प्रशसा की गई है। कवि के अनुसार उदयसिंह का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावक है। वह धर्मशास्त्रो का ज्ञाता, विष्णु का परम भक्त और काव्यानुरागी है।[2] सत्यवादी इतना कि भूलकर भी झूठ नही बोलता। उसकी वाणी वैरियो के लिए भी सरस है, स्वामिभक्ति मे वह वट वृक्ष की तरह दृढ है।[3] आश्रित जनो के लिए अन्न-जल स्वरूप है।[4] उसकी वृत्ति निर्मल[5], चित्त उत्तम और शरीर पवित्र है। वह छदशास्त्र का आचार्य[6] तथा सस्कृत प्राकृत का पडित है।[7] उसके समान दानी, ज्ञानी और अभिमानी इस ससार मे दूसरा कौन है ? ससार के सभी राजा उसकी सेवा मे तत्पर रहते है।[8]

१—ऊजम अ ग अगाहि अटप जिम आसति, पीहवि न कोई एव उपह् ।
एकाएक अजब एकाणवि, सिंघ तणा परिकार सहि ॥ १ ॥
२—सूरति मत सील साच श्रम सामत्र, विमन भगति अविकार विमेक ।
रूपक राग राजवट राणौ, उदयसिंव सजाणौ एक ॥ २ ॥
३—आश्रितन अलीन भू क ऊवचर, वैरी है सरसी वयण ।
सु साइवट तणौ सागावत, भूप नको अनि नर भुवण ॥५॥
४—प्रासाद सलिल वयण निज पात्रा, पै वलि सेवै का जपन ॥ ६ ॥
५—अहकार अटप तप तेज आवरण, निय कुल छल निरमल निरवति ।
रिधि राजवट राइ गुर राणौ, पोढौ सहि छाअैत पति ॥ ६ ॥
६—नरवै नाद सही नाग ब्रह्मौ, पीगल है ससार पति ॥ ११ ॥
७—पीहवीजी सहसकृत प्राकृत खु सासतरौ एवडीकलि ॥ १० ॥
८—राजा तन राव रावलैं राणा, सव सेवै भूअवै सकल ॥ १५ ॥

कलापक्ष :

काव्य की भाषा साहित्यिक डिंगल है। उसमे ओज और प्रवाह है –

चचल बहु चपल, मदोमति मैंगल,
　　काया त्रिमल दीपै कमल ।।१२।।

वयणसगाई का प्रयोग सर्वत्र किया गया है। साधारण और असाधारण दोनो प्रकार के उदाहरण देखे जा सकते हैं –

साधारण

(१) ऊपावी सिलह लाख दल ऊपरि (२)
(२) रिथि राजवट राइगुर राणौ (६)

असाधारण :

(१) तैं जाणै वो सुपह कुण जाणै (७)
(२) नरवै नाद सही नाग द्रहौ (११)

अर्थालकारो मे उपमा तथा रूपक का प्रयोग द्रष्टव्य है –

उपमा :

खाग साहीयै समौ खू माणा (३)

रूपक

गात मरम आखर सर पौह गति (१३)

छद

कवि ने छोटे साणोर के भेद वेलियो और खुडद साणोर का प्रयोग किया है। अधिक सख्या खुडद साणोर की है।

उदाहरण

खुडदसाणोर :

आसारै नरा अ तरा अ तर, कमल हेत क्या वर करगि।
सुपह विमेक जहा सागावत, जाणै कुण एवडा जगि ।।१४।।

(६) रायसिघ री वेल[1]

प्रस्तुत वेल बीकानेर के महाराजा रायसिंह से सम्बन्ध रखती है। रायसिंह

१—(क) मूल पाठ मे वेलि या वेल नाम नही आया है। पुष्पिका मे लिखा है– 'इति वेल श्री रायसघजी री सपूर्ण'।

(ख) प्रति-परिचय —इसकी हस्तलिखित प्रति अनूप सस्कृत लायब्रेरी बीकानेर के गुटके न० १२६ (क) मे सुरक्षित है। प्रति की अवस्था अच्छी है। पूरी वेल १½ पत्र मे लिखी हुई है। प्रत्येक पृष्ठ मे ३२ पक्तियाँ हैं और प्रति पक्ति मे २३ अक्षर हैं। प्रति का आकार १०½"×७" है। इसकी एक और प्रति अनूप सस्कृत लायब्रेरी के गुटके न० १२० (द) मे भी मिलती है।

बीकानेर के राजा थे। इनका शासन समय स० १६३० से १६३८ है। ये राव कल्याणमल के ज्येष्ठ पुत्र थे। प्रसिद्ध कवि पृथ्वीराज राठौड़ इनके छोटे भाई थे। युवराज काल मे ही ये राज्य शासन मे योग देने लगे थे। स० १६२७ मे अकबर के साथ बीकानेर की जो सधि हुई उसमे इनका प्रमुख रूप मे हाथ था।[1] स० १६३० मे पिता की मृत्यु के बाद ये बीकानेर के राजा हुए।[2] अकबर के राजपूत सरदारो मे इनका स्थान आमेर के महाराजा मानसिंह के बाद ही था। युद्ध वीरता के साथ साथ ये अपनी दान वीरता के लिए भी प्रसिद्ध थे।[3]

कवि-परिचय

प्रस्तुत वेल मे रचयिता का कही उल्लेख नही हुआ है। अन्त साक्ष्य के आधार पर केवल इतना कहा जा सकता है कि कवि रायसिंह का समकालीन रहा होगा। सादू माला और बारहठ शकरजी रायसिंह के आश्रम मे रहने वाले कवियो मे से थे। दयालदास की ख्यात मे पता चलता है कि रायसिंह ने सादू माला को दो बार पुरस्कृत किया था। पहली बार जब रायसिंह जोधपुर के शासक नियुक्त हुए-'गाव एक भदोरी नागौर रो मालै सादू नू दोनो और दूसरी बार जब वे जैसलमेर विवाह के लिए गये-'हाथी एक मालै सादू नू'।[4] सवत १६२९ म गुजरात विजय के समय अकबर ने जोधपुर रायसिंह को दिया था[5] और सवत १६४९ मे रायसिंह जैसलमेर विवाह के लिए गये थे।[6] बहुत सभव है दीर्घकाल तक रायसिंह से सम्बन्ध रखने वाला सादू माला ही आलोच्य वेल का रचनाकार हो।

रचना-काल

रचना-तिथि का सकेत वेल मे कही नही किया गया है। गुटके का लिपिकाल सवत १६६७–१८११ रहा है इसे देशनोक मे सू दडा राजरूप और किशोर ने लिखा था। इससे इतना तो स्पष्ट है कि वेल की रचना इससे पूर्व की है। वेल के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इसमे रायसिंह की गुजरात विजय, उनके जैसलमेर विवाह आदि घटनाओ का उल्लेख है। वेल की प्रमुख घटना है अकबर के साथ रायसिंह के मनमुटाव हो जाने की। ओझाजी के अनुसार यह घटना सवत १६५० और १६५३ के बीच किसी समय घटी थी।[7] जैसलमेर का विवाह सवत १६४९ मे हुआ था।[8]

१—बीकानेर राज्य का इतिहास प्रथम खण्ड, पृ० १५५-५६

२—मु हणोत नैणसी की ख्यात जिल्द २, पृ० १८९

३—बीकानेर राज्य का इतिहास प्रथम खण्ड, ओझा, पृ० २०१-२

४—ख्यात भाग २, पृ० ११८, १२५

५—बीकानेर राज्य का इतिहास ओझा, पृ० १५७–१६१

६—ख्यात भाग २, पृ० १२३

७—बीकानेर राज्य का इतिहास प्रथम खण्ड पृ० १८२–१८५

८—ख्यात भाग २, पृ० १२३

प्रस्तुत रचना मनमुटाव वाली घटना की समसामयिक जान पडती है। अत सवत १६५३ के आसपास इस वेल का रचना काल माना जा सकता है।

रचना-विषय

प्रस्तुत वेल ४३ छदो की रचना है। इसमे रायसिंह के बचपन और यौवन के साहसिक कार्यो का वर्णन किया गया है। प्रारम्भ मे मगलाचरण है।[1] तत्पश्चात् रायसिंह के वीर व्यक्तित्व की सराहना करते हुए कहा गया है कि रायसिंह पिता और गुरु का परमभक्त है। उसके न्याय की दुहाई सर्वत्र व्याप्त है। उसने दोनो हाथो मे कदोरे बाध रखे हैं और शरीर पर कवच धारण कर रखा है।[2] जिस अवस्था मे अन्य राजकुमार कौडियो का खेल खेलते हैं उस अवस्था (बाल्यकाल) मे रायसिंह ने मुगल दरबार तक अपनी विजय दु दुभी बजवादी।[3] सात वर्ष की अवस्था मे उसका प्रभाव सातो द्वीपो पर्यन्त फैल गया तो आठवे वर्ष के प्रवेश ने उसे प्रसिद्धि का पात्र बना दिया। नवमे वर्ष का तेज पृथ्वी के नवो खण्डो पर छा गया तो दसवे वर्ष ने उसके साम्राज्य का विस्तार कर दिया।[4] दिल्लीनाथ अकबर तक उसकी प्रभाव गरिमा व्याप्त हो गई। बडे बडे राजाओ का गर्व चूर हो गया और उसके अश्व पर चढते ही पृथ्वी की मर्यादा टूट गई। पद्रह वर्ष की अवस्था मे तो वह सुरताण की सेना से जा भिडा।[5]

कवि ने ऐतिहासिक घटनाओ की ओर भी सकेत किया है। नागौर मे रायसिंह अपने पिता राव कल्याणमल के साथ अकबर बादशाह से प्रथम बार मिला था और बादशाह की ओर से ही उसने जालौर के ताजखा और सिरोही के सुरताण के विद्रोह का दमन किया था। गुजरात के इब्राहीम हुसैन मिर्जा और मुहम्मद हुसेन मिर्जा को परास्त करने मे भी रायसिंह ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया था।[6]

१—हरि हर गोर गणेसर, विईनक पूजो नित।
इष्टदेव सत सुखवरो, वधै तेल वलि वित्त॥१॥

२—पित भगत रायसव भगत परम गुरु, आणा वरतावण अदल।
तै बाधीया तिके विहु पानें, कणडोरा ऊपरे कगल॥१॥

३—जिण वेस प्रवेस करे रायजादा कवडी मडिवा करण।
वेस तेस सुरतोण वदीता, रामे जीता महारिण॥२॥

४—सत दीप रायसघ वरस सात मे, परव्रत कुल आठ मे प्रवेस।
नवमैं वरस वजवजीयो नवखड, दसमे वरस वदे देस॥३॥

५—रायकु मार रायथभ रतन रायसघ, सुरताणी फौजा सरस।
असपत घडा लोहडे आडो, वजीयो पनरहमै वरस॥६॥

६—(क) वैठे बाप आया नावे बल, सघ सपूत वदे ससार।
अकवर तणा मारतणा मार उतारीया, काणीयाणा ऊपरे कधार॥७॥

काव्य मे रायसिंह की व्यक्तिगत घटनाओ को भी स्पर्श किया गया है। खवास का प्रसग[1] इस ओर द्रष्टव्य है जिसको लेकर बादशाह अकबर ने रायसिंह से जवाब तलब किया और दोनो के बीच मनमुटाव हो गया। अन्त मे यद्यपि बादशाह ने रायसिंह का अपराध क्षमा कर दिया और उसे सोरठ की जागीर प्रदान की पर वह दक्षिण मे न जाकर बीकानेर ही बैठा रहा। सलाहुद्दीन के समझाये जाने पर वह बादशाह की सेवा मे उपस्थित होकर दक्षिण की ओर गया। मत्री कर्मचन्द्र रायसिंह के विरुद्ध था और गुप्त रूप से वह दलपत को गद्दी पर बैठाने का षड्यत्र रच रहा था। भेद खुल जाने पर वह रायसिंह के डर से सपरिवार भागकर बादशाह अकबर की सेवा मे चला गया। इस घटना को लेकर भी रायसिंह अकबर से अप्रसन्न हो गया। प्रस्तुत वेल मे इस प्रसग की ओर भी सकेत है।[2]

रायसिंह युद्ध-वीर के साथ साथ दानवीर भी था।[3] जैसलमेर के राजकुल के साथ उसने विवाह सम्बन्ध स्थापित किया[4] और पुण्य-पुरुष के रूप मे जन्म लेकर कोविदो को आनन्दित कर दिया।[5] अन्त मे कवि रायसिंह को शुभाशीर्वाद देता

राठोड मांड राजान रायन्घ, रीझे लोप रणावे राण।
अनम करी गणे नाही आनम, ता समवडी गणे सुरताण ॥८॥
रग चोल कू त घमगोल रायसघ, सावत फोजा फाडतो साथ।
रथ ओरियोप करेवा भारथ, ते रावता मुहे गुजरात ॥९॥

(ख) बीकानेर राज्य का इतिहास प्र० ज० ओझा पृ० १७६, १६५, १७०, १७२-१७४।

१—(क) पण विणास खुवास उपरे, खुदालिम खीजयो खरो ॥२१॥
(ख) बीकानेर राज्य का इतिहास प्रथम खण्ड ओझा पृ०१८४-८५
(ग) दयालदास की ख्यात मे इस घटना का स्पष्ट करते हुए लिखा है कि एक बार रायसिंह के साथ भटनेर मे अकबर का श्वसुर नसीरखाँ भी आकर ठहरा। उसके वहाँ की किसी एक लकडी से अनुचित छेडछाड करने पर रायसिंह के इशारे से उसके सेवक तेजा ने उसको पीटा। दिल्ली पहुच कर नसीरखा ने बादशाह से इस घटना विषयक शिकायत की तो बादशाह ने रायसिंह को तेजा को सौंप देने का हुक्म दिया, पर उसने नही सौंपा। दयालदास की ख्यात, जि० २ पृ० ३२। पाउलेट गॅजेटियर ऑफ दि बीकानेर स्टेट, पृ० २८।

२—(क) थले परवते जले जलवटी, कोमू छूटीयो कीग।
भणे साह परधाना भेजो, राजदेत जो रायसीग ॥ २२ ॥
(ख) बीकानेर राज्य का इतिहास प्रथम खण्ड ओझा पृ० १९४

३—रैणयागयर गयद वाधीये रासे, नेत वाधीयो बीकानेर ॥ १५ ॥

४—तीस पाच बीघा कुल तोडर, मवड वाध तै जैसलमेर ॥१५॥

५—पन पुरख प्रिथीसर परम पुरायण, जा मर तु करे जियार।
वेद विवरता वीक-बीदा-वर, कोवादे चैन पहुचे वार ॥१६॥

हुआ कहता है कि देवता उसका अभिषेक करे और लोक-जिह्वा पर उसका अमर यश हमेशा तैरता रहे।[1]

कलापक्ष :

काव्य की भाषा साहित्यिक डिंगल है। वयणसगाई का प्रयोग सर्वत्र किया गया है। साधारण और असाधारण दोनो प्रकार के उदाहरण देखे जा सकते हैं –

साधारण

(१) कण डोरा ऊपरे कगल (१)
(२) तो समवडी गणे सुरताण (८)
(३) ते रावता मुहे गुजरात (९)

असाधारण

(१) तै बाधिया तिके बिहु पाने (१)
(२) नवमे वरस वजवजीयो नव खड (३)
(३) लोप रणावे राण (८)

अर्थालकारो मे सादृश्यमूलक अलकार ही विशेष रूप से प्रयुक्त हुए है।

युद्ध मे अकेले बढते हुए रायसिह को कवि ने पहाड की तरह बतलाया है–

'इकतिया रयड अचल ओर ते' (१०) तो वीर रस मे साक्षात भीम 'राव भीवो तू हीज' (१७) रायसिह यदि क्षीर सागर 'खीर रस रासा' है तो अन्य राजा अपने कर्मो के कारण खारे कूप 'कृत पाखे खारा इन कूप' (१७)

भाले के प्रहार से रक्त धारा प्रवाहित होने की कल्पना भाठी से अर्क निकलने के साथ कितनी सुन्दर बन पडी है –

कू त बगतरे बोटि काठियो, धरह रगत ज्यो भाठी धार ॥१०॥

और तलवार सचालन की त्वरा का परिणाम तो देखिये –

उलकादल सरस कठवती आपडते, आरठो कियो वडो आराण।
राड विभाड चाटीया रासै, मुठाल धडोधड ग्रीध मसाण ॥१२॥

रायसिह की स्वामिभक्ति 'सव वडोतु साम सनाइ' (१३) कहकर व्यक्त की है तो दानशीलता 'रेणयागयर गयद बाधीया रास (१५)
कहकर।

१—जड कवि पामीसें गगावर उतवग, अमर दे अत्रपेक।
सिगले गुण जपा रायासघ, सिगली जीभ दीयै जो सेख ॥४३॥

कही-कही लाक्षणिक प्रयोग भी देखने को मिलते है–

(१) प्रिथीतणी जदि भागी पालम, तुरा सा श्रम चढे तयार ।।५।।
(२) मुहि श्रागले श्रावीयो न मरं, राजा महिरवान राजान ।।२०।।
(३) मघ सनाढ राखीयो सरणं, सरणे नह राखीयो समद ।।२६।।

छन्द :

वेलियो श्रौर खुडद साणोर का प्रयोग हुआ है। अधिक सख्या वेलियो की ही है।

उदाहरण :

(१) *वेलियो*

रणजीत दईत रुक हाथ रासा, मेर महाधण श्रमली माण।
श्रवस हुवं जीता तो श्रागन्ल, समहर जिता करं सुरताण ।।१४।।

(२) *खुडद साणोर :*

पित भगत रायसघ भगत परम गुरु
श्राणा वरतावण श्रदल।
तै वाधिया तिके विहु पाने,
कण डोरा उपरे कगळ ।।१।।

(७) राउ रतन री वेल[1]

प्रस्तुत वेल बूदी के हाडावशीय राव राजा रतनसिंह से सबध रखती है। रतनसिंह भोज के ज्येष्ठ लडके थे। सवत १६६४ के श्रापाढ शुक्ला चतुर्थी को भोज की मृत्यु होने पर ये गद्दी पर वैठे[2]। इन्होने जहाँगीर के दरबार मे श्रपने पिता से भी अधिक यश श्रौर सम्मान प्राप्त किया। ये 'सर बुलन्दराय' श्रौर 'राम राज'

१—(क) मूल पाठ मे वेलि नाम श्राया है—
'गीत मे वेलि कवित्त मे गाहा, धाजे विरद वाधीयै छद' (११५)
(ख) प्रति-परिचय – प्रस्तुत वेल सावलदान श्रासिया (उदयपुर) के निजी गुटके मे प्राप्त हुई है जो उन्होने साहित्य-सस्थान उदयपुर (क्रमाक १७१६) को भेंट कर दिया है। इस गुटके मे श्रनेक राजस्थानी कवियो की कविताएँ सगृहीत है। प्रति जीर्ण श्रवस्था मे है। कुल ४७३ पन्ने हैं। प्रारभ के ८५ पन्ने गायब है। ६७ मे १०१ पन्नो मे श्रालोच्य वेलि श्र कित है। प्रति का श्राकार १०''×१२'' है। प्रत्येक पृष्ठ मे १६ पक्तियाँ हैं श्रौर प्रत्येक पक्ति मे ३५ से ३७ तक श्रक्षर है।

२—राजस्थान जिल्द २ टाड पृ० ५२०-२१।

की उपाधियो से अलकृत हुए[१]। इन्हे केसरिया निशान और नक्कारे आदि शाही चिन्ह प्राप्त हुए। ये अपनी वीरता के लिए जितने प्रसिद्ध थे उतने ही न्यायशीलता के लिए भी। खुर्रम के विद्रोह मे इन्होने बादशाह को यथेष्ट सहायता दी जिसमे ये साम्राज्य के स्तभ माने जाने लगे[२]। सवत १६८८ मे गोदावरी नदी के किनारे इनकी मृत्यु हुई[३]।

कवि-परिचय

इसके रचयिता कल्याणदास १७वी शती के उत्तरार्द्ध के कवियो मे से थे। ये मेहडू शाखा के चारण डिंगल के प्रसिद्ध कवि जाडा[४] मेहडू के पुत्र थे। कल्याणदास जोधपुर के महाराजा गजसिह (सवत् १६७६-१७९५ शासन-काल) के कृपा पात्रो मे से थे। इनकी काव्य-प्रतिभा से प्रभावित होकर महाराजा ने इन्हे 'लाख पसाव' प्रदान किया था[५]। इनका लिखा हुआ कोई ग्रथ नही मिला है पर फुटकर गीत, निशानियाँ और कवित्त पर्याप्त मात्रा मे मिले है। इन गीतो मे जो नायक आये है उनमे प्रमुख हैं—राजा गजसिह (जोधपुर—१६७६-१७९५ शासन काल), राजा भावसिह कछवाहा (आमेर—१६७१-१६७८ वि० शासन-काल), राणा भीम (टोडा-मृत्युकाल १६८१), राव रतनसी (बू दी-शासनकाल १६६४-१६८८)। अन्य नायको मे मानसिह परमार, दलपति सकताउत, करमसेन अगरसेनोत, राउत नराइणदास, बलू कान्हाउत के नाम गिनाये जा सकते है।

रचना-काल

वेल मे रचना-तिथि का उल्लेख नही है न पुष्पिका मे ही कुछ लिखा है। वेलि को पढने से ज्ञात होता है कि इसमे बू दी के राव रतनसी का चरित्र वर्णित है। रतनसिह के कवरपदा मे काशी के समीप चरनाद्रि स्थान पर शरीफखा के साथ हुए युद्ध का भी वर्णन किया है। रतनसी का शासन काल वि०स० १६६४ से १६८८ रहा है। इसी के आसपास इस वेल की रचना हो सकती है।

१—कोटा राज्य का इतिहास प्रथम भाग, डा० मथुरालाल शर्मा पृ० ८५

२—सागर फूट्यो जल बह्यो, अब की करो जतन्न।
जातो गढ जहागीर को, राख्यो राव रतन्न॥
राजस्थान-टाट द्वितीय भाग, पृ० ५२१ पर उद्धृत

३—वंश प्रकाश गगासहाय द्वारा सपादित और लखनऊ के नवलकिशोर जी के यत्रालय मे प० प्यारेलाल जी द्वारा प्रकाशित दिसम्बर सन् १८७९, पृ० १३३-३४।

४—जाडा का वास्तविक नाम आसकरण था परन्तु स्थूल शरीर होने के कारण उसको लोग 'जाडा' कहा करते थे। प्रवाद के अनुसार ये रहीम के समकालीन थे।

५—वीर-विनोद द्वितीय भाग, पृ०८२०

रचना-विषय

यह १२३ छदो की रचना है। इसमे बूदी के राव राजा रतनसिंह का चरित्राख्यान वर्णित है। प्रारभ के दो कवित्तो[1] मे सरस्वती[2] और गणपति[3] की वन्दना की गई है। तत्पश्चात् वेलि-छद मे राम, शिव, आदि का स्मरण कर वस्तु की ओर सकेत किया गया है[4]। नायक के प्रवाडो की असीमता के आगे कवि अपनी अक्षमता प्रकट करता है[5]। तदनन्तर बूदी के हाडा-राजाओ की वशानुगत विरुदावली गाता हुआ कवि कहता है कि देवीसिह (देवसिंह) ने युद्ध मे शत्रुओ के दात खट्टे किये, समरसिंह ने समर-क्षेत्र मे लाख गुणा जौहर दिखलाया, नापा (नरपाल) ने कीर्ति का विस्तार किया, हामा (हम्मीर) और वरसिंह दोनो सिंह तुल्य वली थे, वैरीशाल ने वैरियो मे वदला लिया, भाडा ने अपनी कटार का चमत्कार दिखलाया, नारायणदास और नरवद ने युद्धो के द्वारा आतक फैला दिया, सूरजमल ने सूर्य की तरह तेजस्विता दिखलाई, सुरताण वीरो का पति सिद्ध हुआ, अर्जुन सचमुच अर्जुन का अवतार था, सुर्जन महा प्रतापी और मर्यादा का रक्षक था, दूदा और भोज वीरता मे एक दूसरे से वढकर थे। इन्ही भोज के पुत्र राव रत्नसिंह रत्न की तरह प्रकाशमान थे[6]।

१—राजस्थानी पिंगल मे कवित्त छप्पय को कहते है।

२—इल कसमीर निवास अनै कोइलै चाचरि,
उदयगिरि अस्तगिरि धरा ब्रह्म ड सर भरि।
धमला कु डल वसन रथ्थ धमला धमलामत्ति,
आतम आतम मकति वेध गेयत्ति ब्रहमति ॥
माहेस वेस अ ग आवरति माण सरि रमती रती।
काइव प्रमाण ववििस कहिसि मा सु प्रसनवी सरसती ॥

३—गय डडीयल कमन मेक झल हल दताल,
सुडल नवल विमल सद्धि वर वुद्धि भुवाल ॥
प्रथम नाम उचरै जान कोइ काम कलासै,
सह आरभा तिलक नको कहता समासैं ॥
माहेस दूत अपति सुमति गुणसागर दीरघ ऊअर।
कवि सुमति उकती अखिर कहिस तौवर मगि गणेशवर ॥

४—कवि सरिसौ मात प्रणाम एणि क्रित, मडौ तिणि मडौ मिलणि।
रूपक कुल चहूआण, रतनसी, भुजवल वाखाणा भुअणि ॥ ६ ॥

५—कपि कमण पहूचै सिहरे वल करि, कुण चीत्रै असमाण करि।
पूरा कवि रतनसी प्रवाडा, एकणि किणि कहिजै अखिरि ॥ ७ ॥
कैमती जाइ रतन महातम कहियै, ए ऊपहास करण आपाण।
एर ऊडप सौ ववे आतम, मापै उतरिवौ महिराण ॥ ८ ॥

६—(क) राउ रतन री वेल छद सख्या १० से ३६
(ख) वश प्रकास पृ० ६३ से १३४

राव रतनसी के जन्म होते ही सर्वत्र आनन्द छा गया[१]। वह वेद की मर्यादा का रक्षक, ब्रह्म-पूजा का प्रतिपालक, और भीम के समान वीर, कर्ण के समान दानी तथा पर-दुख मे विक्रम के समान दयालु था[२]। वह चतुर्वेद और षटभाषा का जानकार था। व्याकरण, पुराण, स्मृति ज्योतिष, कला, यम, नियम आदि सभी प्रकार की विद्याओ मे पारगत तथा यौगिक क्रियाओ मे सिद्धहस्त था[३]। कोकशास्त्र, सगीत शास्त्र, और पाकविद्या मे दक्ष था। उदारता, दया और प्रसन्नता उसके रग रग मे व्याप्त थी[४]। वह शारीरिक पराक्रम मे भी किसी से पीछे न था। कवरपदे मे ही काशी के समीप चरनाद्रि स्थान पर उसने शरीफखा का वध किया।[५] और बुरहानपुर मे खुर्रम के विद्रोह को दबाया। उसकी यशोगाथा देव, दानव, नाग, यक्ष तथा किन्नर-लोक मे भी पहुँच गई। सातो द्वीप और सातो समुद्र उसकी कीर्ति से दीपित है। कामरूप, बगाल, महाराष्ट्र, मेवाड, बागड, गुजरात, सोरठ, सिध, पचनद, जालधर, काश्मीर, गाधार, कबोज, समरकद, काबुल आदि सभी प्रदेशो मे उसकी गाथाएँ गाई जा रही है। वह गीत, कवित्त, गाथा, नीसाणी, दूहा, कु डलिया, आदि सभी छदो मे रमा हुआ है।[६]

१—अद्‌भुज जराद्दज स्वेदज इ डिज, आश्रम च्यारि वरण आधार।
जाण अचर चर थावर जगम, उदयौ रतन महा अवतार ॥ ३८ ॥

२—वेदा मरजाद राखीयै वीय वह, पूजा ब्रह्म सयल प्रतिपाल।
करगे धरम पराक्रित काने, रतन जतन खत्र वट रख पाल ॥ ४० ॥
कण दौरै भीखम अरिजण करगे, मुख मै धरम दुजो अणमाण।
दानी करन बीकम पर दुख मै, वीडम भार जिम सेख बखाण ॥ ४१ ॥

३—चत्र वेद राग खट भाखा चित्त मै, गमि नव व्याकरण दस ग्रथ।
रीति चतुरदस गुण चौरासी, प्रीति पुराण अठारह पथ ॥४३॥
सासित्र मै च्यारि अठारह सम्रिति, जोतिष कला बहतरी जाण।
लखण बत्रीस छत्रीस इ लोहा, चित्त धारीवा राउ चहूआण ॥४४॥
जमि नियम प्राण प्रतिहार जोग मै, धारण आसण ध्यान समाधि।
अ ग आठै आरुढ आतमा, सुजहै कलै राखीया साधि ॥ ४५ ॥
खट चक्र मै रीति अधाराह खोडस, त्रिय लखि पचै व्योम तरीक।
पिंड ब्रह्म ड चै ढसु खिमपण, मन जाण गर रयण मछरीक ॥४६॥
एको मै थभ द्वार नव अ तरीक, सुनि तीन पच देव सति।
अवर कुटु ब पच इ द्री, सूरह रो भेदग सुमति ॥४७॥

४—परि कोक सगीत अ ग पारीखा, दया प्रसन्नता तेज दीपै।
उदारता, रूप मै अद्‌भुत, खता तणौ नह बोल खपै ॥५१॥

५—(क) चरणाढ खेति बूठो रण चाचरि, इ द्र रतनसी सारि अछोह।
मीर सरीफ तणा दल माथे, ता जग वात न जाअै तेह ॥७३॥

(ख) वश-प्रकास पृ० १२३

६—छद १०७ से १२०

कला-पक्ष ·

कवि काव्य के शास्त्रीय लक्षणो मे सुपरिचित है। उसमे वर्णन शक्ति का चमत्कार और विवरण शक्ति का शिल्प है।

काव्य की भाषा विशुद्ध साहित्यिक डिंगल है। उसमे ओज, प्रवाह और बल है। गिरि-निर्झर की तरह उसका बहाव देखिये –

घारू जल धार बलकि सिरि धड धड, बल बल किरि बादल मे बीज।
ऊजळ छूट रयण ओवडीयो, भूतल खल रहीया रत भीज ॥७७॥
कुंभाथल गडा दडा जिम कीजैं, हाड घडा कुट कडा हूवा।
रिण मेच्छडा छडा सीरुके, जाइ तडाम कडा जूवा ॥७८॥

रतनसी की वीरता का वर्णन आलकारिक शैली मे किया गया है। वह अपनी धाक मे समुद्र को हिला देने वाला है 'मारे हीलोले महण'। पृथ्वी पर आसमान टूट पडे तो उसे कोई चिन्ता नही –

इल माथै त्रुटि पडै जो अबर, कोई अनि वीर न धीर करै।
नरवद हरा तणी जगि निहची, र जीवती करगि धरै ॥५६॥

उसमे ताकत इतनी कि 'मेर उपाडि झाडि पल माहो, अलगे धरे रयण असहाय'। यहा तक कि सूर्य और चन्द्र भी ग्रहण के समय उसके आगे दीन बनकर सहायता के लिये प्रार्थना करते है –

सूरिज ससि करै पुकार रयण सौं, ग्रहण अनाथा जेम ग्रहे।
विजडे राउ तणा ऊपर वलि, राहु तणो डर न क्यो रहै ॥६१॥

वह इतना वीर और साहसी है कि –

'कालनल भोज तणो काधालो, मछरालो सू डाला मार।
दताला सू डाला दो मझि, गलाले मडे गुजार ॥६२॥
कू भाथल फोड़ै त्रौडै काधा, मोड़े नी जोडै गजमार।
कुण रोडे जोडे काधालो, विछोडै विण खूटी वार' ॥६३॥

रतनसी की शरणागत वत्सलता मे कवि ने पौराणिक प्रसग 'गज-ग्राह' का आश्रय लिया है –

'गज ग्राह सुभट अम्वर वै गिलता, सुणै पुकार गरूड तजि साथ।
ऊवेलिया आपणा आरति, दोडीयो रयण देव जगन्नाथ ॥६२॥

तो दानवीरता के वर्णन मे लक्ष्मी–सरस्वती का –

मातग तुरग रुकमनै मोती, समपे करि सासण सिर ताज।
लिखमी सुकवि सरसती लागो, आणै रतनि मेटियौ आज ॥१०३॥

उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा का प्रयोग जगह जगह हुआ है।

उपमा :

(१) दखिणाध वडा मार्थ दोपहरी, रुकै वालण जूथ रिम।
राउ चहूआण रतन रिण अ गणि, तपीयो ग्रीखम सूर तिम ।।६५।।

(२) अकबर पतसाह महण जल आरिख, अनि पह तप वोलीया अनीति।
माहै थकौ भोज माटीपण, राउ रहीयो वडवानल रीति ।।३५।।

रूपक :

भोज को उदयाचल और रतनसी को सूर्य कहना ऐतिहासिक दृष्टि से भी सगत है –

उदयगिर भोज धरीम एकाणवि, ववीयो खट त्रीसा वयण।
किरण सहस ध, रख सूरिज ऊगो रयण ।।३६।।

युद्ध-वर्षा-रूपक सुन्दर बन पडा है। सग्राम स्थल नदी, दोनो सेनाएँ नदी के दो किनारे और रक्तधार जलधारा तथा रतनसी बादल –

सलिता संग्राम सुतट दोइ सेना, गति जल रुहिर लहर गज गाह।
करपै मीन चोहूर मैं काभी, वहै धार अदभुत सेवाह ।।८४।।

इसी प्रसग को इस ढग से आगे बढाया है कि वीभत्स दृश्य भी रम्य बन गया है –

'पल पक फेण धज उमनी पडीया, कूरम तुरस टोप सिर कोडि।
वड फर घनरव आवरत वणीया, जरठ पडे ओहाला जोड ।।८५।।
मकरा मय घडा हस हसा मै, वग मैं ग्रीव मोर महनाद।
पल चर रातल दादुर पखी, साथ अनेक भयानक साद ।।८६।।
मातग कमल सिर नान्हा मोटा, पडीया कण माला पास।
ग्राह नीके जम अर विंदा, वणीया तरण खत्री मैं वास ।।८७।।
पणिहारि सकति माली ऊमापति, करिवा कमल माल चे काम।
नव गति अछर हूर तिणि नदि चें, वरण मरण जल-तट मे वास' ।।८७।।

वयणसगाई का प्रयोग सर्वत्र हुआ है। इसके साधारण और असाधारण दोनो प्रकार देखे जा सकते हैं –

साधारण

(१) सुखम गुण वैराट सरीर (२)
(२) धमल रूप वलवत सधीर (१६)
(३) धारण आसण ध्यान समाधि (४५)

असाधारण

(१) काडीसउ कटार मलि (१५)
(२) राउ राउता मुहर रुक हथ (६३)

छन्द :

वेलियो और सोहणो का प्रयोग हुआ है। प्रारम्भ के दो और अन्त का एक कवित्त (छप्पय) छद है।

उदाहरण :

(१) *वेलियो*

पुहपा मे अरथ मुजस फल ने पति, ऊगी मुख कवि तणी असीस।
सुरतर रयण जगत सिरि सोहै, सोहै वेलि फलीते सीस ॥१२०॥

(२) *सोहणो*

वधव अगजीत महावल वेऊ, कहर कडखिया मेन कटै।
धर राजवट मरिता वणीयप, घटे न दूदो भोज घटै ॥२६॥

(८) सूरसिघ री वेल[1]

प्रस्तुत वेल बीकानेर के महाराजा सूरसिंह से सम्बन्ध रखती है। उनका शासन समय वि० स० १६७०-८८ है। सूरसिंह रायसिंह की दूसरी रानी गगा (जैसलमेर के रावल हरराज की पुत्री) के पुत्र थे। रायसिंह ने दलपतसिंह के ज्येष्ठ पुत्र होने पर भी सूरसिंह को उत्तराधिकारी बनाया पर बादशाह जहागीर ने दलपतसिंह को ही मान्यता दी। आगे चलकर जहागीर दलपतसिंह से रुष्ट हो गया और उसने दलपतसिंह को कैद करके राज्य सूरसिंह को दे दिया। स० १६७० मे वह गद्दी पर बैठा।[2]

कवि-परिचय

इसका रचयिता गाडण चोला (जिसे चौथजी भी कहा जाता है) महाराजा सूरसिंह के पास 'वेत्र' नामक ग्रथ की रचना करने के लिए आया था। महाराजा

१—(क) मूल पाठ मे वेलि या वेल नाम नही आया है पुष्पिका मे लिखा है 'इति महाराज श्री सूरसघजी री वेल सपूर्ण'

(ख) प्रति-परिचय — इसकी हस्तलिखित प्रति अनूप सस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर के गुटके १२६ (ख) मे सुरक्षित है। प्रति का आकार १०½"×७" है। यह १½ पत्र मे लिखी हुई है। प्रत्येक पृष्ठ मे ३२ पक्तियाँ है और प्रत्येक पक्ति मे २४ अक्षर है। प्रति की अवस्था अच्छी है।

—बीकानेर राज्य का इतिहास प्रथम खण्ड, ओझा, पृ० २११

ने इसे डाडूसर मय ६ गाव तथा एक लाख पसाव प्रदान किया।[1] गाडण चारणों की गोत्र विशेष है। कवि के वशज बीकानेर के सडू ग्राम मे अब भी विद्यमान है।

रचना-काल :

वेल मे रचना-तिथि का उल्लेख नही है। मू दडा राजरूप और किशोर ने स० १७६७–१८११ के बीच देशनोक मे इसे लिपिबद्ध किया। कविराजा श्यामलदास के अनुसार वि० स० १६७२ मे इस वेल की रचना हुई।[2]

रचना-विषय

प्रस्तुत वेल ३१ छदो की रचना है। इसमे बीकानेर के महाराजा सूरसिह की विरुदावली गाई गई है। प्रथम छद मे कवि ने सुरपति, सरस्वती तथा गणेश की वन्दना करते हुए वस्तु का सकेत किया है।[3] आगे के तीन छदो मे सूरसिह के व्यक्तित्व की विशेषताएँ प्रकट करते हुए उसे गढ वीकपुर (बीकानेर) रूपी उदयाचल पर उदित होने वाले सूर्य से उपमित किया है। तत्पश्चात् ५ से १४ छद तक सूरसिह के पूर्वजो का वर्णन है। १५ से ३० छद तक विविध उपमानो के साथ सूरसिह की अन्य राजाओ के साथ तुलना की गई है।[4] अन्तिम छद मे युगयुगान्तर तक प्रकाशित रहने का आशीर्वाद दिया गया है।[5]

कला-पक्ष :

काव्य की भाषा विशुद्ध डिंगल है। उसमे ओज, माधुर्य और प्रवाह है। भाषा का स्वच्छद प्रवाह देखिये –

महि रूपक सूर रूप कल मडण, रूप चडावण नर नयण।
रूप छतीस वस रा सावत, भूप रूप तीजै भयण ॥२॥

१—तवारीख राज श्री बीकानेर मु शी सोहनलाल, पृ० १४१

२—वीर विनोद, पृ० ४६२।

३—सुरपति कू प्रसन समयमति सरसति, दे मति गुणपति वयण वृत्ति।
पति भुयपति सूर उचतापति, पह वाखाणा खेड पति ॥१॥

४—अरहट अवर पह इन सर गिरयन, मेर महण घण सूरजमाल (१८)
धरपति अवर जोवता मणधरि, सूर विरद घण सहस-फण (२०)
अधिपति अवर मदार ईखता, खेड सुपह खित सागर खीर (२१)
जल नदि अवर अवर नर जामलि, जगि सूरजमल गग जल (२२)
तार, कथीर काच इ न भूयपति, हेम, हीर, नग जेतहर (२३)
ससार प्रसाद वाद पारिख सुज, फेर पखै जोवता फेर।
वह कमठाण थम्भ पह बीजा, सूर कलस धज तास सेर (२६)
पख वग सख वीना बीजा पह, सूरगरु हस वस सुध (२४)

५—सायर धर अ वर सूर गिर ससिहर, जग नर अ मर अचलइ जाम।
रिख जख सेख वभ हरि इ द रूद, तूझ प्रताप सूर लग ताम (३१)

वयणसगाई का प्रयोग सर्वत्र हुआ है। उसके साधारण और असाधारण दोनों प्रकार देखे जा सकते है –

साधारण

(१) मेर महण धण सूरज माल (१८)
(२) लहरी दन दीयण वरस जग रेलण (१८)
(३) रूप छतीस वस सणगार (१६)

असाधारण :

(१) मेघाडम्बर छात्र माडीयै छत्रपति (१५)
(२) सूर सहस कर सहस वल (१५)

अन्य अलकारो मे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप आदि प्रयुक्त हुए है।

छंद :

कवि ने छोटे साणोर के भेद वेलियो और खुडदसाणोर का प्रयोग किया है।

उदाहरण .

(१) *वेलियो*

लहरी दन दीयण वरस जग रेलण, प्रसिध अडिग मोटिम अणमाल।
अरहट अवर पह इन सर गिर यन, मेर महण धण सूरजमाल ।।१८।।

(२) *खुडदसाणोर*

भव पातग रोर दलिद जाहि भाजे, करता दान सनान कल।
जल नदि अवर नर जामलि, जगि सूरज मल गग जल ।।२२।।

(६) अनोपसिघ री वेल[१]

प्रस्तुत वेल बीकानेर के महाराजा अनूपसिह से सम्बन्ध रखती है। अनूपसिह बीकानेर के उन राजाओ मे से थे जिन्हे दुर्गा के साथ साथ सरस्वती का भी वरदान प्राप्त था। ये महाराजा कर्णसिह के ज्येष्ठ पुत्र थे। पिता की विद्यमानता मे ही

१—(क) मूल पाठ मे वेलि या वेल नाम नही आया है। पुष्पिका मे लिखा है 'इति कु वर श्री अनोपसघ जी री वेलि सपूर्ण'

(ख) प्रति–परिचय –इसकी प्रति अनूप सस्कृत लायब्रेरी बीकानेर के गुटके न० १२६ (घ) मे सुरक्षित है। प्रति की अवस्था अच्छी है और आकार १०½"×७" हैं। सम्पूर्ण वेलि दो पत्रो मे लिखी हुई है। प्रत्येक पृष्ठ मे ३२ पक्तियाँ है और प्रत्येक प क्ति मे २४ अक्षर है।

बादशाह औरङ्गजेब ने इन्हे दो हजार जात एव डेढ हजार सवार का मनसव प्रदान कर बीकानेर का राज्याधिकार सौप दिया था[१]। वि० स० १७२६ मे अपने पिता की मृत्यु के बाद ये गद्दी पर बैठे[२]। ये स्वय सस्कृत के पडित थे। इन्हे ग्रथ सग्रह का बडा शौक था। बीकानेर की वर्तमान अनूप सस्कृत लायब्रेरी-जिसमे लगभग २०,००० हस्तलिखित ग्रथो का सग्रह है-इनकी ही कृति है। दक्षिण के अभियानो मे इन्होने सस्कृत के अमूल्य और दुष्प्राप्य ग्रथो का सग्रह किया। विद्वानो और कवियो के ये बडे प्रशसक तथा आश्रयदाता थे। इनके दरबार मे कई कवि रहा करते थे[३]।

कवि परिचय :

कवि ने वेल मे कही भी अपने नाम का उल्लेख नही किया है। शीर्षक-'महाराजा श्री कुवर श्री अनोपसघ जी री वेल गाडण वीरभाण ठाकुरसीयोत कहै' से सूचित होता है कि कवि का नाम वीरभाण है। वह गाडण गोत्र का चारण है। ठाकुरसीयोत से ज्ञात होता है कि वह ठाकुरसी का पुत्र या वशज रहा है। कवि चरित्र नायक का समकालीन था। और बीकानेर राज्यान्तर्गत सडू ग्राम मे रहता था।

रचना-काल :

वेल मे कही भी रचना-तिथि का उल्लेख नही है। सम्पूर्ण गुटके को देखने से पता चलता है कि इसे मूदडा राजरूप और किशोर ने सवत १७६७ से १८११ मे देशनोक मे लिपिवद्ध किया था। कवि वीरभाण अनूपसिह का समकालीन था। 'महाराजा श्री कुवर श्री अनोपसघ जी री वेल' से सूचित होता है कि उसने इस वेल की रचना अनूपसिह कुवरपने मे थे तभी की थी। इससे अनुमान है कि इसका रचना-काल अनूपसिह के राज्याभिषेक वि० स० १७२६[४] से पूर्व रहा हो।

रचना-विषय .

४१ छन्दो की यह वेल अनूपसिह की प्रशसा मे लिखी गई है। प्रथम छन्द मे सरस्वती और गणेश की वन्दना करते हुए वस्तु की ओर सकेत किया गया है[५]। २ से लेकर २१ छन्द तक चरित्रनायक की विशेपताएँ वर्णित है। २२ से ४१ छन्द तक आदिनारायण से लेकर अनूपसिह तक की वशावली का उल्लेख है।

१—बीकानेर राज्य का इतिहास प्रथम खण्ड ओझा, पृ० २५४

२—वही पृ० २५४

३—वही पृ० २८०-८७

४—वही पृ० २११

५—सरसति कू प्रसन समपि आखर सिध, गणपति आयो मोहि गण।
आनो इमट त्याग नित ईखा, तिजड साहियै करण-तण ॥१॥

कवि के कथनानुसार अनूपसिंह अमिट त्यागी और तलवार का धनी है[1]। उसका तपोपुंज व्यक्तित्व सूर्य की तरह है जिसके उदित होते ही शत्रु रूपी तारे अस्तित्व रहित हो जाते है[3]। आश्रय-स्थल[2] एव कवि रूपी चकवो के लिए किरणमाल है[4]। प्रतिज्ञा-पालन मे पाण्डवो की तरह, गति और शत्रु-विनाश मे हनुमान की तरह, सयम मे यति गोरख की तरह और सत्यवादिता मे युधिष्ठिर की तरह है[5]। स्त्रियो के सम्मुख वह समुद्र की तरह प्रशान्त और गम्भीर है तो अपने प्रभाव-प्रभुत्व मे हिमालय की तरह उन्नत[6]। वह अनाथो का नाथ और निर्बलो का बल है[7]।

कलापक्ष

काव्य की भाषा विशुद्ध डिंगल है। वयणसगाई का प्रयोग सर्वत्र हुआ है। उसके साधारण और असाधारण दोनो प्रकार देखे जा सकते है-

साधारण

(१) मोटै चित वखति दान पिण मोटै (८)
(२) कुभ धारियै विरद असक्रित (६)
(३) रुति धन सखसाम रावोड़ा सर (२६)

असाधारण

(१) जोवनास मानधीता जगत भल (२५)
(२) राव जोवे वीके जिसो राय गुरु (४०)

कही कही पूरी पक्तियाँ अनुप्रास मडित है—

(१) वडवार वेड ब्रहास व्रवण वड (५)
(२) नागर निवड नरेस नीपणा (१७)

अर्थालकारो मे उपमा, रूपक और व्यतिरेक के उदाहरण द्रष्टव्य है—

१—आनौ इमट त्याग नित ईखा,
तिजड साहियै करण तण (१)

२—उदियो जेम अरक वडै वस ओपम,
उढिण अरहर भाजि अधार (२)

३—जाचक ओढंभ साहियै जड लग (४)

४—कवि चकवा आनौ किरणाल (५)

५—पह पगे करने पाडव पिण, पहुचि हुणू किलै वलि पात।
जति गोरख जुजिष्टल सच जीहा, हयवर व्रवण हिरन वड हाथ (६)

६—सहजा भामणी मपेखित सायर, ऊचाई गरवत अधिकार (११)

७—नायण ऊनाथ वरी निवला वल कु वर (१३)

(१) काव्य की कथा का आधार श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण और शिवपुराण रहा है। भक्ति-काल की सगुण-निर्गुण दोनो धाराएँ यहा प्रवहमान है। कवियो की दृष्टि कृष्ण, राम, शिव, रुक्मणी, पार्वती और त्रिपुर सुन्दरी पर पडी है। कथा के विकास मे अलौकिक तत्वो और कथानक-रूढियो का प्राय सहारा लिया गया है।

(२) कथा-प्रबन्ध मे जगह जगह वर्णनो ने स्थान घेर रखा है। अन्य वर्णनो के अतिरिक्त नख-शिख-निरूपण, विवाह-प्रसग, युद्ध-वर्णन और प्रकृति-चित्रण के स्थल बडे ही कवित्वपूर्ण और रम्य है।

(३) काव्य के प्रारम्भ मे मङ्गलाचरण, कवि का असामर्थ्य, पूर्ववर्त्ती कवियो का सादर स्मरण और वेलि का माहात्म्य गाया गया है। कही-कही रचना के अन्त मे भी ऐसा किया गया है।

(४) यहाँ जितने भी पात्र आये है वे प्रधानत दैविक गुणो मे सम्पन्न है। कृष्ण, राम और शिव के दो-दो पक्ष है। ये आदर्श प्रेमी बनकर मानव-लीला करते है पर उनके परब्रह्म का स्वरूप भी कम आकर्षक नही। कथा के आदि और अन्त मे इनका ब्रह्मत्व फैला हुआ है तो कथा के मध्य मे लौकिक सद्-गृहस्थ का रूप। स्त्री-पात्रो के भी दो रूप है। मानवी और देवी। रुक्मणी, पार्वती सौदर्य और शील की मूर्ति के साथ साथ ब्रह्म की शक्ति भी है। त्रिपुर-सुन्दरी देवी के रूप मे ही प्रकट हुई है। वह दुष्टो का दमन करने वाली है। प्रतिनायक और खल-पात्र उपस्थित होकर सघर्ष पैदा करते हैं। सघर्ष का अन्त पाणिग्रहण सस्कार, पुत्र-जन्म और दुष्टो के दमन के साथ होता है।

(५) कथा-प्रबन्ध (क्रिसन रुक्मणी री वेलि और महादेव पार्वती री वेलि) मे अङ्गी रस सयोग शृ गार है। दूसरा प्रमुख रस वीर रस है जिसके सहायक बनकर ही वीभत्स, भयानक और रौद्र आये है। अन्य रसो की भी यथावसर अवतारणा की गई है। इन वेलियो के अन्त मे शृ गार रस लौकिक धरा-तल छोडकर धीरे धीरे भक्ति-रस मे पर्यवसित हो जाता है। मुक्तको (गुण चाणिक वेल, त्रिपुर सुन्दरी री वेलि) मे तो भक्ति की ही प्रधानता है।

(६) काव्य-रूप की दृष्टि से इस साहित्य के दो रूप है। प्रबन्ध और मुक्तक। प्रबन्ध को सर्गो या काण्डो मे विभक्त नही किया गया है। फिर भी उसमे कथा-विस्तार और अन्य वर्णन-स्थल है जबकि मुक्तक मे केवल स्तुति मात्र। 'गुण चाणिक वेलि' मे बाह्य क्रिया काण्डो का जबरदस्त विरोध कर भक्ति का शुद्ध स्वरूप भी प्रगट किया गया है।

(७) वर्णन-स्थलो एव प्रकृति-चित्रण मे राजस्थान के स्थानिक प्रभावो (लोकल कलर) का सुन्दर दिग्दर्शन इस साहित्य की विशेषता है।

(८) काव्य की भाषा प्रधानत साहित्यिक राजस्थानी (डिंगल) है। यों चलते हुए 'रघुनाथ चरित्र नव रस वेलि' के उत्तरार्द्ध मे व्रज भाषा का भी प्रयोग हो गया है। 'त्रिपुर सुन्दरी री वेल' सम्पूर्ण चारणी वेलि-साहित्य मे एक मात्र ऐसी कृति है जो बोलचाल की सरल राजस्थानी मे लिखी गई है और जिसमे न तो वयणसगाई अलंकार का प्रयोग किया गया है न 'वेलियो' छन्द का ही। भाषा मे माधुर्य और ओज गुण की प्रधानता है। शब्दालङ्कारो और अर्थालङ्कारो का खुलकर प्रयोग हुआ है। कही कही तो एक-एक छंद मे चार-पाँच अलङ्कार भी आये हैं।

(९) छन्द की दृष्टि मे 'छोटा साणोर' अपने तीनो भेदो--वेलियो, सोहणो, खुडद साणोर--मे प्रयुक्त हुआ है। जहाँ व्रजभाषा का प्रयोग हुआ है वहाँ छप्पय, कुण्डलिया, दोहा, चौपाई, सवैया, कवित्त, त्रोटक, नाराच, निसाणी आदि भी आये हैं (रघुनाथ चरित्र नव रस वेलि तथा त्रिपुर सुन्दरी री वेलि मे) उपलब्ध प्रमुख वेलियो का अध्ययन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) किसनजी री वेलि[1]

शीर्षक को देखते हुए प्रस्तुत वेलि का सम्बन्ध कृष्ण मे प्रतीत होता है पर वास्तव मे इसका वर्ण्य-विषय रुक्मणी का नख-शिख वर्णन है।

कवि--परिचय .

इसके रचयिता साखला करमसी रूणेचा हैं। ये साखला जाति के राजपूत थे। 'रूणेचा' शब्द मे सूचित होता है कि इनका वंश मूलत रुण नामक स्थान से उठा था। नैणसी की ख्यात के अनुसार ये राणा सीहड के द्वितीय राजकुमार वच्छा के वंशजो मे मे थे। उदयपुर के महाराणा उदयसिंह तथा बीकानेर के राव कल्याणमल के ये समकालीन थे। डा० सावित्री सिन्हा ने इस वेलि के रचनाकार के सम्बन्ध मे भ्रामक मत दिया है 'राव योधा की सार वाली रानी-कृष्णजी री वेलि'

१—(क) मूल पाठ मे वेलि नाम नही आया है। पुष्पिका मे लिखा है 'इति साखुल करमसी रुणेचा कृत श्री कृष्णजी री वेलि'

(ख) प्रति-परिचय —इसकी हस्तलिखित प्रति अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर के गुटके न० ९९ (ड) मे सुरक्षित है। प्रति की अवस्था पानी पड जाने के कारण कुछ खराब हो गई है। आकार ६¾"×५¼" है। दो पत्रो (२५७-५८) मे यह लिखी हुई है। प्रत्येक पृष्ठ मे २० पंक्तियाँ है और प्रति पंक्ति मे २२ अक्षर हैं।

(ग) वर्तमान लेखक ने इसे प्रकाशित किया है मरूवाणी वर्ष ४ अङ्क १२ (दिसम्बर, १९५९), पृ० ३-५

के नाम से डिंगल काव्य मे अनेक रचनाएँ की गई। इसी नाम की एक हस्तलिखित प्रति की रचयिता श्री टैसीटोरी ने इस रानी को माना है–जिसकी प्रथम पक्ति है 'अनोपम रूप सिंगार अनोपम भूषण अङ्ग'[1]। प्रतीत होता है लेखिका ने न तो इस वेलि की हस्तलिखित प्रति ही देखी है न टैसीटोरी के कथन[2] को ही समझा है। टैसीटोरी ने, मूल प्रति का अनुसरण करते हुए इस वेलि को करमसी की रचना ही बताया है पर यह टिप्पणी भी दी है कि मूल प्रति की विषय सूची मे इस वेलि को जोधा की साखली रानी की रचना कहा गया है। प्रथम पक्ति का उद्धरण भी ठीक नही दिया है[3]।

रचना–काल

वेलि के अन्त मे रचना–काल नही दिया गया है। पुष्पिका[4] से प्रतीत होता है सवत १६३४ वैसाख सुदी ३ रविवार को सावलदास ने कटक मे रायसिंह के साथ जाते समय बूसी नामक ग्राम मे इसे लिपिबद्ध किया था। सावलदास राव बीकाजी के भाई बीदा के पौत्र सागा के बेटे थे। ओझाजी के अनुसार सागाजी को राव जैतसी ने द्रोणपुर पर चढाई करके वहाँ बैठाया था[5]। सावलदास बीकानेर नरेश रायसिंह के सामन्त थे। इन पर रायसिंह का विशेष स्नेह और कृपा–भाव था। अनुमान है इसकी रचना सवत १६०० के आसपास हुई हो।

रचना–विषय

प्रस्तुत वेलि २२ छन्दो की छोटी सी रचना है। इसमे रुक्मणी के नख-शिख का वर्णन किया गया है। सबसे पहले चरणो का वर्णन है। शशि–वदनी रुक्मणी ने कृष्ण के साथ रग खेलने के लिए अनुपम रूप और शृ गार धारण किया है[6]।

१—मध्यकालीन हिन्दी कवियित्रियाँ (प्रथम सस्करण १९५३), पृ० ३५

२—इन द इन्डेक्स ओफ द कण्टेण्टस् ओफ द गुटका (पे० २७९ बी)
हाउएवर, द वर्क इज एट्रिब्यूटेड टू द साखली रानी ओफ राव जोधा (द मदर ओफ राव बीका)–डी० के० से० दो, पार्ट एक, पृ० ४५

३—यह इस प्रकार होना चाहिए 'अनोपम रूप सिंगार अनोपम,
अवल अनोपम लपण अ गि'

४—इति साखुल करमसी रूणेचा कृत श्री किसनजी री वेलि। लिखित सावलदास सागावुत। सागौ ससारचद उत। ससारचन्द बीदावुत। बीदौ महाराजाधिराज महाराय श्री जोधइ रौ। लिखित ग्राम बूसी मध्ये। सवत १६३४ वर्षे वैसाख सुदि ३ दिने रविवासरे घटी ८।४१ मृगसिर नक्षत्रे घटी ४०।४९ शुकर्म्म नामयोग। घटी ५२।१६ महाराजाधिराय महाराइ श्री राईसिघजी रइ साथि थकइ सावलदासि पोथी लिखी कटक मा है।

५—बीकानेर राज्य का इतिहास।

६—अनोपम रूपि सिंगार अनोपम, अवल अनोपम लखण अ गि।
सहि एता आणिय ससि वदनी, रै श्री रग माणिवा रगि ॥१॥

उसकी कोमल पगतलियाँ रक्त की लालिमा मे छलकी पडती है। वे ऐसी लगती हैं मानो कोई लाल कमल उलटा कर रख दिया हो। पैरो के नाखून दर्पण की तरह चमकते है अथवा ऐसे दिखाई देते है मानो कमलो पर कोई दीप-पक्ति झिलमिला रही हो[1]। पैरो मे नृत्य करने के लिये जो नूपुर धारण कर रखे है उनकी छनछनाहट सुनने मे ऐसी प्रतीत होनी है मानो कामदेव नरेश के वाद्य यन्त्र बज रहे हो। जब वह सुन्दर शरीर वाली तरुणी सचरण करती है तो ऐसा ज्ञात होता है मानो ऐरावत हाथी प्रवेश कर रहा हो[2]। उसकी पिडलियाँ गौरव की भारी शीशी हैं अथवा जगन्नाथ (कृष्ण) से युद्ध करने के लिए वियोगिनी (रुक्मणी) ने गदा का प्रयोग किया हो[3]। उसने अपनी हाथी की सू ड के समान युगल जघाओ को जाल (लहगा) मे रख दिया है जहाँ हमेशा षटऋतुओ का निवास रहता है और उनके स्पर्श मात्र से कामदेव की उत्पत्ति होती है[4]। रोम-रहित कठिन नितम्ब हाथी के कुम्भस्थल के समान (गोलाकार) हैं। ससार के लोग कहते है कि कामदेव को शिवजी ने भस्म कर दिया, इसीलिए वह अब इन दोनो पहाडो मे आकर बस गया है[5]। नाभि-मण्डल रूप का कुआ तथा रति-रस का कुम्भ है। रोमावली ऐसी प्रतीत होती है मानो दुनिया के दग्ध मनो को सीचने के लिए माली ने लेज पकडी हो[6]। कटि इतनी क्षीण हो गई है कि उसे आसानी से हाथ मे पकडा जा सकता है। इस क्षीणता का कारण यह है कि उसे नितम्ब और पयोधर दोनो अपनी अपनी ओर खीचते है जिससे उसकी (कटि की) दशा ठीक उस निर्बल शत्रु की तरह हो गई है जो दो बलवान राजाओ के बीच फँस गया हो[7]। उसके उठे हुए नोकदार कुच माधव के हाथो मे सरसता से धरने के लिए हैं। शरीर की नसे इस प्रकार दिखाई देती हैं मानो कुमकुमे मे कु कुम भरा हो और देह कमल-पुष्प के परिमल की तरह

१—पइतल रत कोमल श्रोणिस पूरित, कोकनद विपरीह करि।
दरपण तस नख पाइ अति दीपइ, पकति अथवा कवल परि ।।२।।

२—नूपुरि झकारी पाइ निरितौ किरि, वाजित्र कद्रप नरेस।
सुतणि तरुणि सचरै सही सउ, पुरिनर वै किरि करै प्रवेस ।।३।।

३—परि नव लता स्त्री पिड पुणियो ताइ, गुरु सीसी सुमान तलि।
किरि जगन्नाथ सरिस जुध करिवा, विरहि सजोई गदावलि ।।४।।

४—जघस्थल युगल अनोपम जुवती, जोगम किरि जालधरी।
परस तास रूति-राव ऊपजै, भाव जोनि छह रूति भरी ।।५।।

५—कठिन नितव निरोमै कामणि किरि, कू भस्थल गइँद कहि।
इखे भवि ईस अनग ऊजाणौ, गिरि विनि रहियौ जाणि गहि ।।६।।

६—नाम मडल तर नारि अनोपित, रूव-कूव रति कू भ रिसि।
रोमावलि लेज मिहण दुनि दमणा, मन माली सीचिवा मिसि ।।७।।

७—करि ग्रहि लक माण तस कामणि, कारणि किणि कहि खीण करि।
खाचै नितव पयोहर खाचै, उभे नपा विचि निबल अरि ।।८।।

वयणसगाई का प्रयोग सर्वत्र हुआ है। उसके साधारण और असाधारण दोनो प्रकार देखे जा सकते है—

साधारण

(१) कोकनद विपरीह करि (२)
(२) विरहि सजोई गदावलि (४)
(३) राजहस जिम चली कुवरि (२१)

असाधारण

(१) नखत्र माल सोहति कि निसि भरि,
चंदण तिलक कि चद परि ॥१६॥
(२) रतन जडित राखडी सरोपित,
वेणि कलति सरल वल केय ॥२०॥

अर्थालकारो मे उपमा, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, भ्रम, सन्देह आदि अलकार विशेष रूप से प्रयुक्त हुए हैं—

उपमा —अनोपम बाह जुगल तस अबला, पुणि मृणाल विपरीह परि ॥६॥
अधर अति अरुण कि बीद्रिम उपित, पाक बिब उपमा परि ॥१३॥

रूपक —मुख वारिज सपेखि मइ ॥१६॥
मन विहग तास वस करिवा ॥१८॥

उत्प्रेक्षा —नूपुरि झकारै पाइ निरितौ किरि वाजित्र कद्रथ नरेम ॥३॥
कठिन नितब निरोमे कामणि, किरि कुभस्थल गइद कहि ॥६॥

व्यतिरेक —वाया अभि अरुण कि पाहि विशेषित अखडित, अकलक, अमीये।
तास त्रिया सो किम तोलीजै, कलकितु विधु न घटि तकै ॥१५॥

भ्रांतिमान —भौहारे भवर कि भूलि बइठा, मुख वारिज सपेखि मइ ॥१६॥

सन्देह —दरपण तस नख पाइ अति दीपइ, पकति अथवा कवल परि ॥२॥

छद —छोटे साणोर के एक भेद खुडदसाणोर का प्रयोग हुआ है।

उदाहरण

अनोपम रूपि सिगार अनोपम, अबल अनोपम लखण अगि।
सहि एता आणिय ससि वदनी, रै श्री रग माणिवा रगि ॥१॥

(२) गुण चाणिक वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि कवि की भक्ति-भावना मे सवध रखती है। इसमे कवि ने बाह्य कर्म-काण्डो का विरोध कर शुद्ध मन से भगवान को स्मरण करने की प्रेरणा दी है।

कवि-परिचय

इसके रचयिता चूंडौजी[2] दधवाडिया गोत्र के चारण थे। ये मेहाजी के पौत्र थे। डिंगल का प्रसिद्ध कवि द्वारकादास दधवाडिया इनका पौत्र था तथा पृथ्वीराज का समकालीन कवि माधोदास इनका पुत्र था। इनका जन्म स० १५७०-७५ के आसपास हुआ होगा।[3] इन्होने नागौर परगने के छीले (जो आजकल चीलो के नाम से पुकारा जाता है) मे एक लडकी मे—जिसकी सगाई किसी दूसरे चारण के साथ हो चुकी थी—शादी करली। इस पर झगडा उत्पन्न हुआ और ये अपना निवास गाव 'दधवाडा' छोडकर मेडता के वीरमजी के पुत्र और जयमल के भाई चादाजी के पास चले गये। चादाजी ने एक वलूदा नामक गाव वसाया और उसका एक मोहल्ला (बाए) चूंडौजी को प्रदान कर दिया। चूंडौजी के वशजो के अधिकार मे अभी तक वह चला आता है।[4]

ये चारभुजा देवी के वडे भक्त थे। चारभुजा का एक मदिर मेडते मे है। ये अपने समय के प्रसिद्ध कवियो मे से थे। नाभादासजी ने भक्तमाल मे इनका कवि एव भक्त के रूप मे उल्लेख किया है। इनकी निम्नलिखित कृतियाँ मिलती हैं —

(१) निमधा बध (२) गुण चाणक वेलि (३) गुणभाखडी (४) रामलीला (५) फुटकर कवित्त (दर्शन एव भक्ति सवधी)

रचना-काल :

वेलि के अन्त मे रचना-तिथि का उल्लेख नही है। पर इसके रचयिता चूंडौ दधवाडिया वेलिकार पृथ्वीराज राठौड के समकालीन कवि माधोदास के

१—(क) मूल पाठ मे वेलि नाम आया है 'वैलिज कहै विणा वनमाली विष मै फल लागे तिण वेलि' (३०) पुष्पिका मे लिखा है 'इति चौंडाजी री कही चाणक वेलि'

(ख) डा० हीरालाला माहेश्वरी ने इसे (राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १५०) अप्राप्य वतलाया है, पर यह मरुवाणी वर्ष ४ अ क ५ (मई १९५९) पृ० २१-२४ मे प्रकाशित हो चुकी है।

२—कवि ने वेलि के अ त मे अपना नामोल्लेख किया है—चरण कमल रज मागे चौंडो साध समागम मागे स्याम (४१)

३—मरुवाणी वर्ष ४ अ क ५ (मई १९५९) पृ० २१

४—डिंगल गीतकार . सीताराम लालस (अप्रकाशित)

पिता थे। पृथ्वीराज ने अपनी 'वेलि' के लिए चूडौजी से सम्मति न मागकर माधोदास से मागी। इससे अनुमान है कि वेलि के रचना-काल के समय चूडौजी इस लोक से प्रस्थान कर चुके थे। अत चाणिक वेलि को पृथ्वीराज की वेलि से पूर्व की रचना (अर्थात् १७वी शती का प्रारभ) मानना ही अधिक समीचीन होगा।

रचना-विषय

प्रस्तुत वेलि ४१ छदो की रचना है। इसमे चूडौजी का हृदय भक्तिभाव से भरकर फूट पडा है। उनमे भक्ति की वह अतल गहराई है जिसके आगे बाह्य क्रिया-काड निरर्थक एव निर्मूल हैं।[1] कवि की वाणी एक ओर सिर का मुडन कर मौन-व्रत धारण कर शून्य-गुफा मे बैठकर प्राणायाम करने वाले निर्गुणोपासक साधक की धज्जिया उडाती है[2] तो दूसरी ओर कृष्ण की-जीवन और जगत की प्रत्येक सम्पर्कित वस्तु मे—अनुभूति कर निरन्तर उनका जाप करने वाले उपासक की मगल-सिद्धि का उद्घोष करती है। उसकी दृष्टि मे जो गोविंद से सबध न जोडकर अन्य सासारिक प्राणियो से सबध जोडता है उसकी स्थिति उस अधे की सी है जो अधे के हाथ मे अपना हाथ देकर भ्रम और विषय-वासना के बीहड वन मे भटकता रहता है,[3] जो भक्ति-भाव विरहित-कर्म करता है वह पृथ्वी पर सर्प की तरह भार ढोता रहता है[4] और जो वेदादि के सार तत्वो का पठन-पाठन न कर अन्य जजालो मे फसा रहता है वह चावल-कणो को छोडकर पूए की पोटली बाधे फिरता है।[5] कवि की भक्ति-भावना का 'केनवास' इतना व्यापक और लचीला है कि उसे सर्वत्र 'कृष्ण' ही 'कृष्ण' छाया हुआ दिखाई देता है। वेदार्थ के बिना विद्या, विद्या नही,[6] पुरुषोतम के बिना पद, पद नही,[7] करुणामय कृष्ण के बिना राग, राग नही,[8]

१—हितकारि चड सभालि हरि, काया पखाले काइ।
जा लग राइण क्रुलिय जिम, मन कडबा तन माहि ॥१॥

२—लोच सिरि करै हुवै एक लोका, मूरखि एक रहै ग्रहि मूनि।
परिहरि गुण निधान कमलापति, सूना एक आराधे सूनि ॥५॥

३—सभ्रमच जाइ गोव्यद सरिसन, साभै क्रिया अवर सनवध।
भ्रमताई विषै सहाग्नि भूला, आधे पाणि विलागौ अध ॥४॥

४—पूरी करै चकनौली पाखड, क्रुस्न विणा प्राभे करम।
भुवग हुवै साभता भुवगम, भार वहै पडियौ भरम ॥ ॥

५—वेद सारतत अरथ न वाचै, जपे कलपै अवर अजाल।
कण चावल छोडै ताइ कविता, पोटल वाधे क्रिथा पराल ॥१४॥

६—कला चतुरदस वहुतरि सुकला, नटवर निरति निवे डगनाद।
वेद अरथ विण वदै जु विद्या, विद्या ताइ अविद्या वाद ॥२०॥

७—राग सुवध ताल गति रचना, सुघडाई दाखै सवद।
पद जाइ कहै विणा परपोतम, पद तिणि न हुवै परमपद ॥२२॥

८—राग छत्रीस अनेक रागणी, वमै सपत सुर सुधउ विभाग।
करै ज राग विणा करणामै, रग उपजै नही तिणि राग ॥२३॥

नरहर के रूप-निरूपण के बिना रूपक, रूपक नही,[1] गोविन्द के बिना गीत, गीत नही,[2] दामोदर के बिना दोहा, दोहा नही,[3] कमलापति के बिना कविता, कविता नही,[4] रसिक बिहारी कृष्ण के बिना रास, रास नही,[5] वनमाली के बिना वेलि, वेलि नही,[6] नारायण के बिना निगम, निगम नही,[7] अत जो व्यक्ति बिना कृष्ण-भावना के कर्म करता है वह मानो करण बाहर निकाल कर तूप कूटता है, श्रेष्ठ पति को छोडकर (उसकी आत्मा मानो) पर पुरुष के साथ व्यभिचार करता है[8] और अज्ञानी बनकर आत्मघात करता है।[9] ऐसा समझकर यदि कोई अपना भला करना चाहे तो साधु-वचनो का पालन करे। यह निश्चित है कि कृष्णोपासना के बिना किसी का निस्तार नही होने वाला है। क्योकि कृष्ण ही वह महान स्रोत है जो चतुर्भुजा के रूप मे चारो पदार्थो-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-का दाता है।[10] कवि अत मे अपने मन को उपदेश देता है कि हे मन! तू मान जा और कृष्ण की उपासना कर, अपनी जीभ को समझाता है कि हे जीभ! तू निरन्तर कृष्ण, कृष्ण का जाप कर, इसी मे जीवन की सफलता और सार्थकता निहित है।[11]

१—चित च्यतवण करै चौरासी, आखर छद उपमा अनूप।
नरहर विणा ज रूप निरुपै, रूपकवध तिणि न रहै रूप ॥२४॥

२—साणोर प्रहाम दूण दौढा मुज, चतुर सुवाणि केलवण चीत।
गीत गोव्यद विणा गाइज्यै, गति वाहिरा सु कहिजै गीत ॥२५॥

३—स्यघू पाडगति ठाह सोरठिया, रैदह पूर्व छयल रुख।
दूहा कहै विणा दामोदर, दूहेत्या प्रामिजै दुख ॥ २६ ॥

४—कमल व्याल छत्रवध कुडलिया, सहित जाति बावीस महि।
कवित्त जु कहै विणा कमलापति, कवित सवित वाहिरा कहि ॥ २७ ॥

५—मूढ तजै गुण अवगुण मानै, दूहा जायें त्रिपै विलासि।
कहैज रासा रसिक विण कविता, रस उपजै नही तिणि रासि ॥ २६ ॥

६—डीरघ लघ पर तजै दुवाला, समि वचनै मेलै सकेलि।
वेलिज कहै विणा वनमाली, विपमे फल लागै तिण वेलि ॥ ३० ॥

७—निगम सार परहरि नाराइण, अनरथ सभ्रम वदै असेस।
कण वाहिरा ताइ तुप कूटै, कीयौ ज क्यू ऊवरै कलेस ॥३१॥

८—वर आपरौ तजै विभचारी, विढवै ताइ अढवि विपरीति ॥३३॥

९—अन्न आतमा क्रिस्न नह श्रेवै, आतमघाती तिकै अयाण ॥ ३४ ॥

१०—धरम अरथनै काम मोपे 'धू', दान प्रवाह जास दरवारि।
हरि पद भजता लाभै हरिपद, क्षत्रभुज भुजै पदारथ च्यारि ॥ ३८ ॥

११—मैं मन कु उपदेस मनाऊ, मानि मानि रे मानि मन।
रमिसि राम गोयद गुण रसना, क्रिस्न क्रिस्न कहि कहि क्रिस्न ॥ ४० ॥
नही नही दूजौ निस्तारौ, निस्तारौ नरहर तूव नाम।
चरण कमल रज मागै चौडो, साध समागम मागै स्याम ॥ ४१ ॥

पिता थे। पृथ्वीराज ने अपनी 'वेलि' के लिए चूडौजी से सम्मति न मागकर माधोदास से मागी। इससे अनुमान है कि वेलि के रचना-काल के समय चूडौजी इस लोक से प्रस्थान कर चुके थे। अत चाणिक वेलि को पृथ्वीराज की वेलि से पूर्व की रचना (अर्थात् १७वी शती का प्रारभ) मानना ही अधिक समीचीन होगा।

रचना-विषय

प्रस्तुत वेलि ४१ छदो की रचना है। इसमे चूडौजी का हृदय भक्तिभाव से भरकर फूट पडा है। उनमे भक्ति की वह अतल गहराई है जिसके आगे बाह्य क्रिया-काड निरर्थक एव निर्मूल है।[1] कवि की वाणी एक ओर सिर का मुडन कर मौन-व्रत धारण कर शून्य-गुफा मे बैठकर प्राणायाम करने वाले निर्गुणोपासक साधक की धज्जिया उडाती है[2] तो दूसरी ओर कृष्ण की-जीवन और जगत की प्रत्येक सम्पर्कित वस्तु मे—अनुभूति कर निरन्तर उनका जाप करने वाले उपासक की मगल-सिद्धि का उद्घोष करती है। उसकी दृष्टि मे जो गोविंद से सबध न जोडकर अन्य सासारिक प्राणियो से सबध जोडता है उसकी स्थिति उस अधे की सी है जो अधे के हाथ मे अपना हाथ देकर भ्रम और विषय-वासना के बीहड वन मे भटकता रहता है,[3] जो भक्ति-भाव विरहित-कर्म करता है वह पृथ्वी पर सर्प की तरह भार ढोता रहता है[4] और जो वेदादि के सार तत्वो का पठन-पाठन न कर अन्य जजालो मे फसा रहता है वह चावल-कणो को छोडकर पूए की पोटली बाधे फिरता है।[5] कवि की भक्ति-भावना का 'केनवास' इतना व्यापक और लचीला है कि उसे सर्वत्र 'कृष्ण' ही 'कृष्ण' छाया हुआ दिखाई देता है। वेदार्थ के बिना विद्या, विद्या नही,[6] पुरुषोतम के बिना पद, पद नही,[7] करुणामय कृष्ण के बिना राग, राग नही,[8]

१—हितकारि चड सभालि हरि, काया पखालै काइ।
जा लग राइण कुलिय जिम, मन कडवा तन माहि ॥१॥

२—लोच सिरि करै हुवै एक लोका, मूरखि एक रहै ग्रहि मूनि।
परिहरि गुण निधान कमलापति, सूना एक आराधे सूनि ॥५॥

३—सग्रमच जाइ गोव्यद सरिमन, साभै व्रिथा अवर सनबध।
भ्रमताई विषै सहावनि भूला, आधे पाणि विलागो अध ॥४॥

४—पूरी करै चकनौली पाखड, क्रस्न विणा प्राभे करम।
भुयग हुवै साभता भुवगम, भार वहै पडियौ भरम ॥ ॥

५—वेद सारतत अरथ न वाचै, जपे कलपै अवर अजाल।
कण चावल छौडै ताइ कविता, पोटल बाधे व्रिथा पराल ॥१४॥

६—कला चतुरदम वहुतरि सुकला, नटवर निरति निवे डगनाद।
वेद अरथ विण वदै जु विद्या, विद्या ताइ अविधा वाद ॥२०॥

७—राग सुवध ताल गति रचना, सुधडाई दाखै सवद।
पद जाइ कहै विणा परपोतम, पद तिणि न हुवै परमपद ॥२२॥

८—राग अओस अनेक रागणी, वसै सपत सुर सुधउ विभाग।
करै ज राग विणा करणामै, रग उपजै नही तिणि राग ॥२३॥

नरहर के रूप-निरूपण के बिना रूपक, रूपक नही,[1] गोविन्द के बिना गीत, गीत नही,[2] दामोदर के बिना दोहा, दोहा नही,[3] कमलापति के बिना कविता, कविता नही,[4] रसिक बिहारी कृष्ण के बिना रास, रास नही,[5] वनमाली के बिना वेलि, वेलि नही,[6] नारायण के बिना निगम, निगम नही,[7] अत जो व्यक्ति बिना कृष्ण-भावना के कर्म करता है वह मानो कण बाहर निकाल कर तूप कूटता है, श्रेष्ठ पति को छोडकर (उसकी आत्मा मानो) पर पुरुष के साथ व्यभिचार करता है[8] और अज्ञानी बनकर आत्मघात करता है।[9] ऐसा समझकर यदि कोई अपना भला करना चाहे तो साधु-वचनो का पालन करे। यह निश्चित है कि कृष्णोपासना के बिना किसी का निस्तार नही होने वाला है। क्योकि कृष्ण ही वह महान स्रोत है जो चतुर्भुजा के रूप मे चारो पदार्थो-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-का दाता है।[10] कवि अत मे अपने मन को उपदेश देता है कि हे मन! तू मान जा और कृष्ण की उपासना कर, अपनी जीभ को समझाता है कि हे जीभ! तू निरन्तर कृष्ण, कृष्ण का जाप कर, इसी मे जीवन की सफलता और सार्थकता निहित है।[11]

१—चित चवतवण करै चौरासी, आखर छद उपमा अनूप।
नरहर विणा ज रूप निरुपै, रूपकबध तिणि न रहै रूप ॥२४॥

२—साणोर प्रहास दू ण दौढा सुज, चतुर सुवाणि केलवण चीत।
गीत गोव्यद विणा गाइज्यै, गति बाहिरा सु कहिजै गीत ॥२५॥

३—स्यघू पाडगति ठाह सोरठिया, रैदह पूर्व छयल रूख।
दूहा कहै विणा दामोदर, दूहेत्या प्रामिजै दुख ॥ २६ ॥

४—कमल व्याल छत्रवध कु डलिया, महित जाति बावीस महि।
कवित्त जु कहै विणा कमलापति, कवित सवित बाहिरा कहि ॥ २७ ॥

५—मू ढ तजै गुण अवगुण मानै, दूहा जायें विषै विलासि।
कहैज रासा रसिक विण कविता, रस उपजै नही तिणि रासि ॥ २९ ॥

६—डीरघ लघ पर तजै दुआला, समि वचनै मेलै सकेलि।
वेलिज कहै विणा वनमाली, विषमे फल लागै तिण वेलि ॥ ३० ॥

७—निगम सार परहरि नाराइण, अनरथ सभ्रम बदै अमेस।
कण बाहिरा ताइ तुप कूटै, कीयौ ज क्यू ऊवरै कलेस ॥३१॥

८—वर आपरौ तजै विभचारी, विढवै ताइ अढवि विपरीति ॥३३॥

९—अब आतमा क्रिस्न नह अवै, आतमघाती तिके अयाण ॥ ३४ ॥

१०—धरम अरथनै काम मोखे 'घू', दान प्रवाह जास दरबारि।
हरि पद भजता लाभै हरिपद, क्षत्रभुज भुजै पदारथ च्यारि ॥ ३८ ॥

११—मैं मन कु उपदेस मनाऊ, मानि मानि रे मानि मन।
रमिसि राम गोयद गुण रसना, क्रिस्न क्रिस्न कहि कहि क्रिस्न ॥ ४० ॥
नही नही दूजौ निस्तारौ, निस्तारौ नरहर तूव नाम।
चरण कमल रज मागै चोडो, साध समागम मागै स्याम ॥ ४१ ॥

कलापक्ष :

इस वेलि का कलापक्ष निखरा हुआ है। कवि लोक--शास्त्र और छद-शास्त्र का ज्ञाता है। काव्य मे प्रयुक्त विभिन्न छन्दो, कलाओ एव उनके भेदोपभेदो के उल्लेख मे इस कथन की पुष्टि होती है। कवि की दृष्टि मे पिंगल (ब्रज) की अपेक्षा डिंगल अधिक सरस और प्रभावोत्पादक है–

निज प्पगल रह विणा नाराइण, चतुराई दाखवै चवि।
भाषा विचित्र सुभलाभलेरा, कविताइ मानेवा कुकवि ।।१६।।

वयणसगाई का प्रयोग सर्वत्र हुआ है। उसके साधारण और असाधारण दोनो भेद देखे जा सकते है–

साधारण

(१) इदीवर पद वि*णा* उपासिक (३)
(२) काई बाइस तीरथ तकत (११)
(३) *जोग ज्याग जप तप* तीरथ *व्रत* (६)

असाधारण :

(१) *साध* वचन मानौ *सह* कोई (३६)

अन्य अलकारो मे यमक, उपमा और स्वभावोक्ति का प्रयोग हुआ है–

यमक :

(१) विण उतिम *सिरलोक* वारता, सिर बाहिरा कहै *सिरलोक* (१६)
(२) पद जाइ कहै विणा परसोतम, पदतिणि न हुवै परम *पद* (२२)

उपमा :

जा लग राइण कुलिय जिम, मन कडवा तन माहि (१)

स्वभावोक्ति :

कण चावल छोडै ताइ कविता, पोटल बाधे व्रिथा पराल (१४)

छन्द :

छोटेसाणोर के एक भेद खुडद साणोर का प्रयोग हुआ है।

उदाहरण :

अमरण सरण पनित पावन अनि, परसोतम ताहरो पुण।
मै अनाथ अघसदन हरितम्रित, गिणू भरोसौ तूझ गुण ।।३६।।

वेलि के प्रारम्भ मे एक दोहा आया है–

हित करि चण्ड सँभालि हरि, काया पखालै काइ।
जा लग राइण कुलिय जिम, मन कडवा तन माहि ।।

(३) क्रिसन रुक्मणी री वेलि[1]

राजस्थानी-साहित्य मे जो वेलि काव्य की परम्परा चली उसमे पृथ्वीराज कृत 'क्रिसन रुक्मणी री वेलि' ने मूर्धन्य स्थान प्राप्त किया है। यह महृदय रसिको का हार, भावुक भक्तो की माला और पडितो की कसौटी रही है। कही इमे 'अमृत वल्वी[2], कहकर अमृत की तरह फलवती, कही 'गुण वेलि' [3] कहकर भगवान के गुण-कीर्तन की अक्षय निधि और कही 'मङ्गल'[4] कहकर सर्व कामनाओ को पूर्ण करने वाली बतलाया गया है।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता राठौड पृथ्वीराज उस युग की देन हैं जब भक्ति-काल और रीतिकाल आख-मिचौनी खेल रहे थे। बीकानेर के राठौड राज-वश मे सवत १६०६

१—(क) मूल पाठ मे 'वेलि' नाम कई जगह आया है। देखिये छद स० २७८-८४, २८६-८८, २९०-९४, २९६, २९८।

(ख) प्रति-परिचय —इसकी कई हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती है।
७४ प्रतियो का विवरण राजस्थान भारती (पृथ्वीराज विशेपाक भाग ७ अ क १-२, नवम्बर, १९६०) के परिशिष्ट पृ० १८१-९० मे दिया गया है।

(ग) विभिन्न विद्वानो द्वारा अब तक इमके निम्नलिखित ६ सपादित सस्करण निकल चुके है—

(१) डा० एल० पी० टैसीटोरी द्वारा सपादित एशियाटिक सोसाइटी ओफ बगाल का सस्करण, सन् १९१९

(२) ठाकुर रामसिंह व सूर्यकरण पारीक द्वारा सपादित हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग का सस्करण सन् १९३१

(३) प्रो० नरोत्तमदास स्वामी द्वारा सपादित श्री राममेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा का सस्करण, सन् १९५३

(४) डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित द्वारा सपादित विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर का सस्करण सन् १९५३

(५) कृष्णशकर शुक्ल द्वारा सपादित साहित्य निकेतन, कानपुर का सस्करण, सन् १९५४

(६) नटवरलाल इच्छाराम देसाई द्वारा सपादिन फार्वस गुजराती सभा, बम्बई का गुजराती सस्करण, सन् १९५५

२—मुनिकातिसागर जी की स० १७७६ के आसपास की प्रति। पुष्पिका मे लिखा है 'इति श्री रावराज पृथ्वीराज कृत अमृतवल्ली समाप्त'

३—उन्ही की स० १७८५ की प्रति-प्रारभ-'पृथ्वीराजकृत गुण वेलि लिख्यते'

४—मुखि कहि क्रिसन-रुक्मणी-मगल, काइ रे मन। कलपसि क्रिपण ॥२८९॥

मिगसर वदि १ को इनका जन्म हुआ था। ये राव जैतसी के पौत्र, राव कल्याण-मल के पुत्र और महाराजा रायसिंह के छोटे भाई थे। डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल ने इनको महाराजा जयसिंह का छोटा भाई बतलाया है[1] जो गलत है। सभवत रायसिंह का जयसिंह छप गया है।

डा० मोतीलाल मेनरिया[2] और डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित[3] ने पृथ्वीराज के अन्तिम दो विवाहो की चर्चा की है जबकि नरोत्तमदास स्वामी[4] और डा० हीरालाल माहेश्वरी[5] ने तीन विवाहो का उल्लेख किया है–

(१) उदयपुर के महाराणा उदयसिंह की पुत्री किरणमयी के साथ
(२) जैसलमेर के महारावल हरराज की पुत्री लालादे के साथ
(३) लालादे की मृत्यु के बाद उसकी छोटी बहिन चापादे[6] के साथ।

पृथ्वीराज बडे वीर, विष्णु के परम भक्त और उच्चकोटि के कवि थे। कर्नल टॉड ने इनके वीर व्यक्तित्व की प्रशसा की है[7]। साम्राज्य के अनेक युद्धो मे इन्होने भाग लिया था। स० १६३८ की मिर्जा हकीम के साथ की काबुल की लडाई[8] और स० १६५३ की अहमदनगर की लडाइयो मे ये शाही–सेना के साथ थे। इनकी वीरता के पुरस्कार मे सम्राट ने इन्हे गागरोनगढ का दुर्ग जागीर मे दिया था[9]।

१—अकबरी दरबार के हिन्दी–कवि पृ० ४१
२—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १६२
३—स्व सम्पादित वेलि पृ० १८
४—स्व सम्पादित वेलि पृ० २४
५—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १५२
६—चापादे स्वय अच्छी कवयित्री थी। उसके और पृथ्वीराज के सम्बन्ध की अनेक आख्यायिकाएँ प्रसिद्ध है। जरा–प्रसग को लेकर निम्नलिखित पद्य लोक–प्रचलित है–

पीथल धौला आविया, बहुली लग्गी खोड।
पूरै जोवन पदमणी, ऊभी मुक्ख मरोड॥

प्यारी कहै पीथल सुणो, धोला दिस मत जोय।
नरा नाहरा डिगमरा, पाक्या ही रस होय॥

७—'प्रिथीराज वाज वन ओफ द मोस्ट गेलेन्ट चिफटेन्स ओफ द एज, एण्ड लाइक द ट्रुवेडर प्रिन्सेज ओफ द वेस्ट, कुड ग्रेस ए काज वीथ द सोल-इन्सपायरिंग इफ्यूजन्स ओफ द म्यूज, एज वेल एज एड इट वीथ हिज स्वोर्ड, मे इन एन एसेम्बली ओफ द वार्डस् ओफ राजस्थान द पाम ओफ मेरिट वाज यूनेनिमसली अवरडेड टू द राठौर केवेलिअर'–राजस्थान जि० १, पृ० ३६६।
८—बेवरिज, अकबरनामा (अ ग्रे जी अनुवाद) जि० ३ पृ० ५१८
९—नैणसी की ख्यात भाग १ पृ० १८८

पृथ्वीराज की प्रतिभा से सम्राट अकबर इनकी ओर आकर्षित हुआ और वह इन्हे अपने पास रखने लगा। सम्राट के दरबारियो मे इनका बडा सम्मान था[1]। ये अकबरी दरबार के नौ रत्नो मे से थे। सम्राट इन्हे बहुत चाहता था[2]।

पृथ्वीराज का देहान्त स० १६५७ मे मथुरा के विश्रात घाट पर हुआ। इनके वशज अभी तक विद्यमान है और पृथ्वीराजोत बीका कहलाते है। इनका प्रमुख ठिकाना आजकल ददरेवा है।

यद्यपि परिस्थितिवश पृथ्वीराज को अकबर की सेवा स्वीकार करने के लिए विवश होना पडा तथापि इनकी स्वाधीन आत्मा को यह परवशता बराबर अखरती रही। देश की स्वतन्त्रता के लिए मर मिटने वाले वीरो के प्रति इस कवि के हृदय मे सम्मान का भाव था। प्राणो को हथेली पर लेकर वन-वन घूमने वाले आजादी के दीवाने महाराणा प्रताप कवि के श्रद्धा-पात्र थे। जब परिस्थितियो ने महाराणा को भी सम्राट से सधि-याचना करने के लिए विवश कर दिया तो पृथ्वीराज का हृदय क्षोभ से भरगया। राजस्थान की स्वतन्त्रता के अन्तिम आशा-दीप को बुझने से बचाने के लिए इस कवि का विस्फोटक व्यक्तित्व पत्र के रूप मे फूट पडा[3]। कौन नही जानता कि पृथ्वीराज की ओजस्वी वाणी ने प्रताप का 'प्रताप' बनाये रखा[4]।

१—बीकानेर राज्य का इतिहास प्रथम खड गौ० ही० ओझा, पृ० १५७

२—पृथ्वीराज की मृत्यु पर अकबर ने निम्नलिखित दोहा कहा था—

पीथल सू मजलिस गई, तानसेन सू राग।
रीझ बोल हसि खेलबो, गयो बीरबल साथ॥

३—पृथ्वीराज ने महाराजा को जो पत्र लिखा था उसमे ये सोरठे थे—

पातल जो 'पतसाह', बोलै मुख-हू ता वयण।
मिहर पछम दिस माह, ऊगै कासप राव-उत॥
पटकू मू छा पाण, कै पटकू निज तन करद।
दीजै लिख दीवाण, इण दो महली बात इक॥

महाराणा प्रताप ने उत्तर मे निम्नलिखित दोहे भेजे थे—

तुरक कहासी मुख पतै, इण तन-सू इकलग।
ऊगे ज्याही ऊगसी, प्राची बीच पतग॥
कुसी हू त पीथल कमध। पटको मू छा पाण।
पछटण है जैते पतो, कलमा सिर केवाण॥
साग मू ड सहसी स-को, सम-जस जहर-सवाद।
भट पीथल। जीतो भला वयण तुरक-सू वाद॥

४—बीकानेर के स्थानीय साप्ताहिक पत्र 'सेनानी' के ४ जनवरी, १९५८ के अक मे स्व० प्रो० चद्रदेव शर्मा तथा मुकनसिंह ने 'एक तत्त्वान्वेषी' नाम से 'क्या डिंगल कवि पृथ्वीराज अकबर के दरबारी थे ?' शीर्षक लेख लिखकर पृथ्वीराज के अकबरी दरबार के

दरबारी होते हुए भी पृथ्वीराज निर्भीक और स्पष्ट वक्ता थे। अकबर के दरबार मे रहकर भी ये सम्राट के परम शत्रु महाराणा प्रताप के त्याग, शौर्य एव निष्ठा के गीत गाते रहे। अकबर की अधीनता स्वीकार करने वाले राजस्थानी राजाओ को–यहाँ तक कि अपने बडे भाई बीकानेर नरेश महाराजा रायसिंह को भी–इन्होने खूब ही फटकारा[1]।

पृथ्वीराज का डिंगल और पिंगल (ब्रज–भाषा) दोनो भाषाओ पर समान अधिकार था। डिंगल मे लिखी हुई 'क्रिसन–रुक्मणी री वेलि' तो उनकी सर्व-प्रमुख कृति है ही। इसके अतिरिक्त फुटकर गीतो और पद्यो के रूप मे इनकी बहुत सी रचनाएँ मिलती है। पद्यात्मक रचनाएँ प्रधानतया दूहा छन्द मे है पर ब्रजभाषा मे लिखी हुई रचनाएँ घनाक्षरी और छप्पय छन्दो मे है। इनकी प्रमुख ज्ञात रचनाओ का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है[2]–

(१) ठाकुरजी–रा दूहा –इनकी सख्या २१५ के लगभग है। इनमे ५० भगवान राम मे और १६५ भगवान कृष्ण से सम्बन्ध रखते है। राम वाले दूहो के अन्त मे दशरथ–राव–उत और कृष्ण वाले दूहो के अन्त मे वसदे–राव–उत शब्द आता है। ये दूहे विनय–प्रधान है।

(२) गगाजी–रा दूहा –इनकी सख्या ७८ के लगभग है। ये तीन प्रकार के है। कुछ के अन्त मे भागीरथी, कुछ के अन्त मे जान्हवी और कुछ के अन्त मे मदाकिनी शब्द आता है। इनमे गङ्गा की महिमा का वर्णन है।

(३) महाराणा प्रताप–रा दूहा –ये महाराणा प्रताप की प्रशसा मे लिखे गये है।

(४) प्रकीर्णक दूहे –ये विविध विषयो पर लिखे गये है पर प्रधानता भक्ति, नीति और वैराग्य की है।

रहने तथा महाराणा प्रताप को उनके पत्र लिखने की मान्यता को मिथ्या बतलाया है। इसके प्रत्युत्तर मे उसी पत्र के २७ जनवरी व ८ फरवरी १९५८ के अको मे अगरचद नाहटा ने 'हा! पृथ्वीराज अकबर-दरबार मे थे' शीर्षक लेख लिखा है। इतिहासज्ञो को इस ओर विचार करना चाहिए।

१—ही वाज एन एडमायरर ओफ करेज एण्ड अनबेन्डिग डिगनिटि एण्ड ए स्वोर्न एनिमी ओफ सरविलिटी एण्ड क्रिंजिग मेन्टेलिटि। वीथ दी सेम फीयरलेसनेस वीथ वीच ही वुड फुलफील ए वोव इन द प्रेजेन्स ओफ एन एक्ट ओफ गेलेन्टरी अर ओफ डिटरमिनेशन डिस्प्लेड बाइ ए फ्रेंड अर बाय ए फो, ही वुड कन्डेम इन वर्स हिज ओवन ब्रदर, द राजा ओफ बीकानेर अर इवन द आल पावरफुल अकबर फोर एनी एक्ट ओफ इन्जस्टिस कमिटेड बाय देम—टैसीटोरी वेलि का इन्ट्रोडक्शन।

२—क्रिसन रुकमणी री वेलि नरोत्तमदास स्वामी प्रस्तावना, पृ० २७-२८

(५) प्रकीर्णक गीत —ये भी विविध–विषयो मे सम्बन्ध रखते है। कुछ भक्ति और वैराग्य–परक है, कुछ शृ गार रसात्मक पर अधिकाश ऐतिहासिक है।

(६) नख–शिख —यह रचना पिंगल भाषा की है। इसमे छप्पय छन्द मे (जिसे राजस्थानी मे कवित्त कहते हैं) राधा–कृष्ण का नख–शिख शृ गार वर्णित है।

इनके अतिरिक्त मिश्रबन्धुओ[1] ने 'प्रेम दीपिका' का तथा डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल[2] ने 'श्यामलता' का उल्लेख किया है। पर ये दोनो कृतियाँ सदेहास्पद है।

कवि की लोकप्रियता और 'वेलि' की प्रसिद्धि :

तुलसी और बिहारी की तरह पृथ्वीराज भक्तो और आलोचको के प्रिय बन गये थे। उनके जीवन–काल मे ही वेलि को प्रसिद्धि मिल चुकी थी। व्यक्तित्व और कृतित्व सम्बन्धी इस लोक–प्रसिद्धि के निम्नलिखित स्वरूप सामने आते है—

(१) *समकालीन कवियों की दृष्टि* :

समकालीन कवियो ने पृथ्वीराज और उनकी वेलि पर प्रशसात्मक पद्य लिखे है। आढा दुरसा ने वेलि को पाँचवा वेद और उन्नीसवाँ पुराण बतलाया[3] तो साया झूला ने अमृत वेलि[4]। मोहनराम ने पृथ्वीराज पर गीत

१—मिश्रबधु विनोद प्रथम भाग, पृ० २८३

२—अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृ० ४२।

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता मे भी इस रचना का उल्लेख हुआ है। सभव है जिस प्रकार राजस्थानी मे उन्होने वेलि की रचना की उसी प्रकार ब्रजभाषा मे श्याम लता की भी रचना की हो। पर जब तक इसकी प्रति प्राप्त नही हो जाती तब तक इस सबध मे कुछ भी नही कहा जा सकता।

३—रुकमणि गुण लखण रूप गुण रचवण, वेलि तास कुण करै वखाण।
पाचमौ वेद भाखियौ पीथल, पुणियौ उगणीसमौ पुराण ॥१॥
केवल भगत अथाह कलावत, तैं जु क्रिसन-श्री गुण तवियौ।
चिहु पाचमौ वेद चालवियौ, नव दूणाम गति नीगमियौ ॥२॥
मैं कहियौ हरभगत प्रिथीमल, अगम अगोचर अति अचड।
व्यास तणा भाखिया समोवड, ब्रह्म तणा भाखिया वड ॥३॥

४—वेद बीज जलवयण, सुकवि जड मडी सघर।
पत दुहा गुण पुहप, वास भोग वड लिखमीवर।
पसरी दीप प्रदीप, अधिक गहिर ई आडम्बर।
जे जपई मन सुधि, अब फल पामै अ तर।
विस्तार कीध जुग २ विमल, धणी क्रिसन कहिणार धन।
अमृत वेलि पीथल अचल, तई रोपी किल्याण तन ॥१॥

लिखा[1] तो नाभादास ने 'भक्तमाल' मे उनको नर और देव दोनो भाषाओ मे निपुण कविराज बताकर (सवैया, श्लोक, गीत, वेलि, दोहा के रूप मे) ९ रसो के काव्य का निर्माता कहा[2]।

मुन्शी देवीप्रसाद के अनुसार कुछ ईर्ष्यालु लोगो को वेलि से डाह भी हुई[3]। उन्होने इसकी प्रामाणिकता को सन्देह की दृष्टि से देखा, अत निर्णय के लिये तत्कालीन चार प्रसिद्ध चारण कवियो–दुरसा आढा, सादूमाला, केसोदास गाडण और माधोदास दधवाडिया–को चुना गया। इसमे से प्रथम दो ने पृथ्वीराज के विपक्ष मे और अन्तिम दो ने पक्ष मे सम्मति दी। इस पर पृथ्वीराज ने प्रथम दो के विषय मे एक दोहा[4] और गाडण[5] तथा दधवाडिया[6] की प्रशसा मे एक–एक

१—रुकमणी तणी वेलि पृथीमल रची, उदधि वास कीधौ उदरि।
वुधि जगमुख बोलिवै विदुखा, पुरिणया वाइक व्यास परि ।।१।।
श्रवणे ब्रह्म सवद तको सचरियौ, नयण अरक इ द उभै निवास।
हरि कर मौलि ध्यान हरि समहरि, अवलि दीपवै तणौ उजास ।।२।।
विम जाणग ब्रह्म उकति ताइ वधी, वाहु हणू भणिया तौ बीर।
रुति खट अ गि उरमा सु रत्ती, धरणी अखिर मेर स धीर ।। ३ ।।
पटिवै गग प्रवाह प्रवाणी, सुणता अम्रित पान समथ।
माड प्रभू री माथ ग्रथ माखण, परगट कीधी लता ग्रथ ।। ४ ।।

अभयजैन ग्रथालय, बीकानेर की सवत १७०५ वाली प्रति मे वेलि के प्रारभ से पूर्व यह गीत लिखा हुआ है। अ त मे भी टीकाकार द्वारा पृथ्वीराज-प्रशस्ति लिखी गई है—

किनरा आगै वड कवी, पुण्या प्रभु जस पेस।
चौज ओपमा चातुरी, वकत्या ग्रथ आदेस ।।

नारायण तणी कव्या वड नीका, वाखाणण चौ करी विस्तार।
चौज कमध कवि चाढि ओपमा, नमो पीथ नित उकति अपार ।।

२—सवैया गीत श्लोक वेलि, दोहा गुन नव रस।
पिगल काव्य प्रमान विविध, विधि गायो हरिजस।
पर दुख विदुख श्लाघ्य, वचन रचना जु विचारै।
अरथ कवित्त निरमोल, सबै सारग उर धारै।
'रुक्मिनीलता' वरनन अनूप, वागीश वदन कल्याण सुव।
नर देव उभै भाषा निपुन, पृथ्वीराज कविराज हुव ।।१४०।।

३—राज रसनामृत, पृ० ८३

४—साई यारे मानिया काई कही न जाय।
ऊदै मानो ऊगनो गेहे दुरसा याय ।।

५—कैसो ग.रजनाय कवि, कैसो कियो चकार।
निरखर्षो रहा अमर, गाडण गुणा भडार ।।

६—च : चतभुज सेविसो, ततफल लागो तास।
चारण जीवो चार जुग, मरो न माधोदास ।।

दोहा कहा। लेकिन उनकी यह सारी डाह वेलि के काव्य-सौष्ठव से टकराकर चूर चूर हो गई[1]।

(२) *परवर्ती देशी-विदेशी विद्वानों द्वारा प्रशसा*

पृथ्वीराज की लोकप्रियता काल के प्रवाह के साथ बढ़ती गई। प्राचीन नवीन, देशी-विदेशी सभी विद्वानो ने इनकी मुक्तकठ से प्रशसा की। विदेशी विद्वानो मे डा० टैसीटोरी[2] ने इन्हे 'होरेस-इन-डिंगल' कहा तो कर्नल टाड[3] ने इनकी कविता मे दस सहस्त्र घोडो का बल बतलाया। देशी विद्वानो मे किसी को ये 'हिन्दी के भवभूति'[4] नजर आये तो किसी को इनकी उपमाएँ होमर[5], के समान लगी। नरोत्तमदास स्वामी ने घोषणा की 'भक्त लोग गीता और सहस्त्रनाम की भाति उसका (वेलि का) नित्य-पाठ करते आये हैं[6]।

(३) *व्यक्तित्व एव कृतित्व सम्बन्धी चमत्कारपूर्ण प्रसग*

अपने समय मे ही पृथ्वीराज अपने व्यक्तित्व एव कृतित्व (वेलि) के प्रभाव मे इतने प्रसिद्ध हो गये थे कि एक सिद्ध पुरुष की तरह उनके सम्बन्ध मे कई किवदन्तियाँ प्रचलित हो गई।

(क) *भक्ति-भावना सम्बन्धी*

(१) कहा जाता है कि ये अपने इष्टदेव की मानसी पूजा किया करते थे। उसी के प्रभाव से एक बार आगरे मे ही इन्होने बता दिया कि उसी समय बीकानेर मे इनके इष्टदेव की सवारी नगर-कीर्तन के लिए निकल रही थी[7]।

१—राजस्थानी भाषा और साहित्य डा० मोतीलाल मेनारिया, पृ० १७२

२—'द वेलि इज वन ओफ द मोस्ट फुलजेन्ट जैम्स इन द रिच माइन ओफ द राजस्थानी लिटरेच इज वन ओफ द मोस्ट परफेक्ट प्रोडक्शन ओफ द डिंगल लिटरेचर, ए मारवल ओफ पोइटिकल इनजेन्यूइटी, इन विच लाइक इन द ताज ओफ आगरा, इलेबोरेटनैस ओफ डिटेल इज कम्बाइण्ड वीथ सिम्पलीसिटी ओफ कन्सेपशन एण्ड एक्जक्विजिटनैस ओफ फीलिंग इज ग्लोरिफाइड इन इमेक्यूलेटनेस ओफ फोर्म द ग्रेट मेरिट ओफ द पौयम इज इन द कम्बिनेशन ओफ ए डिलाइटफुल जेन्यूइननेस एण्ड नेचरलनेस एण्ड नेचरलनेस ओफ एक्सप्रेशन वीथ, द मोस्ट रिगोरस इलेबोरेटनैस ओफ स्टाइल'—स्वसपादित वेलि इन्ट्रोडक्शन।

३—राजस्थान टाड।

४—क्रिसन रुक्मणी री वेलि सूर्यकरण पारीक, भूमिका।

५—राजस्थानी भाषा और साहित्य डा० मोतीलाल मेनारिया, पृ० १६७

६—क्रिसन रुक्मणी री वेलि प्रस्तावना, पृ० ३३

७—वेलि (हिन्दुस्तानी एकेडेमी) भूमिका, पृ० २८

लिखा[1] तो नाभादास ने 'भक्तमाल' मे उनको नर और देव दोनो भाषाओ मे निपुण कविराज बताकर (सवैया, श्लोक, गीत, वेलि, दोहा के रूप मे) ९ रसो के काव्य का निर्माता कहा[2]।

मुन्शी देवीप्रसाद के अनुसार कुछ ईर्ष्यालु लोगो को वेलि से डाह भी हुई[3]। उन्होने इसकी प्रामाणिकता को सन्देह की दृष्टि से देखा, अत निर्णय के लिये तत्कालीन चार प्रसिद्ध चारण कवियो–दुरसा आढा, सादूमाला, केसोदास गाडण और माधोदास दधवाडिया–को चुना गया। इसमे से प्रथम दो ने पृथ्वीराज के विपक्ष मे और अन्तिम दो ने पक्ष मे सम्मति दी। इस पर पृथ्वीराज ने प्रथम दो के विषय मे एक दोहा[4] और गाडण[5] तथा दधवाडिया[6] की प्रशसा मे एक-एक

१—रुकमणी तणी वेलि पृथीमल रची, उदधि वास कीधौ उदरि ।
बुधि जगमुख बोलिवै विदुखा, पुणिया वाइक व्यास परि ।।१।।
श्रवणे ब्रह्म सवद तको सचरियौ, नयण अरक इ द उभै निवान ।
हरि कर मौलि ध्यान हरि समहरि, अवलि दीपवै तणौ उजास ।।२।।
त्रिस जाणग ब्रह्म उकति ताइ बधी, बाहु हणू भणिया तौ वीर ।
रुति खट अ गि उरमा सु रत्ती, धरणी अखिर मेर स धीर ।। ३ ।।
पढिवै गग प्रवाह प्रवाणी, सुणता अम्रित पान समध ।
माड प्रभू री माथ ग्रथ मालण, परगट कीधी लता प्रथ ।। ४ ।।

अभयजैन ग्रथालय, बीकानेर की सवत १७०५ वाली प्रति मे वेलि के प्रारभ से पूर्व यह गीत लिखा हुआ है। अ त मे भी टीकाकार द्वारा पृथ्वीराज-प्रशस्ति लिखी गई है—

कितरा आगै वड कवी, पुण्या प्रभु जस पेस ।
चौज ओपमा चातुरी, बकत्या प्रथ आदेस ।।

नारायण तणौ कव्या वड नीका, वाखाणण चौ करी विस्तार ।
चौज कमध कवि चाढि ओपमा, नमो पीथ नित उकति अपार ।।

२—सवैया गीत श्लोक वेलि, दोहा गुन नव रस ।
पिंगल काव्य प्रमान विविध, विधि गायौ हरिजस ।
पर दुख विदुख शलाघ्य, वचन रचना जु विचारै ।
अरथ कवित्त निरमोल, सवै सारग उर धारै ।
'रुक्मिनीलता' वरनन अनूप, वागीश वदन कल्याण सुव ।
नर देव उभै भाषा निपुन, पृथ्वीराज कविराज हुव ।।१४०।।

३—राज रसनामृत, पृ० ४३

४—नाई वारे खालिया काई कही न जाय ।
ऊदे मालो ऊपनो मेहे दुरसा थाय ।।

५—केशो गोरखनाथ कवि, चेलो कियो चकार ।
सिधरूपी रहता शवद, गाडण गुणा भडार ।।

६—चू डे चत्रभुज सेवियो, ततफल लागो तास ।
चारण जीवो चार जुग, मरो न माधोदास ।।

पृथ्वीराज की प्रतिभा से सम्राट अकबर इनकी ओर आकर्षित हुआ और वह इन्हे अपने पास रखने लगा। सम्राट के दरबारियो मे इनका बडा सम्मान था[1]। ये अकबरी दरबार के नौ रत्नो मे से थे। सम्राट इन्हे बहुत चाहता था[2]।

पृथ्वीराज का देहान्त स० १६५७ मे मथुरा के विश्रात घाट पर हुआ। इनके वशज अभी तक विद्यमान है और पृथ्वीराजोत बीका कहलाते है। इनका प्रमुख ठिकाना आजकल ददरेवा है।

यद्यपि परिस्थितिवश पृथ्वीराज को अकबर की सेवा स्वीकार करने के लिए विवश होना पडा तथापि इनकी स्वाधीन आत्मा को यह परवशता बराबर अखरती रही। देश की स्वतन्त्रता के लिए मर मिटने वाले वीरो के प्रति इस कवि के हृदय मे सम्मान का भाव था। प्राणो को हथेली पर लेकर वन-वन घूमने वाले आजादी के दीवाने महाराणा प्रताप कवि के श्रद्धा-पात्र थे। जब परिस्थितियो ने महाराणा को भी सम्राट से सधि-याचना करने के लिए विवश कर दिया तो पृथ्वीराज का हृदय क्षोभ मे भरगया। राजस्थान की स्वतन्त्रता के अन्तिम आशा-दीप को बुझने से बचाने के लिए इस कवि का विस्फोटक व्यक्तित्व पत्र के रूप मे फूट पडा[3]। कौन नही जानता कि पृथ्वीराज की ओजस्वी वाणी ने प्रताप का 'प्रताप' बनाये रखा[4]।

१—बीकानेर राज्य का इतिहास प्रथम खड गौ० ही० ओझा, पृ० १५७

२—पृथ्वीराज की मृत्यु पर अकबर ने निम्नलिखित दोहा कहा था—

पीथल सू मजलिस गई, तानसेन सू राग।
रीझ बोल हसि खेलबो, गयो बीरबल साथ॥

३—पृथ्वीराज ने महाराणा को जो पत्र लिखा था उसमे ये सोरठे थे—

पातल जो 'पतसाह', बोलै मुख-हूता वयण।
मिहर पछम दिस माह, ऊगै कासप राव-उत॥
पटकू मूछा पाण, कै पटकू निज तन करद।
दीजै लिख दीवाण, इण दो महली बात इक॥

महाराणा प्रताप ने उत्तर मे निम्नलिखित दोहे भेजे थे—

तुरक कहासी मुख पतै, इण तन-सू इकलग।
ऊगे ज्याही ऊगसी, प्राची बीच पतग॥
कुसी हूत पीथल कमध। पटको मूछा पाण।
पछटण है जेते पतो, कलमा सिर केवाण॥
साग मूड सहसी स-को, सम-जस जहर-सवाद।
भड पीथल। जीतौ भला वयण तुरक-सू वाद॥

४—बीकानेर के स्थानीय साप्ताहिक पत्र 'सेनानी' के ४ जनवरी, १९५८ के अक मे स्व० प्रो० चद्रदेव शर्मा तथा सुकनसिंह ने 'एक तत्वान्वेषी' नाम से' क्या डिंगल कवि पृथ्वीराज अकबर के दरबारी थे ?' शीर्षक लेख लिखकर पृथ्वीराज के अकबरी दरबार के

मिगसर वदि १ को इनका जन्म हुआ था। ये राव जैतसी के पौत्र, राव कल्याण-मल के पुत्र और महाराजा रायसिंह के छोटे भाई थे। डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल ने इनको महाराजा जयसिंह का छोटा भाई बतलाया है[1] जो गलत है। सभवत रायसिंह का जयसिंह छप गया है।

डा० मोतीलाल मेनरिया[2] और डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित[3] ने पृथ्वीराज के अन्तिम दो विवाहो की चर्चा की है जबकि नरोत्तमदास स्वामी[4] और डा० हीरालाल माहेश्वरी[5] ने तीन विवाहो का उल्लेख किया है–

(१) उदयपुर के महाराणा उदयसिंह की पुत्री किरणमयी के साथ
(२) जैसलमेर के महारावल हरराज की पुत्री लालादे के साथ
(३) लालादे की मृत्यु के बाद उसकी छोटी बहिन चापादे[6] के साथ।

पृथ्वीराज बडे वीर, विष्णु के परम भक्त और उच्चकोटि के कवि थे। कर्नल टॉड ने इनके वीर व्यक्तित्व की प्रशसा की है[7]। साम्राज्य के अनेक युद्धो मे इन्होने भाग लिया था। स० १६३८ की मिर्जा हकीम के साथ की काबुल की लडाई[8] और स० १६५३ की अहमदनगर की लडाइयो मे ये शाही–सेना के साथ थे। इनकी वीरता के पुरस्कार मे सम्राट ने इन्हे गागरोनगढ का दुर्ग जागीर मे दिया था[9]।

१—अकबरी दरबार के हिन्दी–कवि पृ० ४१
२—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १६२
३—स्व सम्पादित वेलि पृ० १८
४—स्व सम्पादित वेलि पृ० २४
५—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १५२
६—चापादे स्वय अच्छी कवयित्री थी। उसके और पृथ्वीराज के सम्बन्ध की अनेक आख्यायिकाएँ प्रसिद्ध हैं। जरा–प्रसग को लेकर निम्नलिखित पद्य लोक–प्रचलित है–

पीथल धौला आविया, बहुली लग्गी खोड।
पूरै जौवन पदमणी, ऊभी मुक्ख मरोड ॥

प्यारी कहै पीथल सुणो, धोला दिस मत जोय।
नरा नाहरा डिगमरा, पाक्या ही रस होय ॥

७—'प्रिथीराज वाज वन ओफ द मोस्ट गेलेन्ट चिफटेन्स् ओफ द एज, एण्ड लाइक द ट्रुवेडर प्रिन्सेज ओफ द वेस्ट, कुड ग्रेस ए काज वीथ द सोल-इन्सपायरिंग इफ्जूजन्स ओफ द म्यूज, एज वेल एज एड इट वीथ हिज स्वोर्ड, मे इन एन एसेम्बली ओफ द बार्ड्स् ओफ राजस्थान द पाम ओफ मेरिट वाज यूनेनिमसली अवरडेड टू द राठौर केवेलिअर'– राजस्थान जि० १, पृ० ३९९।
८—बेवरिज, अकबरनामा (अग्रेजी अनुवाद) जि० ३ पृ० ५१८
९—नैणसी की ख्यात भाग १ पृ० १८८

दरबारी होते हुए भी पृथ्वीराज निर्भीक और स्पष्ट वक्ता थे। अकबर के दरबार मे रहकर भी ये सम्राट के परम शत्रु महाराणा प्रताप के त्याग, शौर्य एव निष्ठा के गीत गाते रहे। अकबर की अधीनता स्वीकार करने वाले राजस्थानी राजाओ को–यहाँ तक कि अपने बडे भाई बीकानेर नरेश महाराजा रायसिह को भी–इन्होने खूब ही फटकारा[1]।

पृथ्वीराज का डिंगल और पिगल (ब्रज–भाषा) दोनो भाषाओ पर समान अधिकार था। डिंगल मे लिखी हुई 'क्रिसन–रुक्मणी री वेलि' तो उनकी सर्व-प्रमुख कृति है ही। इसके अतिरिक्त फुटकर गीतो और पद्यो के रूप मे इनकी बहुत सी रचनाएँ मिलती है। पद्यात्मक रचनाएँ प्रधातया दूहा छन्द मे हैं पर ब्रजभाषा मे लिखी हुई रचनाएँ घनाक्षरी और छप्पय छन्दो मे हैं। इनकी प्रमुख ज्ञात रचनाओ का सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है[2]–

(१) ठाकुरजी–रा दूहा –इनकी सख्या २१५ के लगभग है। इनमे ५० भगवान राम से और १६५ भगवान कृष्ण से सम्बन्ध रखते है। राम वाले दूहो के अन्त मे दशरथ–राव–उत और कृष्ण वाले दूहो के अन्त मे वसदे–राव–उत शब्द आता है। ये दूहे विनय–प्रधान हैं।

(२) गगाजी–रा दूहा –इनकी सख्या ७८ के लगभग है। ये तीन प्रकार के हैं। कुछ के अन्त मे भागीरथी, कुछ के अन्त मे जान्हवी और कुछ के अन्त मे मदाकिनी शब्द आता है। इनमे गङ्गा की महिमा का वर्णन है।

(३) महाराणा प्रताप–रा दूहा –ये महाराणा प्रताप की प्रशसा मे लिखे गये है।

(४) प्रकीर्णक दूहे –ये विविध विषयो पर लिखे गये है पर प्रधानता भक्ति, नीति और वैराग्य की है।

कवि होने तथा महाराणा प्रताप को उनके पत्र लिखने की मान्यता को मिथ्या बतलाया है। इसके प्रत्युत्तर मे उसी पत्र के २७ जनवरी व ८ फरवरी १९५८ के अको मे अगरचद नाहटा ने 'हा! पृथ्वीराज अकबर-दरबार मे थे' शीर्षक लेख लिखा है। इतिहासज्ञो को इस ओर विचार करना चाहिए।

१—ही वाज एन एडमायरर ओफ करेज एण्ड अनबेन्डिग डिगनिटि एण्ड ए स्वोर्न एनिमी ओफ डिगरेडेशन एण्ड क्रिनिग सर्वेलिटि। वीथ दी सेम फ्रेसनेस वीथ वीच ही वुड कम्पोज ए सोग इन प्रेज ओफ एन एक्ट ओफ गेलेन्टरी अर ओफ डिटरमिनेशन परफोरमड् बाय ए फ्रेंड अर बाय ए फो, ही वुड कन्डेम इन वर्स हिज ओवन ब्रदर, द राजा ओफ बीकानेर, अर इवन द आल पावरफुल अकबर फोर एनी एक्ट ओफ इन्जस्टिस कमिटेड वाय देम—टैसीटोरी वेलि का इट्रोडक्शन।

२—क्रिसन रुक्मणी री वेलि नरोत्तमदास स्वामी प्रस्तावना, पृ० २७-२८

(५) प्रकीर्णक गीत –ये भी विविध–विषयो मे सम्बन्ध रखते है। कुछ भक्ति और वैराग्य–परक है, कुछ शृ गार रसात्मक पर अधिकाश ऐतिहासिक है।

(६) नख–शिख —यह रचना पिंगल भापा की है। इसमे छप्पय छन्द मे (जिसे राजस्थानी मे कवित्त कहते हैं) राधा–कृष्ण का नख–शिख शृ गार वर्णित है।

इनके अतिरिक्त मिश्रबन्धुओ[1] ने 'प्रेम दीपिका' का तथा डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल[2] ने 'श्यामलता' का उल्लेख किया है। पर ये दोनो कृतियाँ सदेहास्पद है।

कवि की लोकप्रियता और 'वेलि' की प्रसिद्धि :

तुलसी और बिहारी की तरह पृथ्वीराज भक्तो और आलोचको के प्रिय बन गये थे। उनके जीवन–काल मे ही वेलि को प्रसिद्धि मिल चुकी थी। व्यक्तित्व और कृतित्व सम्बन्धी इस लोक–प्रसिद्धि के निम्नलिखित स्वरूप सामने आते है—

(१) समकालीन कवियों की दृष्टि .

समकालीन कवियो ने पृथ्वीराज और उनकी वेलि पर प्रशसात्मक पद्य लिखे है। आढा दुरसा ने वेलि को पाँचवा वेद और उन्नीसवाँ पुराण बतलाया[3] तो साया भूला ने अमृत वेलि[4]। मोहनराम ने पृथ्वीराज पर गीत

१—मिश्रबधु विनोद प्रथम भाग, पृ० २८३

२—अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृ० ८२।
दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता मे भी इस रचना का उल्लेख हुआ है। सभव है जिस प्रकार राजस्थानी मे उन्होने वेलि की रचना की उसी प्रकार ब्रजभापा मे श्याम लता की भी रचना की हो। पर जब तक इसकी प्रति प्राप्त नही हो जाती तब तक इस सबध मे कुछ भी नही कहा जा सकता।

३—रुकमणि गुण लखण रूप गुण रचवण, वेलि तास कुण करै वखाण।
पाचमौ वेद भाखियौ पीथल, पुणियौ उगणीसमौ पुराण ॥१॥

केवल भगत अथाह कलावत, तैं जु क्रिसन-त्री गुण तवियौ।
चिहु पाचमौ वेद चालवियौ, नव दूणाम गति नीगमियौ ॥२॥

मैं कहियौ हरभगत प्रिथीमल, अगम अगोचर अति अचड।
व्यास तणा भाखिया समोवड, ब्रह्म तणा भाखिया वड ॥३॥

४—वेद बीज जलवयण, सुकवि जड मडी सधर।
पत दुहा गुण पुहप, वास भोग वइ लिखमीवर।
पसरी दीप प्रदीप, अधिक गहिर ई आडम्बर।
जे जपई मन सुधि, अब फल पामै अ तर।
विस्तार कीथ जुग २ विमल, धणी क्रिसन कहिणार धन।
अमृत वेलि पीथल अचल, तई रोपी कित्याण तन ॥१॥

लिखा[1] तो नाभादास ने 'भक्तमाल' मे उनको नर और देव दोनो भाषाओ मे निपुण कविराज बताकर (सवैया, श्लोक, गीत, वेलि, दोहा के रूप मे) ९ रसो के काव्य का निर्माता कहा[2]।

मुन्शी देवीप्रसाद के अनुसार कुछ ईर्ष्यालु लोगो को वेलि से डाह भी हुई[3]। उन्होने इसकी प्रामाणिकता को सन्देह की दृष्टि से देखा, अत निर्णय के लिये तत्कालीन चार प्रसिद्ध चारण कवियो–दुरसा आढा, सादूमाला, केसोदास गाडण और माधोदास दधवाडिया–को चुना गया। इसमे से प्रथम दो ने पृथ्वीराज के विपक्ष मे और अन्तिम दो ने पक्ष मे सम्मति दी। इस पर पृथ्वीराज ने प्रथम दो के विषय मे एक दोहा[4] और गाडण[5] तथा दधवाडिया[6] की प्रशसा मे एक-एक

१—रुकमणी तणी वेलि पृथीमल रची, उदधि वास कीधौ उदरि।
बुधि जगमुख बोलिवै विदुखा, पुणिया वाइक व्यास परि ॥१॥
श्रवणे ब्रह्म सबद तको सचरियौ, नयण अरक इ द उभै निवास।
हरि कर मौलि ध्यान हरि समहरि, अवलि दीपवै तणौ उजास ॥२॥
विस जाणग ब्रह्म उकति ताइ वधी, वाहु हणू भणिया तौ वीर।
रूति खट अ गि उरमा सु रत्ती, धरणी अखिर मेर स धीर ॥ ३ ॥
पढिवै गग प्रवाह प्रवाणी, सुणता अम्रित पान समथ।
माड प्रभू री माथ ग्रथ माखण, परगट कीधी लता प्रथ ॥ ४ ॥

अभयजैन ग्रथालय, बीकानेर की सवत १७०५ वाली प्रति मे वेलि के प्रारभ से पूर्व यह गीत लिखा हुआ है। अ त मे भी टीकाकार द्वारा पृथ्वीराज-प्रशस्ति लिखी गई है—

कितरा आगै वड कवी, पुण्या प्रभु जस पेस।
चौज ओपमा चातुरी, वकत्या प्रथ आदेस ॥

नारायण तणौ कव्या वड नीका, वाखाणण चौ करी विस्तार।
चौज कमध कवि चाढि ओपमा, नमो पीथ नित उकति अपार ॥

२—सवैया गीत श्लोक वेलि, दोहा गुन नव रस।
पिगल काव्य प्रमान विविध, विधि गायौ हरिजस।
पर दुख विदुख शलाध्य, वचन रचना जु विचारै।
अरथ कवित्त निरमोल, सवै सारग उर धारै।
'रुक्मिनीलता' वरनन अनूप, वागीश वदन कल्याण सुव।
नर देव उभै भाषा निपुन, पृथ्वीराज कविराज हुव ॥१४०॥

३—राज रसनामृत, पृ० ४३

४—आई वारे खालिया काई कही न जाय।
ऊदे मालो ऊपनो मेहे दुरसा थाय ॥

५—केशो गोरखनाथ कवि, चेलो कियो चकार।
सिधरूपी रहता शब्द, गाडण गुणा भडार ॥

६—चू डे चत्रभुज सेवियो, ततफल लागो तास।
चारण जीवो चार जुग, मरो न माधोदास ॥

दोहा कहा । लेकिन उनकी यह सारी डाह वेलि के काव्य-सौष्ठव से टकराकर चूर चूर हो गई[1] ।

(२) *परवर्ती देशी-विदेशी विद्वानों द्वारा प्रशसा*

पृथ्वीराज की लोकप्रियता काल के प्रवाह के साथ बढती गई । प्राचीन नवीन, देशी-विदेशी सभी विद्वानो ने इनकी मुक्तकठ मे प्रशसा की । विदेशी विद्वानो मे डा० टैसीटोरी[2] ने इन्हे 'होरेश-इन-डिंगल' कहा तो कर्नल टाड[3] ने इनकी कविता मे दस सहस्त्र घोडो का बल बतलाया । देशी विद्वानो मे किसी को ये 'हिन्दी के भवभूति'[4] नजर आये तो किसी को इनकी उपमाएँ होमर[5], के समान लगी । नरोत्तमदास स्वामी ने घोपणा की 'भक्त लोग गीता और सहस्त्रनाम की भाति उसका (वेलि का) नित्य-पाठ करते आये हैं[6] ।

(३) *व्यक्तित्व एव कृतित्व सम्बन्धी चमत्कारपूर्ण प्रसग*

अपने समय मे ही पृथ्वीराज अपने व्यक्तित्व एव कृतित्व (वेलि) के प्रभाव से इतने प्रसिद्ध हो गये थे कि एक सिद्ध पुरुप की तरह उनके सम्बन्ध मे कई किवदन्तियाँ प्रचलित हो गई ।

(क) *भक्ति-भावना सम्बन्धी*

(१) कहा जाता है कि ये अपने इप्टदेव की मानसी पूजा किया करते थे । उसी के प्रभाव से एक वार आगरे मे ही इन्होने बता दिया कि उसी समय बीकानेर मे इनके इप्टदेव की सवारी नगर-कीर्तन के लिए निकल रही थी[7] ।

१—राजस्थानी भापा और साहित्य डा० मोतीलाल मेनारिया, पृ० १७२

२—'द वेलि इज वन ओफ द मोस्ट फुलजेन्ट जॅम्स इन द रिच माइन ओफ द राजस्थानी लिटरेच इज वन ओफ द मोस्ट परफेक्ट प्रोडक्शन ओफ द डिंगल लिटरेचर, ए मारवल ओफ पोइटिकल इनजेन्यूइटी, इन विच लाइक इन द ताज ओफ आगरा, इलेबोरेटनेस ओफ डिटेल इज कम्बाइण्ड वीथ सिम्पलीसिटी ओफ कन्सेपशन एण्ड एक्जक्विजिटनेस ओफ फीलिंग इज ग्लोरिफाइड इन इमेक्यूलेटनेस आफ फोर्म द ग्रेट मेरिट ओफ द पौयम इज इन द कम्बिनेशन ओफ ए डिलाइटफुल जेन्यूइननेस एण्ड नेचरलनेस एण्ड नेचरलनेस ओफ एक्सप्रेशन वीथ, द मोस्ट रिगोरस इलेबोरेटनेस ओफ स्टाइल'—स्वसपादित वेलि इन्ट्रोडक्शन ।

३—राजस्थान टाड ।

४—क्रिसन रुक्मणी री वेलि सूर्यकरण पारीक, भूमिका ।

५—राजस्थानी भाषा और साहित्य डा० मोतीलाल मेनारिया, पृ० १६७

६—क्रिसन रुक्मणी री वेलि प्रस्तावना, पृ० ३३

७—वेलि (हिन्दुस्तानी एकेडेमी) भूमिका, पृ० २८

(२) यह भी कहा जाता है कि 'वेलि' सम्पूर्ण करने के बाद ये अपने इष्टदेव के दर्शनार्थ द्वारिका गये। मार्ग मे एक जगह डेरा डाला तो वहाँ एक धनाढ्य भी आकर ठहरा। उसकी प्रार्थना पर उन्होने उसे 'वेलि' सुनाई। प्रात काल जब ये आगे चले तो 'वेलि' वही भूल गये। रास्ते मे स्मरण आने पर एक सवार को उसके लिए दौडाया। सवार ने वहाँ जाकर देखा कि न तो वह व्यापारी है न उसके खेमे आदि का ही कोई चिन्ह। अलबत्ता पृथ्वीराज के खेमे आदि के चिन्ह ज्यो के त्यो बने है। इस पर पृथ्वीराज ने स्वय आकर वह स्थल देखा। वे आश्चर्यान्वित रह गए। परन्तु थोडी देर बाद ही उन्होने निकट के एक तुलसी के पौधे पर 'वेलि' को सुरक्षित पाया। वे समझ गये कि स्वय भगवान ही उन्हे दर्शन देने आये[1]।

(ख) *मृत्यु सम्बन्धी*

(१) पृथ्वीराज का प्रण था कि वे अपने शरीर को व्रज-प्रदेश मे ही छोडेगे। इस पर उनके शत्रुओ ने अकबर को सिखाया कि वे उन्हे कही बहुत दूर भेज दे। बादशाह ने उन्हे काबुल की मुहीम पर भेज दिया। अपना काल निकट आते देखकर वे साडनी पर बैठ कर दो दिन मे ही मथुरा पहुँच गये और वहाँ यमुना के जल का पान कर अपना शरीर छोड दिया[2]।

(२) यह भी कहा जाता है कि एक दिन अकबर ने इनसे पूछा कि तुम्हारी मृत्यु कब और कहाँ होगी ? पृथ्वीराज ने उत्तर दिया–मथुरा के विश्रात घाट पर[3] और उस समय एक सफेद कौआ प्रकट होगा। इस भविष्य-वाणी को मिथ्या सिद्ध करने की दृष्टि से बादशाह ने इन्हे अटक के पार भेज दिया। साढे पाँच महीने बाद एक भील चकवा-चकवी के एक जोडे को लेकर बेचने के लिए दिल्ली आया। उसे मानव-वाणी में बोलते देख बादशाह ने अपने पास मँगवाया और उसी समय खान-खाना ने 'सज्जन वारू कोडवा या दुर्जन की भेट' चरण रचा पर उसे पूरा न कर सके। तब पृथ्वीराज को बुलाया गया। उन्होने मथुरा पहुँचकर 'रजनी का भेला किया वेह के अच्छर मेट'[4] दूसरे चरण की पूर्ति बादशाह के पास भिजवा विश्रात घाट पर दान पुण्य कर प्राण त्यागे। सफेद कौआ भी उसी समय प्रगट हुआ। यह घटना सवत १६५७ की है।

१—वेलि (हिन्दुस्तानी एकेडेमी) भूमिका, पृ० २६–२८
२—दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता, पृथ्वीसिंघ की वार्ता, पृ० ४८३–८४
३—भक्तमाल, पृ० ८०८
४—डिंगल मे वीर रस डा० मोतीलाल मेनारिया, पृ० ४४–४५

(४) *हस्तलिखित प्रतियों का प्राचुर्य*

वेलि आरम्भ से ही लोकप्रिय ग्र थ रहा। डा० मोतीलाल मेनारिया के अनुसार वेलि की लोकप्रियता का अनुमान इसी बात से हो सकता है कि राजस्थान के प्राचीन पुस्तकालयो और जैन भाडारो मे शायद ही कोई ऐसा मिलेगा जहाँ इसकी दो चार प्रतियाँ सुरक्षित न हो।[1] 'राजस्थान भारती' के पृथ्वीराज विशेषाक[2] मे इसकी ७४ हस्तलिखित प्रतियो का विवरण दिया गया है। खोज करने पर और भी कई प्रतियाँ मिल सकती है।[3]

वेलि की सचित्र प्रतिया

इतनी अधिक हस्तलिखित प्रतियो और टीकाओ के मिलने के साथ साथ वेलि की ६ सचित्र प्रतियाँ भी प्राप्त हुई हैं। (खोज करने पर और भी सचित्र प्रतियाँ मिल सकती हैं) सक्षेप मे उनका विवरण इस प्रकार है–

(१) वेलि की सबसे पहली सचित्र प्रति अनूप सस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर (ग्रथाक ८१७) मे है। इसे सवत १६६७ मे अम्बिकापुर मे भाटो विट्ठलनाथ की प्रेरणा से धर्मपुर वासी सिद्धा पडा नान जी सुत कोदर ने लिखा। इस प्रति के पत्राक १३१ व १६८ मे एक एक चित्र और पत्राक १४६ मे दोनो ओर पृष्ठो मे २ चित्र (इस तरह कुल ४ चित्र) हैं। इस प्रति मे ३०३ छद हैं। प्रथम छद सस्कृत मे है।[4]

(२) दूसरी सचित्र प्रति भी अनूप सस्कृत, लायब्रेरी, बीकानेर (ग्र थाक ११।११) मे है। यह स० १८०८ मे बीकानेर मे खुवास आसाजी पुरोहित श्री कृष्ण द्वारा लिखित ६८ पत्रो की रचना है। इसमे मथेण अखैराज द्वारा चित्रित बीकानेर शैली के १३७ चित्र हैं।

(३) तीसरी सचित्र प्रति अभयजैन ग्र थालय, बीकानेर मे है। इस स० १८०७ मे वडवन परगने मदसौर मे गुलाबचद ने लिखा। इसमे पहले चतुर्भु जदास रचित मधुमालती सचित्र है फिर वेलि सटीक और सचित्र (पत्र ८२) है। इस प्रति के पत्र पानी से चिपक कर खराब हो गये है। आदि और अन्त के पत्र तो बहुत ही बुरी अवस्था मे है। पर चित्रो की सख्या काफी है। सभवत सभी पत्रो मे चित्र है। किसी २ पत्र मे दो–दो तीन–तीन चित्र भी है।

१—राजस्थानी भाषा और साहित्य मेनारिया, पृ० १७२

२—नवम्बर, १९६० परिशिष्ट पृ० १८१-९०

३—श्री अगरचन्द नाहटा ने शोध-पत्रिका के वर्ष १५ अ क २ (अप्रैल १९६४) मे वेलि की तीन प्राचीन एव महत्वपूर्ण प्रतियो का परिचय दिया है (पृ० १५५ ५७)

४—कृष्णदेव नमस्कृत्य सर्व देव शिरोमणि ।
वल्ली नाम गयच तस्माद् यत्न मुदीरयेत् ॥

(४) चौथी सचित्र–सटीक प्रति सरस्वती भण्डार उदयपुर (ग्र थाङ्क ६४५) मे है। इस प्रति के लेखक (सभवत चित्रकार भी) कवीश्वर गिरधर भट्ट कृष्ण दासने है। इसमे ६५ पत्र और ६५ ही चित्र है। प्रत्येक पत्र पर एक-एक चित्र है। चित्र का आकार १०½"×१६½" है। इसका लेखन--काल महाराणा जयसिह का शासन समय वि० स० १७३७–५५ रहा है। इसमे प्रत्येक चित्र के ऊपर दो-दो, तीन-तीन छन्दो की मेवाडी टीका दी गई है[1]।

(५) पाँचवी सचित्र--सटीक प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर (ग्र थाङ्क ६४२०) मे है। इस प्रति मे पहले नासिकेतोपाख्यान सचित्र है। फिर वेलि का मूल--पाठ देकर टीका (राजस्थानी मे) दी गई है (पत्र ४६ से १३१)। कुल पत्र ३०५ हैं, टीका २८६ पद्यो की ही दी गई है[2]। प्रति मे किशनगढ शैली के कुल ८२ चित्र हैं। प्रति का आकार ६½"×६½" है। यह प्रति १८ वी शती की लिखी हुई है।

(६) छठी सचित्र–सटीक प्रति मुनि पुण्यविजय जी सग्रह, अहमदाबाद मे है। उसमे ३६ पत्र और १६ चित्र हैं। पद्यो की सख्या ३०४ है। टीका पुरानी राजस्थानी मे है।

१—टीका का नमूना इस प्रकार है—

प्रथम पत्र के चित्र के ऊपर–

पृथीराज री वेल रो पत्र ।१। प्रथीराज राठोड ।। श्री परमेसर
जी हैं नमस्कार करे है ।। सरस्वती मे पण नमस्कार करे है ।।
सतग्रुर हैं पण नमस्कार करे है ।। एतीनी तत्व हैं मगल रूप
श्री भगवान है गावजे ।।रु०।।१।।

द्वितीय पत्र के चित्र के ऊपर–

प्रथी० वेल रो पत्र ।।२।। प्रथीराज कहे है ।।
ज्या फुतली ।। चितारे चित्री है ।। ज्याइज ।। चिताराहे
चित्रे है। कमलापति री कीरति करू हू ।। जाणे गु गी
सरस्वती सु वाद करे है ।। ज्यु पागलो ।। मनरी दोड है
क्यु पाँचेगो। त्यु हु परमेसर रा गु ण क्यु गाउ गो ।।रु०।।३।।

२—प्रारभ के ५ पद्य नही हैं। छठे पद्य (स्त्री पति) की टीका इस प्रकार दी गई है–
कवी कहैं छै श्रीपत इसी कुण छै। जु तुहारो गुण कथो। अरु एसो कुण तारू छै। अरु ऐसो कोण पप छै। जु गगन कहता आकास लग पोहचै। अरु एसो कुण गरीव छै समरथ सुमेर ने उठावै ।। जो अैसो असमरथ छै तो वैस रहे। जसन कहै। ताको जवाव आगला दवाला माह कहै छै ।।

(५) *टीकाकारों का आकर्षण :*

'रामचरित मानस' और 'विहारी सतसई' की भांति 'वेलि' पर भी अनेक टीकाएँ लिखी गई। अधिकांश टीकाएँ जैन विद्वानो द्वारा (सस्कृत और राजस्थानी मे) रचित हैं। विभिन्न भण्डारो मे उपलब्ध टीकाओ का विवरण इस प्रकार है—

(क) *सस्कृत-टीकाएँ*

टीका-नाम	टीकाकार	लिपि-सवत
(१) सुबोध मजरी टीका[1]	वाचक सारग	टीका, १६७८
(२) सस्कृत भाष्य[2]	श्रीसार	टीका, १७३०
(३) वल्ली सस्कृत सटिप्पण[3]		कक्क(लिपिकार)१७५०
(४) क्रिसनरुक्मणी री वेल[4] (अपूर्ण)		

१—यह टीका पालनपुर के शासक पेरोज के कान मे बनाई गई। ठाकुर रामसिंह और सूर्यकरण पारीक द्वारा सपादित वेलि के सस्करण मे इसका प्रकाशन हो चुका है।

२—यह टीका शाहजहाँ के समय लाहौर मे कृष्णानद की आज्ञा से लिखी गई। इसमे पृथ्वीराज की प्रशसा के निम्नलिखित श्लोक दिये गये हैं

तद् भ्राता राष्ट्राकूट प्रकट तरयनु शुद्धचेता. सुशील-
सवुद्धि शास्त्रकर्ता हरिचरणयुग्म साधनैकाग्रचित्त
पृथ्वीराज प्रसिद्धो जगति गुण निधी राजराजा कवीना
सोमा वल्लीति नाम्नी हरिचरित युता राजगीता चकार ॥१॥
पृथ्वीराजावतारेण, भक्तानुग्रह कम्पया।
स्वय नारायण स्वरूप जगाद चरित हितम् ॥२॥
दाता भोक्ता हरेभक्ति, कर्त्ता शास्त्रस्यवित्।
पृथ्वीराज समो राजा, न भूतो न भविष्यति ॥३॥
नत्वा वल्लीति नामान ग्रथ सर्वरस प्लुतम्
टीका सुटीका तस्या थ, कृष्णानन्दो लचीकरत् ॥४॥

३—इसकी प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर (ग्रन्थाक ६१४), मे है। यह टीका वाचक सारग की सुबोध मजरी टीका पर आधारित प्रतीत होती है। इसकी टिप्पणियों मे अलकारो का उल्लेख किया गया है जो सारङ्ग की टीका मे नही है। संभव है लिपिकार कक्क ही टिप्पण कर्त्ता हो। अन्त की प्रशस्ति इस प्रकार है—

खवाणागेन्दु माने ब्दे मार्गे मासि सिते दले।
शनौ पृथुकृता वल्ली भुजे कक्काभिधो लिखतम् ॥

४—यह प्रति अभयजैन ग्रथालय, बीकानेर मे है।

(ख) राजस्थानी टीकाएँ

(१) ढूढाडी टीका[1]		१६७३
(२) वेलिनउ टबउ[2]	लाखा चारण	—
(३) वेलि की टीका[3]	लखाख्य कवि	

१—यह प्रति अनूप सस्कृत लायब्रेरी बीकानेर (ग्रथाक २०११७) मे है। इसका प्रकाशन ठाकुर रामसिंह और सूर्यकरण पारीक द्वारा सम्पादित वेलि के सस्करण मे हो चुका है। श्री नरोत्तमदास स्वामी ने ढूढाडी टीका और लाखा चारण कृत टीका को अलग-अलग माना है (स्वसपादित वेलि प्रस्तावना पृ० ७८) पर श्री अगरचद नाहटा दोनो को एक ही मानते हैं (राजस्थान भारती पृथ्वीराज विशेषाक, भाग ७, अ क १-२ पृ० ४७)

२—इसकी हस्तलिखित प्रति मोजमाबाद (जयपुर राज्यान्तर्गत) के जैन शास्त्र भडार मे सुरक्षित है। यह ३७ पत्रो मे लिखी हुई है। प्रत्येक पृष्ठ मे ५ पक्तियाँ हे जिनमे वेलि का मूल पाठ मोटे अक्षरो मे दिया गया है। प्रत्येक पक्ति मे ४१ अक्षर हैं। इन पक्तियो के बीच-बीच मे छोटे अक्षरो मे वेलि का अर्थ (टब्बा-टीका) दिया गया है। प्रथम पद्य का अर्थ इस प्रकार है—

पहिलउ परमेसर नैं नमस्कार करइ १ वली सरस्वती ने विद्यातणी नमस्कार कर २ त्रीजउ सदगुरू विद्या गुरु नैं नमस्कार करइ ३ ए तीने तत्वसार तिहु लोके सुखदाई। साक्षात् मगल रूप श्री कृष्ण गुण गाइजइ। माधव श्री लक्ष्मी वर ए च्यारेई मगलाचरण करी श्री कृष्ण रुक्मणी नी गुण स्तुति करइ ॥१॥

वेलि की इस प्रति मे अन्तिम छन्द (वसु शिव नयण) रचना-सवत-सूचक है जिसके अनुसार वेलि की रचना स० १६३८ आसोज सुदी १०, रविवार को हुई थी। इस अन्तिम छद के बाद एक कवित्त वेद वीज जल वयण सकति रोपी जड सद्धर दिया है जिसे टीकाकार ने साया भूला रचित (ए कवित्त चारण साईयइ भूलइ कीधउ छई) लिखा है। इसके बाद जो पुष्पिका दी गई है वह इस प्रकार है—

"इति चारण लाखानउ कीधउ वेलिनउ टबउ सपूर्ण थयउ समाप्त ॥ सवत् १७०६ वर्षे आषाढ सुदि १३ रवो बा० प्रताप पठनार्थ।"

अन्त मे भिन्न लिपि मे लिखा है "अवाडी बालकृष्ण सुत दलभराम पुस्तक ॥ अ० बालकृष्ण।

३—इसकी हस्तलिखित प्रति श्री आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान भडार, लाल भवन जयपुर के गुटके न० ६८ मे लिखी हुई है। यह गुटका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमे कुल १६० पत्र हैं। प्रस्तुत टीका १३६ से लेकर १४५ पत्रो तक १० पत्रो मे लिखी गई है। प्रत्येक पृष्ठ मे ४१ पक्तियाँ और प्रत्येक पक्ति मे २८ अक्षर हैं। गुटके का आकार $८\frac{१}{२}'' \times ५\frac{१}{४}''$ है। प्रारभ के १४५ पत्रो मे उदैराज कृत बावनी, सिन्दूर प्रकरण, हरिरस, जमला रा दूहा, वरसाला रा दूहा, पच सहेली रा दूहा, बारह मास रा दूहा, ढोला मारु रा दूहा,

माधवानल काम कदला चउपई, मदयवत्स सिवलिंग री वार्ता, महादेवजी री निसाणी, स्यूलिभद्र बत्तीसी, माताजी रो छद, गणेशजी रो छद, फुटकर कवित्त, सवैया, पहेली, कु डलिया आदि महत्त्वपूर्ण ग्रथ लिपिवद्ध है। यह गुटका एक ही लिपिकार द्वारा लिखा हुआ नही है न एक ही प्रकार की व एक ही समय की रचनाएँ इसमे सकलित है। ऐसा लगता है कि भिन्न-भिन्न अवसरो पर लिखे गये विभिन्न पत्रो का इस गुटके मे निबन्धन कर लिया गया है। यही कारण है कि इसमे सकलित कई ग्रथ अधूरे है। वेलि का मूल पाठ व टीका भी अपूर्ण है। प्रारभ के केवल १६२ छद ही यहाँ लिपिबद्ध है जिनमे पहले १२ छदो की टीका तो 'टीका' लिखकर की है और शेष छन्दो की टीका 'वार्त्ता' लिखकर। लगता है शेष छन्दो के पृष्ठ कही बिखर रह गये है। यह गुटका १८ वी शती का प्रतीत होता है।

इस प्रति का महत्व इसलिए अधिक है कि इसमे प्रारभ के मगलाचरण के ६ छन्दो मे टीकाकार लाखा का स्पष्ट उल्लेख हुआ है—

ध्यात्वा श्री गुरु पाद पद्म युगल श्री मन्मुरा रे पदा।
वल्या प्रारभते जनप्रिय करी टीका लखाऽय कवि ॥
दृष्ट्वा हृत्सरसीरुहे वहुतर तोपं कवीशा दधु ।
दोपो न प्रतियाति यत्र पटुता ता नद सू नुर्भृशम् ॥१॥
श्री शारदा बुद्धि विशारद मे पुनर्गणेश प्रकरोति सिद्धिम् ।
या लम्य सर्वेहि कवीशर्वया, विस्तारयन्तिस्य यशोवितानाम् ॥२॥
श्री गुरु विट्ठल नत्वा नत्वा च गिरवारणी।
सरस्वती नमस्यामि नाना बुद्धि प्रदायनी ॥३॥
नत्वा कवीन्द्रान् सर्वज्ञान् प्रार्थना सिद्धि दायकान्।
लखाऽख्ये नापि सुधिया वेल्लि टीका प्रतन्यते ॥४॥

आर्या—श्री विट्ठल श्रीगुरू वदे नदे जेणि नेक नखे।
प्रभु गिरधरण प्रसन्न होई पसाइ जाइ हरसिद्धि ॥५॥
गणपति गुणे गभीर धीर प्रणमि दय बुद्धि सिद्धी।
सारदा सुपसन्न आपण रयण वयण उपदेश ॥६॥

इस मगलाचरण के वाद 'वेलि' आरम्भ होती है। प्रथम पद्य की टीका इस प्रकार है—

टीका—प्रथमहीज परमेश्वर कु नमस्कार करइ छै। पाछै सरस्वती कुं नमस्कार करइ छै। पछै सतगुरू कु नमस्कार करइ छइ। मगल रूप माधव छै। ताकौ गुणवाद कीजैछै। इण उपरात मगलाचार कोई नही छै ॥१॥

लाखा चारण कृत वेलि की सवसे प्राचीन टीका को अब तक अप्राप्य ही समझा जाता रहा है। इस गुटके की प्रति का प्रकाशित ढू ढाडी टीका (जिसका प्रकाशन ठाकुर रामसिंह और सूर्यकरण पारीक द्वारा सम्पादित वेलि के सस्करण मे हो चुका है और जिसमे टीकाकार का कोई नामोल्लेख नही है) से मिलान करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनो टीकाएँ एक ही हैं। विनय ज्ञान भण्डार की इस प्रति मे लाखा का उल्लेख होने मे ढू ढाडी टीका का कर्त्ता लाखा होना भी स्वय सिद्ध है।

(४)	क्रिसन रुक्मणी री वेलि[1]	सदारग	१६८३
(५)	वनमाली वल्ली बालावबोध[2]	जयकीर्ति	टीका १६८६
(६)	नारायण वल्ली बालावबोध[3]	कुशलधीर	१६९६
(७)	क्रिसन रुक्मणी री वेलि[4]	अज्ञात	१६९७
(८)	क्रिसन रुक्मणी री वेलि[5]	,,	१६९९
(९)	वेलि (बालावबोध)[6]	लक्ष्लीवल्लभ	१८ वी शती का पूर्वार्द्ध
(१०)	वेलि रुक्मणीजी कृष्णजी री[7]	अज्ञात	१७०५
(११)	श्री कृष्ण रुक्मणी वेलि[8]	शिवनिधान	१७०६

मोजमाबाद की प्रति मे जो लाखा चारण का उल्लेख हुआ है वह पुष्पिका मे हुआ है। यह लिपिकार की ओर से प्रमादवश भी हो सकता है जबकि विनय ज्ञान भण्डार की प्रति मे जो लाखा का उल्लेख हुआ है वह मगलाचरण मे हुआ है जो स्वय टीकाकार द्वारा रचित होने से अधिक विश्वसनीय है। यह भी संभव है कि लाखा चारण और लखाज्य कवि दो अलग-अलग व्यक्ति हो और दोनो ने दो अलग-अलग टीकाएँ लिखी हो।

१—अनूप सस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर ग्र थाक ९।१३

२—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ग्रथाक ३९४३

जयकीर्ति ने वेलि के टीकाकारो का इस प्रकार उल्लेख किया है—

चावउ जगि भाखा चतुर चारण लाखउ चग।
कीधउ पहिली वारतकि अरथि न उपजइ रग ॥
ग्वालेरी भाषा गुपिल मद अरथ मित भाव।
वात-वध किय भाख वितु समझण तिण सम भाव ॥
चतुर विचक्षण चतुर-मति रवि-तलि पडित-राय।
सकल विमल भाखा सुधी कवि सारग कहाय ॥
जिण कवि भाखा जोरि करि सस्कृत भाखि सुजाण।
अरथ कहयउ लागइ विखम वदइ न मद वखाण ॥

वेलि का यह बालावबोध बाघमल के पुत्र पारसजी की प्रार्थना से जयकीर्ति ने रचा।

३—महिमा-भक्ति-जैन शास्त्र भण्डार, बडा उपाश्रय, बीकानेर, ग्रथाङ्क ३३।४९०।
यह टीका कुशलधीर ने अपने शिष्य भावसिंह के लिए बनाई थी।

४—अनूप सस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर ग्रथाङ्क ८।७

५—वही ९।१४

६—अभयजैन ग्रथालय, बीकानेर की प्रति। इसकी रचना विजयपुर के चतुरजनो की सम्यर्थना से हुई।

७—वही

८—सरस्वती भण्डार, उदयपुर ग्रथाङ्क ८०२

(१२)	श्री कृष्ण रुक्मणी जी री वेल[1]	अज्ञात	१७२२
(१३)	वेल (सार्थ)[2]	,,	१७२२
(१४)	पृथिराज वेलि[3] (स्तवक)	पं० दानचन्द्र	१७२७
(१५)	वेलि (बालावबोध)[4]	शिवनिधान	१७३८
(१६)	क्रिसन रुक्मणीजी री वेल[5]	अज्ञात	१७४१
(१७)	वेल[6]	,,	१७४५
(१८)	श्री कृष्ण रुक्मणी गुण वेलि[7]	,,	,,
(१९)	हरि वेल (सार्थ)[8]	,,	१७४७
(२०)	क्रिसन रुक्मणी री वेलि (अपूर्ण)[9]	,,	१७५३
(२१)	क्रिसन रुक्मणी री वेल[10]	,,	१७५४
(२२)	कृष्ण रुक्मणी वेलि[11]	,,	,,
(२३)	वेलि (सबालावबोध)[12]	,,	१७६६
(२४)	क्रिसन रुक्मणी री वेल[13]	,,	१७७२
(२५)	पृथ्वीराज वेलि[14]	,,	१७८२
(२६)	वेलि (सस्तवक)[15]	शिव निधान	१७८९
(२७)	वेल (सटीक)[16]	अज्ञात	१७९१
(२८)	वेलि (सार्थ)[17]	,,	१७९२

१—महिमा-भक्ति जैन-शास्त्र भण्डार, बडा उपाश्रय, बीकानेर ग्रथाङ्क ३६।५७७
२—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ग्रथाङ्क २०७०
३—महिमा भक्ति जैन शास्त्र भण्डार, बडा उपाश्रय, बीकानेर, ग्रथाङ्क ३३।४८५
४—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रथाङ्क ३९४२
५—अभयजैन ग्रथालय, बीकानेर, ग्रथाङ्क ७४०५
६—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ४८३८
७—राजस्थानी शोध सस्थान, चौपासनी की प्रति
८—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ग्रथाङ्क ६१४४
९—अनूप सस्कृत लायब्रे री, बीकानेर, ग्रथाक १६।१६
१०—खजानची कला भवन पुस्तकालय, बीकानेर ग्रथाक २८
११—दिगम्बर जैन मन्दिर (बधीचन्दजी), जयपुर--गुटका न० २६
१२—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ग्रथाक ११०६०
१३—खजानची कलाभवन, पुस्तकालय, बीकानेर
१४—दिगम्बर जैन मन्दिर (ठोलियो का), जयपुर--गुटका न० ११८
१५—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रथाक ४०७७
१६—वही ग्रथाक ३५५७।२
१७—वही ग्रथाक १८६८।४

(२९)	श्री प्रथिराजजी री वेलि[1]	अज्ञात	१७९५
(३०)	वेल (बालावबोध)[2]	जयकीर्ति	१७९६
(३१)	श्रीलता पृथ्वीराज कृत[3] (सटब्बार्थ)	शिव निधान	१७९९
(३२)	वेल सार्थ[4]	अज्ञात	१८ वी शती
(३३)	कृष्ण रुक्मणी गुण मगलाचार[5] वेल (सचित्र)	,,	,,
(३४)	श्री क्रिसनजी री वेलि[6]	,,	,,
(३५)	वेलि (सचित्र)[7]	,,	,,
(३६)	वेल कृष्ण रुक्मणी जसवाद[8]	,,	१८००
(३७)	पृथ्वीराजकृत वेलि (सचित्र)[9]	अज्ञात	१८०७
(३८)	क्रिसन रुक्मणी री वेलि[10] (सचित्र)	,,	१८०८
(३९)	वेलि (सार्थ)[11]	,,	१८१७
(४०)	वेलि (सटीक बालावबोध)[12]	,,	१८१९
(४१)	वल्ली (सविवरण)[13]	कुशलधीर	१८२६
(४२)	वेलि (अपूर्ण)[14]	अज्ञात	
(४३)	क्रिसन रुक्मणी री वेल[15]	मध्य भाग खण्डित	

१—सरस्वती भण्डार, उदयपुर, ग्रथाक ४१९। अन्त की प्रशस्ति इस प्रकार है—

पीथल कमध किल्याण रा, केहा गुण गावा ।
थे दा (ता) म्हे मगता, इण नातै पावा ।।१
च्यारि वेद नव व्याकरण, जनै चौरासी गुठ ।
तो म्रित प्रिय किल्याण रा, गई मजालस उठ ।।२

२—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, ग्र थाक ३५४८

३—वही ग्रथाङ्क २०९९

४—वही ग्रथाङ्क ४०७८

५—वही ग्रथाङ्क ९४२०

६—अभयजैन ग्रथालय, बीकानेर, ग्रथाङ्क ७४०४

७—सरस्वती भण्डार, उदयपुर–ग्रथाङ्क–९४५

८—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रथाङ्क ८५५३

९—अभयजैन ग्रथालय, बीकानेर

१०—अनूप सस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर, ग्रथाङ्क ११।११

११—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रन्थाङ्क ४४५२

१२—अभयजैन ग्रन्थालय, बीकानेर, ग्रन्याङ्क ७४०६

१३—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रन्थाङ्क ४०७६

१४—अनूप सस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर, ग्रन्थाङ्क १२।१२

१५—वही ग्रन्थाङ्क १५।१५

(४४) क्रिसन रुक्मणी री वेलि[1]
(४५) क्रिसन रुक्मणी री वेलि[2] पुरोहित लक्ष्मण

(ग) व्रज भाषा मे अनुवाद–
(१) रस विलास[3] गोपाल लाहोरी १८ वी शती

(घ) खडी बोली मे पद्यानुवाद–
(१) क्रिसन-रुकमणी-री-वेलि[4] नरोत्तमदास स्वामी अप्रकाशित

रचना–काल :

वेलि के रचना–काल को लेकर विद्वान लोग एक मत नही है। इसका कारण वेलि की हस्तलिखित प्रतियो मे प्राप्त रचना–संवत–सूचक छन्दो का वैभिन्य रहा है। जो रचना–सवत–सूचक छन्द विभिन्न प्रतियो मे मिलते हैं वे निम्नलिखित हैं—

(१) वरसि अचल[७-८] गुण[3] अङ्ग[६] ससि[१], सवति, (१६३७ या १६३८)
तवियउ जस करि स्त्री–भरतार।
करि स्त्रवणे दिन–राति कठि करि,
प्रामै स्त्रीफल भगति अपार ॥

इस छन्द मे प्रयुक्त 'अचल' का अर्थ सात भी होता है और आठ भी। टीकाकारो ने दोनो ही अर्थ किये है। टैसीटोरी[५], सूर्यकरण पारीक[६], मजुलाल मजुमदार[७], रामकुमार वर्मा[८], कृष्णशङ्कर शुक्ल[९] आदि ने 'अचल' का अर्थ सात

१—अनूप सस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर ग्रन्थाङ्क १६।१६

२—वही ग्रन्थाङ्क २०।२०

३—यह पद्यानुवाद नरोत्तमदास स्वामी द्वारा सम्पादित वेलि के सस्मरण मे प्रकाशित हो चुका है। इसे गोपाल लाहोरी ने नवाव मिर्जाखान (नवाव मुसाहिव खा के पुत्र सिरदार खा का पुत्र) के लिए किया था। इससे पता चलता है कि मुसलमानी नवाबो मे भी वेलि के प्रति आकर्षण था।

४—यह अनुवाद नरोत्तमदास स्वामी द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है (नरोत्तमदास स्वामी द्वारा सम्पादित वेलि प्रस्तावना, पृ० ८०) युद्ध–वर्षा–रूपक प्रकरण का हिन्दी पद्यानुवाद स्वसम्पादित वेलि के परिशिष्ट मे दिया गया है।

५—वेलि (एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता) प्रस्तावना पृ० ६

६—वेलि (हिन्दुस्तानी एकेडेमी) भूमिका पृ० ६७–६६

७—गुजराती साहित्य नाँ स्वरूपो पृ० ३७५

८—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (द्वितीय सस्करण) पृ० २५७

६—वेलि (साहित्य निकेतन, कानपुर) पृ० ११८

कर वेलि का रचना–काल स० १६३७ माना है। डा० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा का भी यही मत है[1]। जयकीर्ति[2], कुशलधीर[3] और अगरचन्द नाहटा[4] ने 'अचल' का अर्थ आठ कर इसका रचना–काल स० १६३८ माना है। यह छन्द कई प्रतियो मे मिलता है।

(२) वसु[८] सिव–नयन[३] रस[६] ससि[१] वच्छरि, (१६३८)
विजय–दसमि रवि रिख व रणउत।
क्रिसन–रुकमणी वेलि कलप–तरु,
की कमधज कलियाण–उत॥

इस छन्द मे प्रयुक्त 'वसु' (जिसका अर्थ आठ होता है) के आधार पर श्री नटवरलाल इच्छाराम देसाई[5] ने वेलि को स० १६३८ मे रचित माना है। यह छन्द भी कई प्रतियो मे मिलता है।

(३) सोलैसे सवत छत्रीसा वरखे, (१६३६)
सोम त्रीजू वैसाख समधि।
रुक्मणि कृसन रहस रग रमता,
कही वेलि पथिराज कमधि॥

इस छन्द से वेलि का रचना–काल सवत १६३६ सूचित होता है। यह छन्द कतिपय प्रतियो मे मिलता है।

(४) सोलह सै समत चमालै वरमे, (१६४४)
सोम तीज वैसाख सुदि।
रुक्मिणि कृष्ण रहस्य रमण रस,
कवी वेलि पृथिराज कमधि॥

इस छन्द के आधार पर डा० मोतीलाल मेनारिया[6], डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित[7], डा० हीरालाल माहेश्वरी[8] आदि वेलि का रचना–काल सवत १६४४ मानते है। यह छन्द भी कतिपय प्रतियो मे मिलता है।

१—बीकानेर राज्य का इतिहास प्रथम खण्ड, पृ० १६१
२—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर की प्रति न० ३६४३
३—महिमा भक्ति–जैन शास्त्र भण्डार बडा उपाश्रय, बीकानेर ग्रथाक ३०।४६०
४—राजस्थान भारती (पृथ्वीराज विशेषाङ्क) भाग ७ अङ्क १–२ नवम्बर, १९५९–६०, पृ० ४९
५—वेलि (फार्बस गुजराती सभा, बम्बई)
६—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १६३–६५
७—स्वसपादित वेलि भूमिका पृ० ५१
८—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १६१

रचना--सवत--सूचक पद्यो वाली वेलि की जितनी भी प्रतियाँ मिलती है वे १७ वी शती के अन्त की या अठारहवी--उन्नीसवी शती की मिलती है। कई प्रतियो मे सवत--सूचक दो दो विभिन्न पद्य भी मिलते हैं। अब तक प्राप्य सबसे प्राचीन प्रति स० १६६४ की है जो कोटा के विजयगच्छ के उपाश्रय मे प्राप्त एक सग्रह (गुटके) मे है। इस प्रति मे वेलि के ३०१ पद्य हैं पर रचना-सवत-सूचक उपर्युक्त चार छन्दो मे से कोई भी नही है। प्रति की लेखन पुष्पिका इस प्रकार है—'इति वेलि समाप्ता सम्पूर्ण ॥ स० १६६४ वर्षे पोप मासे कृष्ण पक्षे ऐकादस्या तिथौ शनिसर वारे ॥ लिखतं शिवराज ॥ नागपुर मध्ये ॥ शुभ भवतु ॥' वि० स० १६६६ की अभयजैन ग्रन्थालय, बीकानेर की प्रति मे भी ३०१ छन्द हैं और रचना--सवत--सूचक कोई भी छन्द नही है। इस प्रति की प्रशस्ति इस प्रकार है--'इति श्री कृष्णदेव रुषकरण वेलि सपूर्ण समाप्ता ॥ राठोड श्री किल्याणमल सुत प्रतिराज तत्त ॥ बधव सुरताणजी गागरोणगढ मध्ये[1] ॥ स० १६६६ वर्षे माह सुदी ४ दिने लिपत रामा ॥ फूलखेडा मध्ये ॥ शुभभवतु ॥ किल्याण'॥। स० १६७३ और स० १६६२ की प्रतियो मे भी रचना–सवत का सूचक पद्य नही है। उनमे ग्रन्थ की समाप्ति 'रूप लखण गुण तणी रुकमणी' इस पद्य के साथ हो जाती है। सवत–सूचक पद्य का उल्लेख सर्व प्रथम सारग की सुबोधमजरी नामक सस्कृत टीका मे मिलता है। यह टीका स० १६७८ मे रची गई थी और इसकी प्रति १६८३ की लिखी प्राप्त हुई है[2]। उसमे इस पद्य को उद्धृत नही किया गया है और न उसकी टीका दी गई है। केवल प्रतीक उद्धृत हुआ है—

तत्र कदाय ग्रथस् सजातस् तत् कथयति।
वालक ।वरसीति । इति सुगमय् ॥

इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि रचना संवत सूचक पद्यो मे से कोई भी पृथ्वीराज की रचना नही है। वेलि से सम्बन्ध रखने वाले अन्यान्य कई-एक प्रशसात्मक पद्यो की भाँति, जो वेलि की रचना के बाद बन गये थे और जिनको टीकाकारो अथवा लिपिकारो ने पीछे से जोड दिया, ये पद्य भी पीछे की रचना है[3]। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि जब सभी सवत (१६३६, ३७, ३८ व ४४) प्रक्षिप्त है तो फिर इनकी कल्पना क्यो की गई? अनुमान है कि ये सवत लेखक की जीवन सम्बन्धी महत्वपूर्ण घटनाओ से सम्बन्धित है या वेलिकार ने विशेष प्रसगो पर स्वय वेलि का पाठ, विद्वानो या भक्तजनो के समक्ष किया हो, जिनके आधार

१—इस प्रशस्ति से वेलि की रचना गागरोनगढ मे हुई प्रतीत होती है। उनके भाई सुरताण के उल्लेख से पता चलता है कि वे वहाँ पृथ्वीराज के साथ होगे और वेलि की रचना मे उन्होने प्रेरणा दी होगी।

२—अनूप सस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर की प्रति, ग्रथाक २०।१७

३—क्रिसन रुक्मणी री वेलि, प्रस्तावना-पृ० ७८, नरोत्तमदास स्वामी।

पर विविध लिपिकारो ने भिन्न-भिन्न सवतो को उसका रचना--काल मान लिया हो[1]। सवत–सूचक पद्यो को प्रक्षिप्त मानते हुए भी यह अनुमान करना कि सं० १६३६ और १६४४ के बीच ही किसी समय वेलि की रचना हुई होगी, असगत न होगा।

कथानक :

वेलि की कथा कृष्ण और रुक्मणी के वैवाहिक जीवन से सम्बन्धित है। सम्पूर्ण कथा के सार को निम्नलिखित शीर्षको मे बाँटा जा मकता है[2]—

(१) प्रस्तावना (१–९)
(२) रुक्मणी की वाल्यावस्था और वय सधि (१०–२७)
(३) विवाह की मन्त्रणा और शिशुपाल की वरात का आना (२८–४२)
(४) रुक्मणी का कृष्ण को सदेश भेजना (४३–५८)
(५) रुक्मणी का सदेश (५१–६६)
(६) कृष्ण और वलराम का कुन्दनपुर जाना (६७-७८)
(७) रुक्मणी का शृगार (७९–१०१)
(८) रुक्मणी का देवी–पूजा को जाना (१०२–१०८)
(९) रुक्मणी का हरण और शिशुपाल तथा रुक्मकुयार के युद्ध (१०९–१३७)
(१०) कृष्ण का द्वारका लौटना और रुक्मणी के साथ विवाह होना (१३८–१५८)
(११) वर-वधू का एकात मिलन और निशापगमन (१५१–१८६)
(१२) ऋतु-वर्णन और ऋतु-विहार (१८७–२६८)
(१३) कृष्ण का परिवार और गृहस्थ-जीवन (२६९–२७७)
(१४) वेलि–माहात्म्य (२७८–२९९)
(१५) उपसहार (३००–३०५)

कथा का मूल आधार भागवत पुराण है। भागवत के दशम स्कध के उत्तरार्द्ध के अध्याय ५२--५३--५४ मे रुक्मणी की कथा आई है, परन्तु कवि ने इस कथा को केवल वीज रूप मे स्वीकार किया है[3]। काव्य-सौष्ठव तथा वर्णन-शैली मे उसकी अपनी मौलिकता है। श्री नरोत्तमदास स्वामी ने दोनो (भागवत तथा वेलि) मे निकट अथवा दूर के भाव-साम्य के १४ स्थल[4] उद्धृत करते हुए दोनों की कथा मे २५ अन्तर[5] वतलाये है। डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित ने विष्णुपुराण के

१—प्रो० भूपतिराम साकरिया का 'वेलि का काल-निर्णय' शीर्षक लेख राजस्थान भारती (पृथ्वीराज विशेषाक) भाग ७ अक १-२, पृ० १७२

२—नरोत्तमदास स्वामी द्वारा सपादित वेलि प्रस्तावना, पृ० ३४-३९

३—वेली तसु वीज भागवत, वायउ, महि थाणउ प्रिथुदास मुख।
मूल ताल, जड़ अरथ, माडहड, सु-थिर करणि चढ़ि, छाह सुख (२९१)

४—स्वसपादित वेलि प्रस्तावना, पृ० ३९-४१

५—वही पृ० ४१-४४

५ वे अध्याय के २६ वे खण्ड तथा हरिवशपुराण के ५९ एव ६० वे अध्यायो मे आये हुए रुक्मणी–विवाह के प्रसग की भी चर्चा की है[1]। पर वेलि के कवि ने उनसे कुछ लिया हो ऐसा नही जान पडता[2]। कथा-सयोजन मे निम्नलिखित कथानक-रूढियो का प्रयोग हुआ है–

(१) नायिका का लक्ष्मी का अवतार होना और क्षण-क्षण मे उसके रूप (अवस्था) का वदलना।

(२) वर-प्राप्ति के लिए नायिका का गौरी और शङ्कर की पूजा करना।

(३) कन्या के सगाई-प्रसग को लेकर भाई अथवा परिवार के किसी सदस्य द्वारा विरोध प्रगट करना।

(४) नायिका का ब्राह्मण के द्वारा पत्र–भिजवाकर नायक को अपनी रक्षा के लिए बुलवाना।

(५) नायिका का नायक से मिलने के लिए शृ गार कर पूजा के वहाने अम्बिका-लय मे जाना।

(६) पूजा करके लौटने पर नायक द्वारा नायिका का हरण करना।

(७) हरण करने पर नायक तथा सगाई-प्रसग को लेकर विरोध प्रकट करने वाले व्यक्ति तथा उसके द्वारा आमन्त्रित लोगो के बीच सघर्ष छिडना।

(८) सघर्ष मे नायक का विजयी होकर नायिका के साथ अपने निवास-स्थान पर जाना तथा विधिवत् विवाह करना।

वेलि एक खण्ड काव्य है पर यह साधारण खण्ड–काव्य नही है[3]। उसका शरीर चाहे महाकाव्य की ऊ चाई को स्पर्श न कर पाया हो पर उसकी आत्मा मे पाठको को 'उत्तेजित, करुणाभिभूत, चकित और स्तम्भित' करने की शक्ति है।

वेलि की सपूर्ण कथा को स्थूल रूप से दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है। पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्ध मे कृष्ण–रुक्मणी के विवाहोपरान्त मिलन और प्रभात वर्णन (छन्द सख्या १८६ तक) का भाग सम्मिलित है। उत्तरार्द्ध मे षटऋतु–वर्णन, वेलि–माहात्म्य, कवि–विनय (१८७–३०५) आदि आते है जिनका मूल-कथा से सीधा–सम्वन्ध नही है। वेलि की मुख्य-कथा कृष्ण और रुक्मणी मे सम्वन्धित है। प्रासगिक कथाओ मे रुक्मणी और शिशुपाल की कथा, ब्राह्मण की कथा, वलराम की कथा आदि गिनाई जा सकती है। ये कथाएँ मुख्य-कथा को गति देकर अन्तर्विलीन हो जाती है।

१—स्वसपादित वेलि भूमिका, पृ० ५५-५६

२—स्वसपादित वेलि नरोत्तमदास स्वामी प्रस्तावना, पृ० ३९

३—निम्नलिखित वातें उनके खण्ड काव्य होने मे सदेह उत्पन्न करती है—

चरित्र-चित्रण :

वर्णन-प्रधान काव्य होने के कारण वेलि मे चरित्र-चित्रण का प्रयत्न नही है। अधिकाश मे वर्णनो के माध्यम से ही पात्रो का चरित्र चित्रण हुआ है। प्रमुख पात्रो मे कृष्ण, रुक्मणी, रुक्मकुमार, वलराम और शिशुपाल है। गौण-पात्रो मे ब्राह्मण, रुक्मणी के माता-पिता, कृष्ण के माता-पिता, ब्राह्मण-पुरोहित, रुक्मणी की सखियाँ, कुन्दनपुर के नागरिक, रुक्मणी के साथ जाने वाले सैनिक, शिशुपाल के सुभट और द्वारिका के नागरिक आते है। पात्रो की तीनो कोटियाँ है। सुर-पात्रो मे कृष्ण और रुक्मणी आते है, असुर पात्रो मे रुक्मकुमार और शिशुपाल। मानव पात्रो मे शेष सभी पात्रो का समावेश किया जा सकता है। पात्रो मे चारित्रिक विकास की कमी है। लगता है सब पात्र प्रारम्भ से अन्त तक एक ही रग मे रगे है।

कृष्ण

कृष्ण काव्य के नायक और प्रमुख पात्र है। कवि ने उनको परब्रह्म और मानव दोनो रूपो मे देखा है। परब्रह्म रूप मे वे निर्गुण और सगुण दोनो है। निर्गुण रूप का सकेत एक दो स्थलो पर ही हुआ है[1]। सगुण रूप मे वे विश्व का पालन-पोषण करने वाले हैं, शरणागतो के आश्रय-स्थल है, वलि को बाधकर धर्म की रक्षा करने वाले है, वराह रूप मे अवतीर्ण होकर हिरण्याक्ष का वध कर पृथ्वी का उद्धार करने वाले है और रामावतार मे रावण का अन्त कर सीता को मुक्ति दिलाने वाले है। वे चतुर्भुज है। शख, चक्र, गदा और कमल को धारण करते है[2]। भक्त के प्रति कृपालु है। रुक्मणी के पत्र पर अकेले ही रक्षार्थ दौड पडते है।

मानव रूप मे वे आदर्श प्रेमी, सच्चे वीर, लोकप्रिय शासक और सद्गृहस्थ है। उन्हे कवि पृथ्वीराज का वीरत्व और स्वाभिमान मिला है। अन्य कृष्ण-काव्य धारा के कवियो की तरह वे माखन चोर, मुरलीधर और रास-बिहारी नही हैं। उनका कर्तव्यनिष्ठ वीर-व्यक्तित्व हमे आकर्षित करता है। वह दुष्टो के दमन मे जितना क्रूर है सज्जनो की भलाई मे उतना ही करुण। उसे अपने आत्म-बल पर पूर्ण विश्वास है। वह अकेला ही रथ लेकर मदिर के द्वार पर पहुँच जाता है और विठा देता है अपने रथ पर सेना से घिरी हुई रुक्मणी को। उसका रुक्मणी-हरण चोर कृत्य नही है उसके पीछे स्वाभिमानी निर्भीक आत्मा की पुकार है—

वाहरि रे वाहरि, छइ कोई वर, हरि हरिणाखी जाइ हरि। (११२)

वह रुक्मकुमार से युद्ध करता है। उसके आयुधो को व्यर्थ करता है और अन्त मे उसके केश उतारकर उसे विरूप करता है। पर युद्ध की भयकरता मे भी उसके हृदय का स्नेह सूखा नही है।[3]

१—छद सख्या २७२
२—छद सख्या ५९–६४
३—छद सख्या १३२–३३

कृष्ण सच्चे प्रेमी हैं। रुक्मणी से वे विधिवत् विवाह करते हैं। उनका अलौकिक व्यक्तित्व प्रणय की मादकता के आगे गल जाता है। हृदय की सुषुप्त प्रेम-भावना ब्राह्मण द्वारा रुक्मणी का पत्र पाते ही जाग उठती है (आराढ लखण रोमांचित आसू ।।५७।।) नव-परिणीत वर के रूप मे उनके हृदय की उद्दाम वासना बरसाती नाले की तरह फूट पड़ती है पर मर्यादाहीन नहीं होती, 'सुन्दर सूर सील-कुल करि सुध' (३०) के तट को नही डुबोती। प्रथम मिलनोत्कण्ठा उन्हे अधीर बनाती है। वे शय्या से द्वार तक और द्वार से शय्या तक बार बार चक्कर काटते रहते हैं। कान लगाकर प्रत्येक आहट को सुनते है और प्रिया के आगमन पर—

बार बार तिम करइ विलोकन वरण-मुख, जेही रुक-वरण। (१७०)

प्रेम मे इतने तन्मय है कि रात्रि के बीतते समय उन्हें मुर्गे की पुकार ऐसी अप्रिय जान पडती है जैसी अप्रिय जीवन मे मोह रखने वाले व्यक्ति को आयु के समय बीतते घडियाल के घण्टे की टकार।[१]

ऋतु-विहार करते समय उनका भोगी रूप सामने आता है। ग्रीष्म मे वे कस्तूरी के गारे और कपूर की ईटो से निर्मित महल मे कमल-पत्रो की मालाओ से अलकृत है[२], वर्षा मे गुलाल जल से धुले वस्त्र पहने हैं[३], शरद मे रास क्रीडा में तन्मय हैं[४], हेमन्त मे रुक्मणी से वाणी और अर्थ की तरह उलझकर शीत-निवारण में लगे हैं[५], शिशिर मे धूप और आरती से आवृत हैं[६] और वसन्त मे पुष्प घरो मे काम-सुख भोगते हुए संगीत के नाद के साथ सोते और वेद पाठ की ध्वनि के साथ जागते हैं[७]।

कृष्ण सद्गृहस्थ है। ब्राह्मण को दूर से आता देख वे उठकर वन्दना के साथ आतिथ्य सत्कार करते हैं[८]। उनका परिवार भरा पूरा है। पुत्र प्रद्युम्न और पुत्र-वधू रति है, पौत्र अनिरुद्ध और पौत्र-वधू उषा है। उन्होने मदिरा, क्रोध, निन्दा, हिंसा, दुर्वचन आदि को अस्पृश्यो की भाति सर्वथा दूर कर रखा है[९]। संक्षेप मे कृष्ण का चरित्र लोकोत्तर होते हुए भी लोकबाह्य नही है, वह इसी लोक का है।

१—छद सख्या १८१
२—वही १६२
३—वही २०५
४—वही २१५
५—वही २२१
६—वही २२५
७—छद सख्या २६७—६८
८—वही ५४
९—वही २७७

रुक्मणी :

रुक्मणी काव्य की नायिका है। वह कुन्दनपुर के राजा भीष्मक की पुत्री है। उसके पाँच भाई है। वह अत्यन्त रूपवती और गुणमती है। बाल्यावस्था मे सखियो के साथ गुडियाँ खेलती है। वह मानसरोवर मे हस-शावक की तरह क्रीडा करती है और मेरु पर्वत पर दो दलो वाली स्वर्णलता की तरह प्रस्फुटित होती है।[१] बत्तीस लक्षणो से युक्त रुक्मणी व्याकरण, पुराण, स्मृति, विविध शास्त्र, विद्या, कला आदि सब मे प्रावीण्य प्राप्त करती है[२]।

वह युवती है। उसमे प्रेम-भावना का धीरे धीरे स्फुरण होता है। कृष्ण के गुणो का श्रवण कर वह उन पर मुग्ध होती है। उसमे शालीनता है, कुल-कानि है। रुक्मकुमार शिशुपाल के साथ उसका विवाह करना चाहता है पर वह प्रत्यक्ष रूप से मना नही कर सकती। बरात सजाकर आये हुए शिशुपाल को देखकर उसका मन मुरझा जाता है पर वह अधीर नही होती। कृष्ण के साथ जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध स्थापित करती हुई 'नख-लेखणि' से पत्र लिखकर सहायता के लिए पुकार करती है[3]। उसके पत्र मे जादू की शक्ति है जिसके कारण कृष्ण अकेले ही सीधे दौड पडते है।

उसमे दूरदर्शिता और प्रत्युत्पन्न मति है। पत्र-वाहक का चुनाव, पत्र का वर्ण्य विषय, और देवी पूजा की योजना, इसी ओर सकेत करते है। उसके व्यक्तित्व मे शील और लज्जा का अद्भुत मिश्रण है। माता पिता के आगे 'काम विराम छिपा डण काज' उसे लज्जा आती है, ऐसी लज्जा कि 'लाज करती आवइ लाज'[४]। देवी-पूजा के लिए जाते समय उसका शील उभर आता है और वह सखियो के बीच ऐसी लगती है मानो 'सील आवरित लाज सू।' पति से मिलने के लिए जाते समय भी इस गजगामिनी के पैरो मे लज्जा के लगर पड जाते है और चाल धीमी हो जाती है[४]।

रुक्मणी अनन्य प्रेमिका है। वह लक्ष्मी और सीता है, विष्णु की शक्ति और माया है। यद्यपि उसका शरीर घर मे है पर मन उसी परम प्रभु से मिला हुआ है 'भुवणि सुतणु, मन तस मिलित।' प्रिय-मिलन की उत्कठा और व्यग्रता उसे अधीर किये हुए है। वह प्रेमातुरी है, थोडी आशका से ही उसका मन पीपल के पत्ते की तरह काँप उठता है। समागम होने पर वह घूघट के भीतर से ही तिरछी चितवन द्वारा प्रिय को निरन्तर निहारती रहती है[६]।

१—वही १२
२—वही २८
३—वही ५६–६६
४—छन्द सख्या १८
५—छन्द सख्या १६७
६—छन्द सख्या १७१

रति श्रान्ता के रूप मे रुक्मणी का सौन्दर्य देखते ही बनता है। जिस सौन्दर्य ने ममस्त सैनिको को सज्ञातीत बना दिया वही सौन्दर्य-प्रतिमा अव सर्वथा निश्चल होकर पडी है। उसके मुख पर पीलापन है, चित्त मे व्याकुलता है और हृदय मे धुकधुकी। नूपुरो की झकार और कठ की हिलोर वन्द है। केश खुले है, मोतियो की माला टूटी पडी है[1]। अन्त मे पारिवारिक समृद्धि के रूप मे प्रद्युम्न का जन्म काम-क्रीडा की सार्थकता और प्रेम की सिद्धि है।

रुक्मकुमार :

रुक्मकुमार रुक्मणी का बडा भाई है। वह पूरे काव्य मे दो बार आता है। प्रथम रुक्मणी-विवाह विषयक विचार-विमर्श के समय। यहाँ वह दम्भी, अभिमानी और अविनीत बनकर आता है। उसे कृष्ण मे चिढ है। वह उन्हे ग्वाला मानता है, अपने से पतित समझता है अत माता-पिता को वृद्धावस्था के कारण पागल समझकर शिशुपाल के साथ रुक्मणी का सम्बन्ध ही तय नही करता वरन् शुभस्य शीघ्रम् के अनुसार बरात लेकर आने के लिए निमन्त्रण भी दे देता है।

दूसरी बार हम उसे रुक्मणी-हरण -प्रसग मे देखते है। शिशुपाल को परास्त होते देख वह तुरन्त कृष्ण का पीछा करता है और एक तिरछे मार्ग से चलकर रास्ता रोक लेता है। उसका क्रोध बरसाती नाले की तरह है तो उसकी गर्जना गुरू गभीर। वह कृष्ण को ललकारता है–

अबला लेइ घणी भु इ आयउ, आयउ हू, पग माडि अहीर (१३०)

पर उसके सारे आयुध व्यर्थ सिद्ध होते हैं और अन्त मे वह-सिर के केश काटकर-विद्रूप बना दिया जाता है।

बलराम

बलराम कृष्ण के बडे भाई है। उनमे साहस, वीरता, भ्रातृ-प्रेम और अनुभव की गहराई है। कृष्ण को अकेले गये सुनकर, युद्ध की भावी आशका समझ वे सहायतार्थ चुने हुए सैनिको को लेकर इतने शीघ्र पहुँचते हैं कि कुन्दनपुर मे दोनो साथ साथ प्रविष्ट होते है।

वे युद्ध मे प्रमुख रूप से भाग लेते हैं। अपने नाम हलधर के अनुरूप ही हल चलाकर शत्रुओ के कन्द-मूल नष्ट करते है, यश रूपी बीज वपन करते है, शत्रुओ के सिर काट-काटकर ढेर लगाते है और पैरो से कुचल-कुचलकर उनका सहार करते हैं। 'धरती भलाभली है' इस उक्ति को सत्य सिद्ध करके रहते है।

बलराम का व्यक्तित्व प्रेम और दया से सिक्त भी है। रुक्मकुमार को विरूप देख उनका व्यग्य-बाण फूट पडता है–

१—छन्द सख्या १७६-१७८

'दुसट सासना भली दयी ।
बहिनि जासु पासे बइसाणी, भलउ काम किउ, भला भई ।' (१३५)

ब्राह्मण

ब्राह्मण दो है। एक रुक्मणी का सदेशवाहक वृद्ध ब्राह्मण और दूसरा शिशुपाल को बुलाने वाला रुक्मकुमार का ब्राह्मण-पुरोहित। पहला ब्राह्मण अपने दायित्व से चिंतित, भगवद् कृपा मे सिक्त और लोक व्यवहार से परिचित है। उसके ब्राह्मणत्व का सत्कार स्वय कृष्ण करते है। वह अपने कार्य मे सफल होता है। उसका चातुर्य वहाँ प्रगट होता है जब वह माता-पितादि गुरुजनो से घिरी हुई रुक्मणी को कृष्ण के आने का समाचार यो देता है—क्रिसन पधार्‍या लोक कहति। दूसरा ब्राह्मण पुरोहित भी अपने कर्म के प्रति सच्चा है। वह आज्ञा का वशवर्त्ती हो बिना किसी वाद-विवाद के कहने के पहले ही लग्न लेकर चदेरीपुरी पहुँचता है।

रुक्मणी की सखियाँ :

रुक्मणी की सखियाँ बार बार हमारा ध्यान आर्कषित करती है। वे रुक्मणी के साथ गुडियाँ खेलती है, उसे शृगार करने मे सहयोग देती है, देवी-पूजन मे साथ जाती है, रति-क्रीडा सम्बन्धी बातो की जानकारी देती है, उपयुक्त अवसर पर भौहो मे हँसती हुई एक-एक करके क्रीडा भवन से बाहर निकलती है और रतिश्रान्ता रुक्मणी से हास-परिहास करती है। रुक्मणी यदि 'शील' है तो सखियाँ, 'लज्जा' और रुक्मणी यदि 'वीरज अम्बहरि' है तो सखियाँ 'उडियण।'

वर्णन :

वेलि वर्णन–प्रधान काव्य है। उसका अधिकाश भाग निम्नलिखित वर्णन-स्थलो से घिरा हुआ है।

(१) हरि-महिमा, कवि-विनय और कवि-कर्म की दुष्करता का वर्णन
(२) रुक्मणी की बाल्यावस्था, वय सधि और यौवनागम का वर्णन
(३) कुन्दनपुर की साज-सज्जा और शिशुपाल की बरात के स्वागत का वर्णन
(४) रुक्मणी के पत्र का वर्णन
(५) द्वारका का वर्णन
(६) कृष्ण के कुन्दनपुर आने का और उनके स्वागत का वर्णन
(७) रुक्मणी के शृगार का वर्णन
(८) देवी-पूजन-वर्णन
(९) कृष्ण द्वारा रुक्मणी के हरण का वर्णन
(१०) शिशुपाल की सेना के कृष्ण का पीछा करने का वर्णन

(११) युद्ध-वर्णन
(१२) द्वारिकावासियो द्वारा कृष्ण के स्वागत का वर्णन
(१३) रुक्मणी और कृष्ण के विवाह का वर्णन
(१४) वर-वधू के मिलन का वर्णन
(१५) सन्ध्या और प्रभात का वर्णन
(१६) षट्ऋतु-वर्णन
(१७) कृष्ण के परिवार का वर्णन
(१८) वेलि के माहात्म्य का वर्णन

हरि-महिमा-वर्णन और कवि-विनय के दो स्थल है। प्रारम्भ के ७ छन्दो मे कवि ने अपनी असमर्थता और गुण-वर्णन की दुष्करता का उल्लेख किया है तो अन्त के (२९५-३०४) छन्दो मे गर्वोक्ति-आत्मश्लाघा और विनय-भावना प्रदर्शित की है।

नगर-वर्णन के भी दो स्थल है। एक कुन्दनपुर का और दूसरा द्वारका का। शिशुपाल के आगमन पर कुन्दनपुर सजाया जाता है (३८-४०)। जगह जगह तबू ताने जाते है, स्वर्ण-कलश बाधे जाते है, द्वार-द्वार तोरण स्थापित किये जाते है और नगाडो की चोटो से आकाश गू ज उठता है। द्वारका का दृश्य अमरावती की तरह प्रस्तुत किया गया है जिसे देखकर ब्राह्मण चकित रह जाता है (४८-५१) वहाँ वेद-पाठ की ध्वनि सुनाई पडती है, तालाव के घाटो पर चलते-फिरते तीर्थ-ब्राह्मण सन्ध्यादि करते नजर आते हैं और प्रत्येक घर यज्ञ के जप-तप से सुवासित दृष्टिगत होता है। कहना न होगा कि कवि ने वर्णन करते समय देशकाल का पूरा-पूरा ध्यान रखा है। यही कारण है कि एक मे वैवाहिक-राग-रङ्ग है तो दूसरे मे विष्णु-पुरी की सुख सुरभि। शिशुपाल की नगरी चदेरीपुरी का वर्णन नही किया गया है। उसकी आवश्यकता भी नही थी।

स्वागत-वर्णन के मुख्यत चार स्थल है। दो कुन्दनपुर के और दो द्वारका के। कुन्दनपुर के नागरिक शिशुपाल और कृष्ण का पृथक्-पृथक् स्वागत करते है। शिशुपाल रूपी सूर्य को देखकर अन्य स्त्रियाँ तो कमलिनी की भाँति विकसित हो उठती है पर रुक्मणी कुमोदिनी के समान म्लान हो जाती है (४२)। कृष्ण का स्वागत अधिक उल्लास के साथ होता है। वे सम्मान के साथ राजप्रासाद मे ठहराये जाते हैं। उनका व्यक्तित्व विविध रूपो मे फूट पडता है। स्त्रियाँ 'काम' कहकर, शत्रु 'काल' कहकर विद्वान 'वेदार्थ' कहकर, योगेश्वर 'योग-तत्व' कहकर और अन्य लोग 'नारायण' कहकर उनका स्वागत करते है (७५-७८)।

द्वारका मे कृष्ण विधिवत् ब्राह्मण का स्वागत करते है (५४) और द्वारका के नागरिक बारात का आगमन सुनकर समुद्र की तरह उमडते हुए कृष्ण का स्वागत करते है (१३९–१४८)।

रुक्मणी के रूप-चित्रण और शृङ्गार-वर्णन के तीन स्थल है। प्रथम स्थल मे उसकी बाल्यावस्था, वय सधि और यौवनागम का वर्णन किया गया है। बचपन उसका मन भावन है। वह 'कनक-वेलि' की तरह कोमल और 'हस-शावक' की तरह शुभ्र है। उसके शरीर का विकास अद्भुत गति से होता है। दूसरा बालक जितना वर्ष मे बढता है उतना वह महीने मे बढती है और दूसरा जितना महीने मे बढता है उतना वह प्रहर मे बढती है (१२–१४)। उसके शरीर मे शैशव की सुषुप्ति है यौवन की जागृति नही। स्वप्नावस्था के समान वय सधि है। धीरे धीरे मुख मे लालिमा प्रकट होती है, पयोधर उभरते है, लज्जा प्रवेश करती है (१५–१८) और यौवन रूपी वसन्त सम्पूर्ण परिवार लेकर आ पहुँचता है। उसका शरीर निर्मल हो जाता है, नेत्र खिल उठते है, स्वर सुहावना बन जाता है, मन मुकुलित हो उठता है, और सास की गति तीव्र हो जाती है (१९–२७)।

दूसरे स्थल मे देवी-पूजन के लिए जाते समय वह शृङ्गार करती है। गुलाब-जल से स्नानकर धुले हुए वस्त्र पहनती है। गले मे पोत की कण्ठी और कानो मे कुण्डल धारण करती है। नेत्रो मे अजन आँजती है, ललाट पर तिलक लगाती है। भुजाओ मे काले रेशम के गुंथे बाजूबन्द बाँधती है, हाथो मे कगन पहनती है, पैरो मे नूपुर सजाती है और मुख मे पान चबाती है (८१–९९)।

तीसरे स्थल मे नव परिणीता वधू के रूप मे वह अपने प्रियतम से मिलने जाती है। लज्जा ने उसके पैरो मे लगर बाँध रखा है। वह सखी का हाथ पकड कर धीरे धीरे पग-पग पर रुकती हुई शयनागार मे प्रवेश करती है। घू घट-पट से कृष्ण को बार बार देखती है और रति-क्रीडा मे लीन हो जाती है। रतिश्रान्ता के रूप मे उसका सौन्दर्य देखते ही बनता है (१५८–१८१)।

युद्ध-वर्णन के तीन प्रसङ्ग है। तीनो का सम्बन्ध रुक्मणी-हरण मे है। पहला प्रसङ्ग रुक्मणी की रक्षा का है। इसके लिए देवी-पूजन के लिए जाते समय उसके साथ रक्षक सेना जाती है जो मन्दिर को चारो ओर से घेर लेती है पर इससे रुक्मणी की रक्षा नही हो पाती और कृष्ण उसका हरण कर लेते है (१०४–११२)। दूसरा प्रसङ्ग शिशुपाल के सैनिको का है वे कृष्ण का पीछा करते है। दोनो मे युद्ध होता है। बलराम भी यथा-समय पहुँच कर सहायता करते है और शत्रु पराजित होता है (११३–१२९)। तीसरा प्रसङ्ग रुक्मकुमार द्वारा कृष्ण के मार्ग को रोकने का है। दोनो मे युद्ध होता है। कृष्ण उसके आयुधो को व्यर्थ सिद्ध कर उसे विरूप बना देते है (१३०–१३४)।

युद्ध-वर्णन रूपक प्रधान है। उसका वर्षा तथा कृषि की समस्त प्रक्रियाओ के साथ विराट रूपक बाँधा गया है विशेषता यही कि सारे उपमान लोक-जीवन से लिये गए है।

रुक्मणी का पत्र आत्मा का परमात्मा के प्रति आत्म-निवेदन है, जीवात्मा का परब्रह्म के साथ जन्म-जन्मातर का सम्बन्ध-सूत्र है और है प्रभु की भक्त-वत्सलता और शरणागत प्रति-पालना का दिग्दर्शक (५९–६६)।

प्रकृति-चित्रण के लिए कवि ने बडी कुशलता के साथ कथानक मे मार्मिक स्थल चुन लिए है। प्रकृति का 'केनवास' महाकाव्योचित गरिमा को लेकर फैला हुआ है। कहा जा सकता है कि कवि केवल राजप्रासादो के उद्यानो और नारी के अनद्य सुन्दर अवयवो तक ही सीमित नही रहा है उसकी विशाल दृष्टि ने जीवन के अन्यान्य क्षेत्रो मे भी गहरी दौड लगाई है। सक्षेप मे प्रकृति-चित्रण के निम्नलिखित स्वरूप वेलि मे देखे जा सकते है–

(१) सन्ध्या-प्रभात आदि के वर्णन
(२) षटऋतु-वर्णन
(३) अलङ्कार-विधान

सन्ध्या-प्रभात-वर्णन के दो-दो स्थल है। पहला स्थल ब्राह्मण के प्रसङ्ग को लेकर है और दूसरा स्थल कृष्ण-रुक्मणी की प्रथम मिलनोत्कण्ठा को लेकर। ब्राह्मण को कुन्दनपुर से निकलते ही सध्या हो जाती है। सूर्य की किरणे छिप जाती है। घरो मे हलचल होने लगती है। मार्ग सूने हो जाते है, रह-रह कर कोई एकाध पथिक चलता दिखाई देता है (४६)। द्वारका पहुँचने पर प्रभात का चित्रण किया गया है। वेद-पाठ की ध्वनि, शख-नगाडो की गूँज, पनघट की भीड और यज्ञ की चहल-पहल मानव-जीवन की झाँकी प्रस्तुत करते हैं (४८–५०)।

दूसरे स्थल पर सध्या प्रेमियो के लिए सकोच और विस्तार लेकर आती है। रति-इच्छुक कृष्ण को एक साथ इतनी वस्तुएँ–पथिको की पत्नियो की आखे, पक्षियो की पाँखे, कमलो की पखुडियाँ और सूर्य की किरणे–सकुचित होती हुई दिखती हैं तो चन्द्रमा की किरणे, कुलटा स्त्रिया, राक्षस और अभिसारिकाओ की आँखे विस्तृत होती हुई (१६२–१६६)। कवि केवल रूढि का पालन करता हुआ नजर नही आता वह प्रकृति के साथ मानव-जीवन की व्यस्तता और नायिका-नायक की प्रेम सम्बन्धी सकोच विस्तार की भावना को समेटे चलता है। रत्यन्त वर्णित प्रभात वर्णन (१८२–१८६) कवि की सूक्ष्म दृष्टि और तीव्र अनुभूति का परिणाम है। उमे अरुणोदय प्रिय-सयोगिनी नारी का चीर, मथानी और कुमुदिनी की शोभा जैसे खुले हुए पदार्थो को बाधता हुआ तथा घर, हाटो के ताले, भ्रमर और गायो के बाडे जैसे बन्द पदार्थों को खोलता हुआ, दिखाई देता है तो व्यापारी और उनकी स्त्रियाँ, गाये

और उनके बछड़े, कुलटा नारियाँ और लम्पट पुरुष आदि मिले हुओ को अलग करता हुआ और चोर तथा उनकी स्त्रियाँ, चकवा-चकवी, ब्राह्मण-घाटो का जल आदि बिछुडे हुओ को मिलाता हुआ दृष्टिगत होता है। जड-चेतन और मानव-मानवेतर पात्रो की भावनाओ तथा क्रियाओ को एक ही साथ देखने वाला यह कवि कितना क्रान्तदर्शी होगा ?

सन्ध्या और प्रभात के बीच रात्रि को भी उसने देखा है। योगी तत्व चिन्तन मे और कामी रति-क्रीडा मे रत है (१८०)।

षटऋतु-वर्णन कथानक को विराम देता है, कवि-परिपाटी का पालन करता है और प्रद्युम्न-जन्म के लिए पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है।

ग्रीष्म ऋतु का वर्णन ७ छन्दो (१८७–१९३) मे किया गया है। नदियो का जल और दिन बढ गये है, सरोवरो का पानी और राते घट गई है। सूर्य ने वृष राशि का आश्रय ले लिया है। समस्त प्राणी आकुल-व्याकुल है। कृष्ण जल-विहार करते है। मृगशिर नक्षत्र के पवन ने सबको झकझोर दिया है और आर्द्रा नक्षत्र का मेघ पृथ्वी को सजल करने आ पहुँचा है।

वर्षा ऋतु का वर्णन १२ छन्दो (१९४–२०५) मे किया गया है। बगुले, साधु और राजा लोग एक स्थान मे बैठ गये है। देवता सो गये है। मोर-पपीहे बोलने लगे है। सावन के बादल काली और सफेद घटाओ के साथ बरस पडे है। पृथ्वी नायिका बन गई है। हरियाली के नीले वस्त्र पहन लिए है। नदी का हार झूल रहा है। दादुर के नूपुर बज रहे है। पर्वत-श्रेणी की कज्जल-रेखा है, समुद्र की करधनी है और वीर बहूटी की कुंकुम-बिंदी। रुक्मणी और कृष्ण पृथ्वी और मेघ की तरह गलबाहे दिये है।

शरद ऋतु का वर्णन ११ छन्दो (२०६–२१६) मे किया गया है। वनस्पतियाँ पककर पीली हो गयी है। कोयल का बोलना बन्द हो गया है। ओस पडने लगी है। आश्विन का आकाश स्वच्छ हो गया है। धरती का कीचड अदृश्य हो गया है। पितरो को तर्पण मिलने लगा है। शुभ्र ज्योत्सना छिटक गई है। सूर्य के तुलाराशि मे प्रविष्ट होने के साथ राजा लोग सोने के तुलादान करने लगे है। कार्तिक मे दीपक जले हैं। कृष्ण रास-क्रीडा मे तन्मय है।

हेमत ऋतु का वर्णन ६ छन्दो (२१७–२२२) मे किया गया है। उत्तर का पवन चलने लगा है। सर्प बिलो मे और धनी तहखानो मे छिप गये हैं। नदियो का जल घट गया है और शिखरो की ऊँचाई बढ गई है। दिन छोटे और राते बडी हो गई है। सूर्य मकर राशि मे पहुँच गया है, कमल जल गये है, आम्र फल गये है। कृष्ण और रुक्मणी आपस मे एक दूसरे से उलझ गये है।

शिशिर ऋतु का वर्णन ५ छन्दो (२२३–२२८) मे किया गया है। उत्तर दिशा के पवन ने ग्राम को छोड कर सबको भस्म कर दिया है। माघ महीने का जल अग्नि की तरह और अग्नि शीतल-जल की तरह लगने लगी है। कृष्ण और रुक्मणी का तेज शीत को बरजने लगा है। सूर्य के कुम्भ राशि मे प्रविष्ट होने पर भौरे ने पङ्ख खोले है, कोकिल ने कण्ठ हिलाया है, युवक-युवतियो ने वीणा-डफ-बजाते हुए फाग खेली है और वृक्षो की डालिये गदराने लगी है।

वसन्त ऋतु का वर्णन ४० छन्दो (२२९–२६८) मे किया गया है। वसन्त ऋतुओ का राजा है अत यह विस्तार तीन साग रूपको मे फैलाया गया है। प्रथम १० छन्दो मे वसन्त-रूपी बालक के जन्म का चित्रण है। वनस्पति रूपी माता ने उसे जन्म दिया है। होली ने दाई का काम किया है। शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन ने बालक मे सत्य, रज, तम गुणो का विकास कर भूख-प्यास पैदा की है। भ्रमर-गु जार शिशु का रुदन और मधु-वर्षण माँ की दुग्ध-धार है। आम्र की मजरियो ने स्वागत मे तोरण बाँधा है, कलियो ने मङ्गल-कलश सजाया है, कोयल ने गीत उगेरे है।

आगे के १९ छन्दो मे वसन्त रूपी राजा का चित्रण है। कामदेव उसका मत्री है, आम्रतरु राजछत्र है, पवन सचरित मजरी चवर है। चतुरङ्गिणी सेना के रूप मे हरिण पैदल सैनिक, लताकु ज रथ, हस घोडे और पर्वत हाथी है। उसकी महफिल अनूठी है। वन मण्डप है, झरना मृदग है, कामदेव नायक, कोयल गायक और पक्षी दर्शक है। वहाँ विविध प्रकार के नृत्य और शास्त्रीय सङ्गीत होते रहते है। उसका राज्य आदर्श राज्य है। चम्पा और केले ने खिलकर अपने वैभव को प्रकट कर दिया है। मलय-पवन के रूप मे सर्वत्र न्याय का प्रवर्तन हो गया है। लताओ ने अपनी वश-वृद्धि की है। भ्रमरो ने प्रेम से कर-वसूली करना आरम्भ कर दिया है।

अन्त के ११ छन्दो मे मलय-पवन का चित्रण है। उसे काम-दूत, दक्षिण नायक, भार-वाहक, अपराधी पति, मतवाला नायक और मदोन्मत्त हाथी बनाकर उसके शीतल, मन्द और सुगन्ध गुणो की विवेचना की गई है।

सक्षेप मे षटऋतु-वर्णन की निम्नलिखित विशेषताएँ है—

(१) अप्रत्यक्ष रूप से बारहमासा वर्णन भी कर दिया गया है। बीच बीच मे महीनो का नामोल्लेख इसका सकेत करता है। पर यह परम्परागत विरह-वर्णन से सम्बन्धित नही है।

(२) प्रत्येक मास के परिवर्तन पर राशि-नक्षत्र एव कोण के प्रभाव का सूक्ष्म विचार किया गया है।

(३) ऋतु-परिवर्नन के साथ साथ हमारे सास्कृतिक गौरव-त्यौहार, पर्व, दर्शन, पूजनादि को भी याद किया गया है।

(४) परिगणनात्मक शैली से दूर हटकर देश-काल का सम्यक् ध्यान रखा गया है। राजस्थान की ऋतुओ तथा दृश्यो का समावेश इसका प्रतीक है।

(५) जगह-जगह प्रकृति को शृङ्गारिक बनाकर नायिका-भेद का निरूपण किया गया है। मलय-पवन-वर्णन मे नायक-भेद निरूपण स्पष्ट है।

(६) प्रत्येक ऋतु के आरम्भ का चित्रण आलम्बन रूप मे सामने आता है पर अन्त मे कृष्ण-रुक्मणी के साथ उसका सम्बन्ध जोडकर उसे उद्दीपन का रूप दे दिया गया है।

(७) ऋतु-वर्णन मे कवि ने अपने काव्य-शास्त्र, लोक-ज्ञान एव मानव-प्रकृति का जी खोलकर प्रयोग किया है।

(८) अलङ्कारो के पारस-स्पर्श से सारा वर्णन जगमगा उठा है।

प्रकृति-चित्रण का तीसरा स्वरूप अलङ्कार-विधान है। सध्या-प्रात आदि तथा षटऋतु वर्णन मे भी इसका प्रयोग हुआ है। नखशिख-निरुपण और युद्ध-वर्णन मे तो यह अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया है। युद्ध का वर्षा के साथ जो रूपक बाँधा गया है वह बहुत ही सुन्दर बन पडा है। उनके द्वारा कृषि सम्बन्धी समस्त ज्ञान प्रत्यक्ष हो उठता है।

वर्णन-स्थलो की उपर्युक्त विवेचना से कवि की बहुज्ञता का पता चलता है। उसने पुस्तको के माध्यम से ही ज्ञानार्जन नही किया है वरन् जीवन और जगत की विविध परिस्थितियो का स्वयमेव अनुभव किया है। वेलि के पठन से कवि के ज्योतिष और शकुन[१], वैद्यक[२], सङ्गीत-नृत्य और नाट्य-शास्त्र[३], योगशास्त्र[४], पुराण[५], कोष[६], राजनीति[७], कर्मकाड[८], भाषा[९], कृषि[१०], वस्त्र बुनने की कला[११]

१—छद ७०,९३,९६,१८८,१९३ २१२,२२२,२२६,२८६
२—छद २८४, २८५
३—छद २४६, २४८
४—छद १५,१८०,१८४,२०८
५—छद ८४,९८,१०६,२१६,२९९
६—छन्द २७३, २७४, २७५, २७६
७—छन्द २४९-२५५
८—छन्द २८०
९—छन्द २९७
१०—छन्द १२३-१२८
११—छन्द १७१

लुहारी[1], सुनारी[2], सिकलीगरी[3], सामाजिक रीतियाँ[4], पशु-पक्षियो के स्वभाव एव व्यापार[5], आभूषण[6], रङ्ग[7] आदि के ज्ञान का पता चलता है।

रस-व्यजना

वेलि का प्रधान रस सयोग शृ गार है। वीर रस की भी विशद व्यजना की गई है। अन्य रसो मे वीभत्स, रौद्र, भयानक, अद्‌भुत, वात्सल्य, हास्य और शान्त के नाम गिनाये जा सकते है।

'गू थियै जेणि सिंगार-ग्र थ' (८) के अनुसार कवि का ध्यान भी शृ गार रस के परिपाक पर ही रहा है। कृष्ण और रुक्मणी इसी के आलम्बन है। दोनो मे शास्त्रीय गुणो[8] की प्रतिष्ठा की गई है। उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत सखा, सखी, दूती, ऋतु, प्रात सध्यादि वर्णनो की यथावसर अवतारणा की गई है।

शृङ्गार के वियोग-पक्ष के लिए कथा मे नही के बरावर स्थान रहा है। मान, प्रवास और करुण प्रसगो को छोडकर केवल पूर्वानुराग का चित्रण किया गया है वह भी केवल मात्र 'श्रवण' के द्वारा 'साभलि अनुराग थयो मनि स्यामा' (२६)। प्रत्यक्ष दर्शन तो बहुत दूर 'अम्बिकालय' मे जाकर होता है। वियोग की शास्त्रीय अवस्थाओ मे नायिका को भटकने का अवसर ही नही मिला न कथानक के कलेवर ने ही उसे आज्ञा दी। फिर भी प्रथम चार अवस्थाएँ उसके प्रणय-विकास मे सहायक होती है—

(१) *अभिलाषा*

साभलि अनुराग थयउ मनि, स्यामा, वर-प्रापति वछती वर।
हरि-गुण मणि ऊपनी जिका हरि, हरि तिणि वदइ गवरिहर (२६)॥

(२) *चिन्ता :*

रहिया हरि सही, जाणियउ रुकमिणी, कीध न इतरी ढील कई।
चितातुर चिति इम चितवन्ती, थयी छीक, तिम धीर थयी (७०)॥

१—छन्द १३२
२—छन्द १७५
३—छन्द ८६
४—छन्द १४०,१४२,१५३-१५८ २०६,२१२,२१३,२१४,२२७,२२६-२३८
५—छन्द १६३,१८४,२०६,२१०,२२६
६—छन्द ८१-६६
७—छन्द १८५,२००,२०३,२५७
८—क्रिसन रुक्मणी री वेलि डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित भूमिका पृ० ६६-६६।

(३) *स्मरण :*

रामा-अवतारि वहे रणि रावण, किसी सीख करुणा-करण।
हू ऊधरी त्रिकूट-गढ हूंती, हरि ! ववे वेळाहरण (६३)

(४) *गुण-कथन :*

वलि-वधण ! मूझ, सियाळ सिंघ-वळि, प्रासइ जउ वी-जउ परणइ।
कपिल धेनु दिन पात्र कसाई, तुळसी करि चडाल तणइ (५६)

सच तो यह है कि वियोग सयोग की पीठिका के रूप मे ही प्रयुक्त हुआ है।

श्री कृष्णशङ्कर शुक्ल ने वेलि के सयोग शृगार को 'अक्षरश सभोग शृगार माना है[1] जो उचित नही कहा जा सकता। रीतिकालीन कवियो सी मास-लता और कामुकता यहाँ नही है। यहाँ जो शृङ्गार है वह आध्यात्मिक भावालोक मे विमण्डित[2] और सात्विकता के लेप से सुवासित है[3]। यह ठीक है कि विवाह-सस्कार के वाद यहाँ भी रति-सस्कार की भूमिका प्रस्तुत की गई है पर नायक नायिका मे जो आतुरता[4], उत्सुकता[5], विवशता[6], लज्जा[7] और सकोच[8] है वह उनके मर्यादित शृङ्गार की मूक घोषणा है।

डा० रामकुमार वर्मा[9] का यह कथन—कि पृथ्वीराज प्रेम की मादकता का रसास्वादन कराने मे तत्पर थे। यही कारण है कि प्रेम के सामने भक्ति के निर्वेदपूर्ण आदर्श रखने मे वे असमर्थ थे, इसलिए नही माना जा सकता क्योकि वेलि का आदि[10] मध्य[11] और अन्त[12] भक्ति-भावना की प्राण स्पन्दना लिए हुए है। उनकी वल्लभ-सम्प्रदाय की भक्ति मे विशेष आस्था प्रतीत होती है[13]। सक्षेप मे निम्न-लिखित वातें वेलि को शृङ्गार काव्य वनने से रोकती है—

१—स्व संपादित वेलि, पृ० ३५
२—छद १५,१६ ५६–६६
३—छद १०३,१६८, १७५
४—छद ७०,१६५
५—छद ४३,१७०, १७१
६—छद १६१, १८१
७—छद १८, १६७
८—छद ७१
९—हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (द्वितीय सस्करण) पृ० २५७
१०—छद १–७
११—छद ५६–६६
१२—छद २७८–३०५
१३—अकवरी दरवार के हिन्दी कवि . डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल पृ० ४२

(१) कवि ने यद्यपि इसे 'शृङ्गार-ग्रन्थ' (८) कहा है पर इसका बीज (आधार) धर्मग्रन्थ भागवत मे विद्यमान है। इसीलिए अन्त मे जाकर वेलि को 'रुक्मणी-मङ्गल' (२८६) कहा है।

(२) नायक कृष्ण को जगह जगह मङ्गल-रूप (१), कमला-पति (३), स्रीकम (५), स्त्री-पति (६), जगत-पति (५४), अन्तरजामी (५४, ६४), असरण-सरण (५८), हरि (६१), पुरसोत्तम (६६), क्रिपा-निधि (६७), त्रिभुवण-पति (६८), त्रिभुवण नाथ (१११) आदि कहा गया है और नायिका रुक्मिणी को भी रामा-अवतार (१२)।

(३) रुक्मणी का पत्र (५९–६६) प्रेयसी का पत्र न होकर उस जीवात्मा का पत्र है जो परमात्मा के साथ जन्मान्तरवाद का सम्बन्ध जोडती है।

(४) द्वारका केवल कृष्ण का निवास-स्थान न होकर पुष्टिमार्ग के अनुसार अमरावती ही है (५१)

(५) काव्य का स्वरूप-विधान भक्ति-काव्यो की परम्परा सा है अत यहाँ भी—

(क) प्रारम्भ मे मङ्गलाचरण, हरि-गुण-वर्णन, कार्य की दुष्करता और कवि की असमर्थता तथा अयोग्यता का कथन है (१–७)।

(ख) अन्त मे वेलि की पाठ-विधि का उल्लेख किया गया है (२८०)।

(ग) विस्तारपूर्वक वेलि का माहात्म्य गाया गया है (२७८–२९४)।

शृङ्गार के पश्चात् दूसरे रसो मे वीर रस को प्रधानता मिली है। इसकी व्यजना के लिए कवि ने शस्त्र-सचालन की विधि[1], शत्रुओ की पारस्परिक ललकार[2], सैन्य-सगठन[3] आदि का ओजमय चित्रण किया है। एक दो जगह-शत्रुओ को बहुरूपिया बनाकर[4] तथा बलराम को व्यग्यमिश्रित हँसी हँसाकर[5]—सफल हास्य की सृष्टि द्वारा वीररस को सहायता पहुँचाई है।

रौद्र और वीभत्स वीर रस के ही सहायक बनकर आये है। भयानक की सृष्टि भी इसी प्रसङ्ग मे हुई है।

१—छद ११८,११९,१३१

२—छद ११२,११३, ११४, १२३, १३०

३—छद ११४,११५,११६,११७

४—छद ११३

५—छद १३५

रौद्ररस :

विलकुल्यिउ वदन जेम वाकारियउ, सग्रहि धनुख पुणच सर सधि।
क्रिसन रुकम–आउध छदण कजि, वेलखि अणी मूठि द्रिउ वधि (१३१)

वीभत्स-भयानक

कंपिया उर काइरा अमुभ-कारियउ, गाजति नीसाणे गडडइ।
ऊजलिया धारा ऊवडियउ, परनाळे जळ रुहिर पडइ (१२०)

इसी स्थल पर रस-विरोध की चर्चा की गई है। श्री सूर्यकरण पारीक[1] ने पाच-छै (१२०-१२५ तथा १२८) छदो को लेकर रस-विरोध की विवेचना की है तो श्री नरोत्तमदास स्वामी ने[2] इसका खडन किया है। केवल ५-६ दोहलो के आधार पर रस-विरोध की कल्पना करके काव्य को दोपपूर्ण कहना विशेप सगत प्रतीत भी नही होता।[3] ।

कलापक्ष :

पृथ्वीराज का कवि कारीगर और कलावाज दोनो है। कारीगर ऐसा कि जो अपनी कृति को पद-पद पर सजाना-सवारना जानता है और कलावाज ऐसा कि जो पाठको और श्रोताओ को मुग्ध किये रहता है।

वेलि की भापा साहित्यिक डिंगल है। उसमे भावानुरूप वहने की शक्ति है। शृ गार रस मे यदि वह 'मदोमत्त मारुत मातग' की तरह 'मधुमद स्रवति' है तो वीर रस मे 'कळ कळिया कुन्त किरण, कळि ऊकळि'। शब्दो को अनावश्यक रूप मे तोडा मरोडा नही गया है।

कवि का व्रज और डिंगल दोनो भापाओ पर समान अधिकार है। फिर भी जिस प्रकार उसने वेलि के लिए भापा के चुनाव[4] मे अपना कौशल प्रगट किया है उसी प्रकार शब्द-चयन मे भी अपना भापा-नैपुण्य। शब्दो की आत्मा को पकडने की उसमे अद्भुत क्षमता है।

(१) रुक्मणी वालिका है अत उसके लिए जो उपमान प्रयुक्त हुए है वे भी वालक है प्रौढ नही। यथा —

(क) कनक-वेलि *विहु पान* क्रिरो (१२)

१—स्वसपादित वेलि भूमिका, पृ० ७६-८७
२—स्वसपादित वेलि प्रस्तावना, पृ० ५३-५७
३—स्वसपादित वेलि डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित भूमिका, पृ० ८७
४—इट इज सरटन देट हैड प्रीथिराज चूजन टू कम्पोज हिज 'वेलि' इन डमेक्यूलेटेड पिंगल ही वुड हेव गिवन अस ए वेरी डिफरेन्ट कम्पोजिशन, नोट सुपिरियर इन म्यूजिकेलिटी, एण्ड कन्सिडरेवली इनफिरियर इन नैवेटी-टैसीटोरी

(ख) पेखि *कली पद्मणी* परि (१४)
(ग) उडियण *बीरज अम्बहरि* (१४)
(घ) नीतबणि-जघ सु *करभ* निरुपम (२६)

यदि कोई दूसरा होता तो केवल कनक लता पद्मनी, चद्रमा और हाथी से ही काम चला लेता।

(२) रुक्मणी कृष्ण को सन्देश भेजने के लिए अत्यन्त आतुर है। ब्राह्मण को देखते ही उसके मुह से शब्द निकलते हैं 'वीर बटाऊ ब्राह्मण' (४४)

(३) कवि शृ गार-ग्रन्थ की रचना कर रहा है पर है पद-पद पर साज-सज्जा। अत 'गु थियइ' शब्द कितना सार्थक है-'गु थियइ जेणि सिंगार-ग्रन्थ' (८)।

(४) 'वाकहीन' की तुलना मे सरस्वती या भारती की जगह 'वागेसरी' शब्द कितना फिट है–'वाग-हीणि वागेसरी' (३)।

इन्ही विशेषताओ को ध्यान मे रखकर डा० मोतीलाल मेनारिया ने लिखा है जिस प्रकार एक चतुर सुनार किसी नग की ठीक-ठीक परीक्षा कर लेने के पश्चात् फिर उसे आभूषण मे बिठाता है उसी तरह पृथ्वीराज ने भी प्रत्येक शब्द को खूब सोच विचार कर, पूरी तरह से शोध माजकर, वेलि मे स्थान दिया है। अत कोई शब्द कही बेमौके नही है। प्रत्येक शब्द चित्रोपम, भावोपपुक्त एव उपादेय है और अपने स्थान पर ठीक बैठा है[1]।

शब्द-चयन मे कवि की दृष्टि उदार रही है। सस्कृत शब्दो की बहुलता तो है ही। इसके अतिरिक्त अरबी (सिलह, हवाई, रासि,) फारसी (जोर, गरकाब, रुख) आदि के शब्द भी यत्र तत्र व्यवहृत हुए है। एक छद मे तो सस्कृत अपने व्याकरण के साथ भी आई है, यथा—

कस्मात् ? कस्मिन् ? किल मित्र ! किमर्थ ? केन कार्य ? परियासि कुत्र ?
ब्रूहि जनेन येन भो ब्राह्मण ! पुरतो मे प्रेषित पत्र (५५)

भाषा की रोचकता के लिए लोकोक्तियो और मुहावरो का प्रयोग किया गया है।

मुहावरे :

(१) जाणेवाद माडियउ जीपण (३)
(२) तिणि ही पार न पायउ त्रीकम (५)
(३) म–म करिसि ढील (४५)

1—राजस्थानी भाषा और साहित्य (द्वितीय सस्करण) पृ० १६६

(४) आयउ हू पग माडि अहीर (१३०)
(५) ऊभा करि रोमा-सू आप (१६८)

लोकोक्ति

(१) भला-भली सति, तो जिमजिया (१२६)
तीन स्थलो पर कवि ने कूट-शैली का प्रयोग किया है।

(१) रुक्मकुमार के लिए सोना-नामी-निर-आउध किउ तदि सोना-नामो (१३४)

(२) मकर राशि के लिए काम-वाहन-मकरध्वज-वाहणि चढिउ अ-हिमकर (२२२)

(३) उत्तर-दिशा के लिए कजूस-वचन-पारथिया कृपण-वयण दिसि पवणे (२२३)

काव्य की भाषा मे चित्र खडा कर देने की अपूर्व शक्ति है। पवन की मन्द-गति के चित्रण की वर्ण-योजना ऐसी है कि पढते समय बीच बीच मे रुकना पडता है।

तोइ झरण छटि ऊधसति मलय तरि, अति पराग-रज धूसर अग।
मधु मद स्त्रवति, मद गति मल्हपति, मदोमत्त मारुत-मातग (२६३)॥

रुक्मणी को सखियाँ कृष्ण के पास ले जा रही है। रुक्मणी लज्जा के कारण रुक-रुक कर चलती है।

लाज-लोह-लगरे लगाये, गय जिमि आणी गय-गमणि (१६७)

पक्ति के पूर्वार्ध मे ठहर-ठहर कर दीर्घ वर्णो का प्रयोग किया गया है जिससे जिह्वा को बीच-बीच मे रुकते हुए चलना पडता है। निम्न पद मे पैंगती सी पदावली और हिन्दोल सा शब्दो का आरोह-अवरोह है—

पणिहारि-पटळ वरण चपक-दळ, कळस सीसि करि करि कमल।
तीरथि-तीरथि जगम तीरथ,विमल ब्राह्मण जळ विमळ (४९)

वेलि मे शब्दालकार और अर्थालकार दोनो प्रचुर मात्रा मे आये हैं। शायद ही कोई ऐसा पद हो जो अलकृत न हो। ऐसे छदो की सख्या भी पर्याप्त है जिनमे एक साथ चार-चार, पाँच-पाँच अलकार प्रयुक्त हुए है। सभी स्वाभाविक गति से चले है। उनमे कारीगरी है पर कृत्रिमता नही, चमत्कार है पर दिमागी कसरत नही।

शब्दालकारो मे कवि को लाटानुप्रास और छेकानुप्रास विशेष प्रिय रहे है। यमक की सख्या भी कम नही है। सामान्यत दो–दो पक्तियो तक अनुप्रास का निर्वाह किया गया है। यथा —

(१) बहु विलखी वीछडतइ बाला, बाल सघाती बालपण (१७)
(२) कामरिण-कुच कठिरण कपोल, करी किरि, वेस नवी विधि वारिण वखारिण (२४)
(३) तेज कि रतन कि तार कि तारा, हरि हस-सावक सस-हर हीर ? (२७)

यमक के कुछ प्रयोग देखिये —

(१) *आदर* करे जु *आदरी* (३)
(२) *हरि* गुरण भरिण ऊपनी जिका *हरि* (२६)
(३) कलस सीसि *करि करि* कमल (४६)
(४) *गुरण*-मोती मखतूल-*गुरण* (८१)
(५) *सिखर सिखर*-मइ मदिर सिर (२०४)

श्लेप भी जगह जगह आया है। यहाँ दो उदाहरण दिये जा रहे है–

(१) सूरिज ही *व्रिख*-आसरित (१८८)
(सूर्य ने (१) वृष राशि का आश्रय ले लिया है मानो गर्मी से डरकर (२) वृक्ष का आश्रय ले लिया है)

(२) कत सजोगरिण किंसुख कहिया, विरहरिण कहे पलास वरण (२५६)
(सयोगिनी (१) ढाक को देखकर उल्लसित होकर बोल उठी (२) किंसुख ! कैसा सुख है ! वियोगिनी (१) ढाक को देखकर तन मे क्षीरण होकर बोली (२) पलाश ! यह मास को खाने वाला राक्षस है)

वयणसगाई शब्दालकार का प्रयोग सर्वत्र हुआ है। उसके साधारण और असाधारण दोनो प्रकार देखे जा सकते है—

साधारण '

(१) चल-पत्र-पत्र थिउ दुज देखे *चित* (७१)
(२) जाणै सदनि-सदनि सजोयी (१०१)
(३) कस छूटी छुद्र घटि*का* (१७८)

असाधारण :

(१) *लाजवती*-अगि अेह *लाज* विधि (१८)
(२) *हेक* वडउ हित हुवइ पुरोहित (३५)
(३) तिरिण आप ही करायउ *आदर* (१६८)

अर्थालकारो की दृष्टि से भी वेलि सम्पन्न काव्य है उसमे चालीस से ऊपर अर्थालकार प्रयुक्त हुए है[१]। श्री कृष्णशकर शुक्ल ने कवि के अलकार-विधान की निम्नलिखित विशेपताएँ वतलाई है[२]

१—स्वसपादित वेलि श्री नरोत्तमदास स्वामी, प्रस्तावना, पृ० ६५
२—स्वसपादित वेलि भूमिका, पृ० ५१-६२

(१) कवि साधारण से साधारण बात को अनलकृत नही छोडता (छद १४३-१४६)।

(२) कवि प्रस्तुत के सब अगो पर ध्यान रखता है और अप्रस्तुत नियोजित करते समय साग-विवरण के साथ ही पूरे दृश्य के प्रभाव पर भी दृष्टि रखता है (छद १२,१४,१६,१४१,२३५)।

(३) कवि की अलकार-योजना प्रसग-प्राप्त-भाव मे सदा समन्वित रहती है। यह समन्वय रूपात्मक तथा भावात्मक दोनो प्रकार का होता है (८१,८२)।

(४) इस द्विविध साम्य को स्थापित करने के लिए कवि कभी मानव पर प्रकृति का आरोप करता है कभी प्रकृति पर मानव का (१९८)।

(५) कवि एक प्रस्तुत के मेल मे अनेक अप्रस्तुतो की सृष्टि करता चलता है (१०७)।

(६) वह अपने चारो ओर के प्राकृतिक वातावरण मे ही अलकार-विधान की सामग्री ढू ढ निकालता है (४२,९७,९९)।

(७) कभी कभी कवि को रति-व्यापार से सम्बन्धित अप्रस्तुत-विधान की धुन सवार हो जाती है (१९५,१९७,२०६,२०७,२२०,२२८)।

आचार्य श्री रामचद्र शुक्ल ने सादृश्यमूलक अलकारो के दो उद्देश्य बतलाये है।

(१) किसी वस्तु के रूप या गुण या क्रिया का अनुभव अधिक तीव्रता मे कराना।
(२) भाव का अनुभव तीव्रता से कराना ।

कहना न होगा कि वेलि के अलकार इन उद्देश्यो की पूर्ति करने वाले है।

इस दिशा मे पृथ्वीराज ने सबसे अधिक प्रयोग उत्प्रेक्षा का किया है। तदनन्तर उपमा और रूपक का। वह उपमान-चयन मे शास्त्रीय लीक पर नही चला है वरन् प्रकृति और जीवन को भी नजदीक से देखता रहा है। इसीलिए पद-पद पर नवीनता, ताजगी और प्रभावना के दर्शन होते रहते है।

डा० मोतीलाल मेनारिया के शब्दो मे 'स्वरूप-बोध' और भावोत्तेजन की दृष्टि से इनकी योजना हुई है। हमारे प्राचीन कवि प्राय आँख की उपमा कमल से और मुख की चन्द्रमा से देते आये है। इस तरह की उपमाओ से उपमेय-उपमान के बीच का थोडा सा सादृश्य अवश्य प्रकट हो जाता है पर वर्णन मे सजीवता नही आती न कथित विपय का पूरा दृश्य सामने आ पाता है। पर पृथ्वीराज की उपमाओ मे यह वात नही है। वे अपनी उपमाओ मे न केवल उपमेय-उपमान का

सादृश्य कथन करते हैं प्रत्युत दोनों के आस-पास के पूरे वातावरण को ही शब्दों में ला उतारते हैं जिससे भाव सजीव होकर जगमगाने लगता है। यथा

संग सखी सील कुल वेस समाणी, पेखि कली पदिमणी परि।
राजति राजकुंअरि राय अंगण, उडियण बीरज अम्बहरि (२४)

यहाँ पर कवि ने रुक्मणी की उपमा चन्द्रमा से देकर ही अपने कार्य की इतिश्री नहीं कर दी है, बल्कि रुक्मणी की सखियों की समता तारों से दिखाकर दोनों के आसपास के समूचे वातावरण का शब्द-चित्र सामने ला रखा है[1]।

अधिकांश उपमाएँ पूर्णोपमाएँ ही हैं। लुप्तोपमाओं का प्रयोग नगण्य सा है। हमारा कवि रूपकों का सम्राट है। साग-रूपक की सृष्टि करने में कवि की प्रतिभा महाकवि तुलसी से होड लेती प्रतीत होती है। इसके निम्नलिखित रूपक तो साहित्य-ससार में श्रेष्ठ माने जा सकते हैं—

(१) वसन्त और शिशु का रूपक (२२६-२३८)
(२) वसन्त और राजा का रूपक (२३६-२४०)
(३) वसन्त और महफिल का रूपक (२४३-२५५)
(४) युद्ध और वर्षा का रूपक (११७-१२६)
(५) लुहार और कृष्ण का रूपक (१३२)
(६) जुलाहे का रूपक (१३१)
(७) मुखमण्डल और रथ का रूपक (८६)

उदाहरण के लिए प्रथम तथा अन्तिम रूपक का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता—

वसन्त और शिशु का रूपक :

	उपमेय	उपमान
(१)	वनस्पति	जच्चा
(२)	वसन्त	बच्चा
(३)	भ्रमर की गुजार	मन की व्याकुलता
(४)	कोकिल की बोली	वेदनापूर्ण वचन
(५)	भ्रमर गुंजार	बच्चे का रोना
(६)	वनस्पति से मधु झरना	मा के स्तन से दूध टपकना
(७)	पुष्पों की सुगन्ध	बधाईदार
(८)	पवन	रथ

१—राजस्थानी भाषा और साहित्य (द्वितीय संस्करण) पृ० १६६-१६७

(६)	आम्रमजरी	तोरण
(१०)	कमल की कलियाँ	मगलकलश
(११)	एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर लिपटी लताएँ	बन्दनवार
(१२)	बन्दरो के फोडे कच्चे नारियल की गिरी	मागलिक दही
(१३)	पुष्पकेसर	कुकुम
(१४)	किंजल्क	अक्षत
(१५)	कोयल गान	पिकवयनी स्त्रियो का गान
(१६)	पुष्कर मे स्थित नलिनी के पत्रो पर जलकण	बधाई के लिए स्त्रियो द्वारा लाये गये मोतियो से भरे हुए थाल
(१७)	कणिकार और टेसू के पीले पुष्प	जच्चा के वस्त्र
(१८)	फाल्गुन मास के गान और वाद्य	शिशु को सुलाने के लिए लोरी गान[1]

मुखमण्डल और रथ का रूपक :

(१)	नायिका का मुखमण्डल	रथ
(२)	भौहे	जुआ
(३)	नयन	मृग (जो यहाँ घोडो का काम कर रहे है)
(४)	टेढी अलके	सर्पमयी रास
(५)	कान की बालियाँ	रथ के बाकिये
(६)	मुखचन्द	सारथी
(७)	तोटक [कर्णफूल]	चक्र [पहिया][2]

इन अलकारो के अतिरिक्त सन्देह (१६, २१, २७, ४१, ८४, ६० १६१, २६४) भ्रातिमान (२५७) अपह्नुति (१००, १५६, १६०, १६४, २२६, २४६, २५०), अतिशयोक्ति (३६, १११, ११५) उल्लेख (७६, ६०, १०७, २८४) व्यतिरेक (८७, ६४, १६०, २५५), निदर्शना (५६, ६०) यथासख्य (१२, १०६) मीलित (२१०, २११) दीपक (१४२, २०८) काव्यलिंग (१८८) प्रतीप (२६०) विरोधाभास (२२३) आदि अलकार भी यथास्थान प्रयुक्त हुए है।

छन्द

वेलि मे प्रयुक्त छन्द छोटा साणोर है। इसके तीनो-वेलियो, सोहणो, खुडद साणोर-भेद यहाँ व्यवहृत हुए है। खुडद साणोर की सख्या सब से अधिक लगभग तीन चौथाई है। उसके बाद वेलियो छन्द की और तब सोहणो की।

१—क्रिसन रुक्मणी री वेलि श्री कृष्णशकर शुक्ल, भूमिका पृ० ६८-६६

२—वही पृ० ६४

उदाहरण

(१) *वेलियो* .

जोइ जलद पटल दल सावल-ऊजल, धुरइ निसाण सोइ घण-घोर ।
प्रोलि-प्रोलि तोरण परठीजइ, मडइ किरि तडव गिरि मोर ।।४०।।

(२) *सोहणो* :

काली करि काठलि ऊजलि कोरण, धारे स्त्रावण धरहरिया ।
गलि चालिया दसो दिसि जलग्रभ, थभिन, विरहणि-नइण थिया ।।१६५।।

(३) *खुडद साणोर*

जिणि सेस सहसफण, फणि-फणि बि-बि जिह,
जीह-जीह नव-नवउ जस ।
तिणि ही पार न पायउ त्रीकम,
वयण डेडरा किसउ वस ।।५।।

(४) रघुनाथ चरित्र नव रस वेलि

प्रस्तुत वेलि राम के चरित्र से सम्बन्धित है। शीर्षक-'रघुनाथ चरित्र नव रस वेलि'-से सूचित होता है कि इसमे राम का चरित्र नौ रसो-शृ गार वीर, करुण, हास्य, रौद्र, भयानक, वीभत्स अद्भुत और शान्त-के माध्यम से चित्रित किया गया है।

कवि-परिचय

इसके रचयिता महेसदास शाहजहाँ-औरगजेब के समकालीन थे। इनके पिता बाघजी अकबर के समय विद्यमान थे। बाघजी, भीकाजी तथा रामाजी लाखणोत तीनो सगे भाई थे। बाघजी किसी कारण राजा मानसिंह (जयपुर) से नाराज थे। इस सम्बन्ध मे उनका लिखा यह चरण प्रसिद्ध है '—

'मान नाम मागू नहीं, यही बाघ री टेक'

१—(क) मूल पाठ मे वेलि-नाम नही आया है। पुष्पिका मे लिखा है 'इति श्री कवि महेसदास विरचिता या नवरस बेलि वा रामचरित्र सु पुरन' ।

(ख) प्रति-परिचय —इसकी हस्तलिखित प्रति-उदयपुर के कविराव मोहनसिंहजी के निजी सग्रहालय मे महेसदास कृत अन्य हस्तलिखित ग्रथो के साथ सुरक्षित है। प्रारभ के सात पृष्ठ जीर्ण अवस्था मे हैं पर वेलि का सम्बन्ध उन पृष्ठो से नही है। प्रस्तुत वेलि प्रति के २५ पृष्ठो मे लिखी गई है। प्रत्येक पृष्ठ मे १५ पक्तियाँ है और प्रत्येक पक्ति मे २८ अक्षर है। प्रति का आकार १२"×६$\frac{1}{4}$" है।

बाघजी के पाँच पुत्र थे (१) कर्णकासीदास (२) महेसदास (३) कल्याणदास (४) गगादास और (५) पोखरदास। इनमे से कल्याणदास (जो स्वय अच्छे कवि थे) महाराणा राजसिंह (शासन-काल वि० स० १७०९–१७३७)[1] प्रथम के समय उदयपुर मे रहे थे।

महेसदास की प्रसिद्ध कृति है 'विनय रासो'। इसमे शाहजहाँ और उसके पुत्र दारा, शुजा, औरगजेब और मुराद के बीच होने वाले युद्धो का वर्णन किया गया है। युद्ध–वर्णित घटनाएँ, तिथियाँ, व्यक्तियो तथा स्थानो के नाम सभी इतिहास-सम्मत है। उदयपुर के कवि राव मोहनसिंहजी के निजी सग्रहालय मे जो हस्तलिखित प्रति मिली है उसमे विनयरासो और रघुनाथ चरित्र नवरस वेलि के अतिरिक्त महेसदास के निम्नलिखित ग्रन्थ और है—

(१) गौड राजपूतो की वशावली (२) राणा राजसिंघजी मे गुण (३) राव अमरसिंह जी को साको (४) गीत अरजन जी को (५) गीत गोपालदास झाला को आदि।

महेसदास डिगल और पिगल दोनो मे कविता किया करते थे। प्रस्तुत वेलि मे भी दोनो भाषाओ का प्रयोग हुआ है। इनका वश राव गौड क्षत्रियो से सम्बन्धित है। कोटा क्षेत्र के बावडी–खेडा और सोपुर–बडौदा मे अब भी इनके वशज विद्यमान है।

रचना-काल .

वेलि मे रचना-तिथि का उल्लेख नही है। पुष्पिका-इति श्री कवि महेसदास विरचिता या नवरस वेलि वा रामचरित्र सम्पूरन मीति जेठ बुदि ११ वृहस्पतवार ने पूरी हुई सम्मत १८७६–से सूचित होता है कि इमे स० १८७६ मे लिपिबद्ध किया गया। कवि शाहजहाँ–औरगजेब का समकालीन रहा है। 'विनय रासो' मे उसने शाहजहाँ के पुत्रो, दारा, शुजा, औरगजेब-मुराद के बीच हुए युद्धो का वर्णन किया है। इससे अनुमान है कि कवि का रचना-काल औरगजेब के राज्याभिषेक (सन् १६५८) के आस पास का रहा है। सम्भव है प्रस्तुत वेलि इसी के आस पास अर्थात् १८ वी शती (विक्रम) के आरम्भ मे रची गयी हो।

रचना–विषय

१२७ छन्दो की यह रचना राम के जीवन से सम्बन्ध रखती है। कवि का लक्ष्य नव-रसो के माध्यम से राम का चरित्र वर्णन करना प्रतीत होता है पर वह अपने उद्देश्य मे पूर्णतया सफल नही हो सका है। यह अवश्य है कि प्रारम्भिक १३ पद्यो मे एक-एक कर के नव-रसो का उल्लेख कर दिया गया है पर उससे

१—उदयपुर राज्य का इतिहास द्वितीय खण्ड ओझा, पृ० ५३२ व ५७८

रस-परिपाक नही हो पाया है। नवरस-वेलि के बाद उसने राम की कथा को एक बार फिर उठाया है पर 'बालकाण्ड' की समाप्ति के साथ ही उसकी समाप्ति कर दी है। सक्षेप मे कथा-सार का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है।

(१) *मंगलाचरण*—कवि प्रारम्भ के तीन छन्दो मे राम, सरस्वती, शिव, गणेश[1], ब्रह्मा, नारद, व्यास, हनुमान, वाल्मीकि, शुकदेव, नासिकेत[2] आदि का स्मरण कर वस्तु[3] की ओर सकेत करता है।

(२) *नव-रसों के माध्यम से राम-चरित वर्णन*—अयोध्या शहर मे जानकी-वल्लभ राम के शृ गार मे शृ गार रस[4], धनुर्भंग-प्रसग मे वीर रस[5], राम वन-गमन, सीता-वियोग और दशरथ-मरण मे करुण रस[6], शवरी-प्रसग मे हास्य रस[7], हनुमान के लका-दहन तथा असुरो के नाश मे रौद्ररस,[8], मेघनाद के रणोन्माद और राम के नाग-पाश बधन मे भयानक रस[9], राम-रावण युद्ध मे वीभत्स रस[10], सेतुबन्ध मे अद्भुत रस[11] तथा रावण-मरण

१—सीतापति सूमरि सूमरि सूरसूति, सहति ऊमा सिव सूमरि गिरीस।
गणपति सूमरि गाय गूंण गोविंद, जग तारक रूपग जगदीस ॥१॥

२—मूखि ब्रह्मा सूमरि सुमरि ब्रह्माणी, नारद व्यास सूमरि हणुमान।
बालमीक सूखदेव सूमरि बलि, नासकेत बलि सूमरि निदान ॥२॥

३—निज नवधा भगति मूकति जिह नीकी, दुरो जमपुर तणो दुवार।
जिण जिण ही वीद रूपग जोडो, किण ही विदि रीझै करतार ॥३॥

४—रस जेणि सिगार गायजे रसणा, सहरू अजोध्या तणी समाज।
वणे सिगार जानकी वलभ, रचै सिंगार सदा रघुराज ॥५॥

५—बलवीर वरण रघुवीर तणो बल, धरू अ मर अहिपुर थीय धाक।
जोग जूगति सिव तणो जोडियो, पल मांही तौडियो पिनाक ॥६॥

६—मूणि करुणा माहा आप करुणामय, जटा धारि धारे बल जोग।
अ त दसरथ कवसल्या अ तर, वन वसिबो जानकी वियोग ॥७॥

७—रस हासि रहस रघुनाथ तणो रचि, कहीयो यक भीलडी कहाव।
सेन्यापति लक्षिमण रघुवर सो, वदर दौला रीछ बणाव ॥८॥

८—थईयो रस रऊद्र लक आथाणो, बाले हणमत बीर बराडि।
बलोया असूर किता दध बूडा, पूलिया केइ नाखिया पछाडि ॥९॥

९—रस भयो भयानक त्रकुट ऐ रसो, मेघनाद वाले समर।
नागपासि वदीया नारायण, आस पास बधीया अवर ॥१०॥

१०—रावण श्रीराम माचीयो र रहचक, जूवल कध धड सीस जूवा।
रुहिर बवाल खाल रलतलीया, हुवता रस सो बीभछ हुवा ॥११॥

११—मदोवरि मूणै सूणो यमरावण, अद्भूत कथा तणा अहदाण।
फत्रीयो सिर वदर फहराता, पाणी सिर तरता पाखाणा ॥१२॥

सीता-मिलन और अयोध्या-प्रवेश मे शान्त रस[1] के मार्मिक-स्थलो की ओर सकेत-मात्र कर कवि ने 'नव रस वेलि' नाम की सार्थकता समझी है। शास्त्रीय दृष्टि से ऐसा वर्णन रस नही 'रसाभास' माना जायेगा।

(३) *राजप्रासाद वर्णन तथा राम का परब्रह्मत्व प्रदर्शन* —कवि ने राजा दशरथ के स्वर्ण प्रासादो का वर्णन कर यह प्रतिपादित किया है कि उनके घर जिस राम ने अवतार लिया है वह पर ब्रह्म परमेश्वर है। उसके असख्य शीश, हाथ, और पैर हैं[2]। अनन्त फणीधर अहर्निश अपनी जिह्वाओ से उसका नव-नव यशोगान करते है[3]।

(४) *अयोध्या शहर वर्णन* —अयोध्या-शहर का वर्णन करते समय कवि की दृष्टि वहाँ के मकानो, बाग-बगीचो, नदियो, नदियो मे क्रीडा-रत विविध जल-पक्षियो, आश्रमो तथा महन्तो की ओर गई है। दशरथ के राज्य मे सर्वत्र आनन्द छाया हुआ है। ब्राह्मण धर्म-कथा, पूजापाठ और यज्ञानुष्ठान मे रत है[4], क्षत्रिय अस्त्र-शस्त्र-साधन, मृगया और रण-सज्जा मे निमग्न है[5], वैश्य राजनियमो तथा धर्म-सिद्धातो का पालन करते हुए अनन्त व्यापार मे दत्तचित्त है[6], शूद्र अपने सेवा कर्म मे जुटे हुए धर्माचरण करते है[7]। दर्शन और धर्म के विभिन्न मतानुयायी सुखपूर्वक धर्माराधना मे तन्मय है[8]। राजा दशरथ के चारो पुत्र राम, लक्ष्मण, भरत, और शत्रुघ्न अपनी बाल्यावस्था सरयू तट पर मृगया आदि मे सानन्द व्यतीत कर रहे हैं।

१—मिलीया हरि सीया मौखि खल मिलीया, सूरा सूरा त्रीय मिले समाज।
ऊपजे सात अजोध्या आवण, रावण मरण भभीखण राज ।। १३ ।।

२—सख्या बिण सीस मूकट कु डल सक, संख चक्र केइ गदा सरोज।
हसत चरण सख्या बिण कहिजे, आभूषण सख्या बिण ओज ।। १८ ।।

३—पू णिनाम अनत पू णि अनत पराक्रम, अनत पूरख सोही आपो आप।
अनत फणी जिण सू जस अहीनिस, जिह जिह भवन नवा सूज जाप ।। १६ ।।

४—*विप्र वेद कथा पूजा बिसतारै, होय अगनि हुत जगि हवन।*
धूवै तिण थिय सहर धू धलो, सूर सूर-भी वेथवै प्रसन्न ।। २८ ।।

५—खह बारण खाति भाति ऐ खत्रीया, ससत्रा ससत्र साधवै अपार।
अस्व गज रथ समरथ आरूढै, सहल बाग बन तणी सिकार ।। २६ ।।

६—बणि बणिक कर व्योपार अणत बिधि, बणीयो येम राजपथ बाच।
दे ध्रम आदि बचन सोही दाखै, सतबादि बोलै मूख साच ।। ३० ।।

७—बलि सूद्र करम आपे बिसतारै, करम करम आपरा करै।
कहिये मौखि तणा अधिकारी, भजै राम भूख उदर भरै ।। ३१ ।।

८—केई ध्यावै रूद्र वृभ ध्यावै केई, बूदि ध्यावै केई न्याय विमेक।
सूणी ए क्रम ध्यामी मीमासा, अरिहृत मत ध्यावै केइ ऐक ।। ४० ।।

(५) *विश्वामित्र का आगमन :*—इसी बीच विश्वामित्र आकर राजा दशरथ से यज्ञ रक्षा के लिये राम-लक्ष्मण को माँगते है। राजा दशरथ बिना किसी विरोध के दोनो पुत्रो को विश्वामित्र के हवाले कर देते है और वे माता-पिता को प्रणाम कर रथारूढ हो जाते है। ताडकादि असुरो का सहार कर यज्ञ की रक्षा की जाती है।

(६) *विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण का मिथिला जाना :*—तत्पश्चात् दोनो भाई विश्वामित्र के साथ मिथिला जाते है। यही अहल्योद्धार और केवट-प्रसंग की चर्चा करते हुए कवि ने राम द्वारा धनुर्भ ग कराया है।

(७) *चारों भाइयों का विवाह '*—जनक की प्रतिज्ञा पूर्ण होने पर सर्वत्र आनन्द छा जाता है। पुरोहित सबध की स्थापना के लिए अयोध्या नारियल लेकर जाता है और लग्न तय होने पर बरात सजकर आती है तथा विधिवत् चारो भाइयो का विवाह होता है। तत्पश्चात् मुँह दिखाई, जीमनवार, जुआ का खेल, दहेज आदि प्रथाओ की सम्पन्नता के साथ विदाई होती है।

(८) *परशुराम-आगमन '*—इसी बीच परशुराम धनुष-भग की टकार सुन क्रोधित हो वहाँ उपस्थित हो जाते हैं और रघुवश को समूल नष्ट कर देने की चुनौती देते है। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न की इनसे चर्चा होती है और अन्त मे परशुराम चले जाते है।

(९) *अयोध्या-प्रवेश* —इसके बाद सभी बराती सानन्द अयोध्या मे प्रवेश करते हैं। अपार जन-समूह मगल वाद्यो के साथ स्वागत करता है। माता कौशल्या, कैकयी और सुमित्रा भी अपने पुत्रो को बधाती है। अन्त मे कवि कहता है कि सीता साक्षात् लक्ष्मी है और राम लक्ष्मीपति ।

कवि का उद्देश्य सम्पूर्ण राम-चरित का वर्णन करना नही रहा है। उसने केवल वैवाहिक प्रसग को लेकर काव्य की सुखमय इतिश्री की है। वर्णन-प्रसगो मे केशव की रामचन्द्रिका का प्रभाव यत्र-तत्र झलकता है। यह बात अलग है कि वह दुबर्बोधता एव क्लिष्टता नही आ पाई है।

परशुराम के प्रसग मे कवि ने वाल्मीकि तथा केशव का अनुकरण किया है। यहाँ परशुराम विवाह के बाद ही आते हैं मानस की तरह धनुर्भग के तत्काल बाद नही। कवि अपने आप मे मौलिक भी है। जहाँ मानस मे केवल लक्ष्मण ही परशुराम के विपक्षी नजर आते है और केशव की रामचन्द्रिका मे भरत। वहाँ प्रस्तुत कृति मे कवि ने शत्रुघ्न को ही अधिक महत्व दिया है। परशुराम को समझाने के लिए यहाँ

केशव की तरह किसी शंकर को नही आना पडता वे तो शत्रुघ्न के तीक्ष्ण व्यंय-बाण से ही तिलमिलाकर चल देते है[1]।

कवि का ध्यान वस्तु-वर्णन की ओर अधिक रहा है। जहाँ उसे वर्णन करने का अवसर मिला वहाँ वह बढता ही चला गया, उसे अपने कथानक के कलेवर का जैसे ध्यान ही नही रहा हो। प्रमुख वर्णन-स्थल निम्नलिखित हैं—

(१) मकान-वर्णन
(२) बाग-वर्णन
(३) जानकी-मुख-वर्णन
(४) राजा-दशरथ-राज्य-वर्णन
(५) धनुर्भ ग वर्णन
(६) बरात वर्णन
(७) विवाह वर्णन
(८) अयोध्या मे स्वागत वर्णन।

काव्य मे अलौकिक तत्वो का भी समावेश किया गया है। ऐसे स्थल दो है (१) राम का अलौकिक व्यक्तित्व इसी मे अहल्योद्धार का प्रसग भी समाविष्ट है[2] (२) देवी-देवताओ का प्रसग कही वे स्वय धरती पर उतर आते है और कही पुष्पवृष्टि करते हैं[3]। विवाह प्रसग मे कवि ने राजस्थान मे प्रचलित लोक-रीतियो और लोक-विश्वासो का आश्रय लिया है। प्रकृति का स्वतन्त्र चित्रण नही किया गया है, वह अलकार विधान के रूप मे ही प्रकट हुई है।

१—विप्रन को धर्म छाडि धर्म क्षित्रिन को लीनो।
मातु वन्ध वध करे माहा तुम पातिग कीनो।
तुम पुस्तक परिहारि पानि फरसी अवधारीय।
वरन धर्म को त्यागि अघता के अधिकारीय।
रघुवन्स यहै पदवी नही गऊ विप्र बध कीजिये।
मन मानि जाति रघूनाथ को आसीर्वाद दीजिये ॥११६॥

२—कहत महेस रज छुवत चरन गइ,
गोतिम की धरनी अखिल पद ठाम है ॥५७॥

३—वन उपवन तणा वणाव वरणिये, तरस हुवैही देवतर।
छहरति तणा फूल फल छावै, आवै तिण छाया अमर ॥३२॥
प्रम व्याहि चले मिथिलापुर तें, सब ही के ऊछाह बढे ऊर तें।
नभ मण्डल मै सूर यो हरखे, कलूपद्रुम पोपन के बरखे ॥९५॥

चरित्र-चित्रण :

घटनाओ के द्वारा पात्रो का चरित्र-विकास हुआ है। प्रमुख पात्र राम हैं अन्य पात्रो मे दशरथ, विश्वामित्र, परशुराम, सीता, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न है। पात्रो मे चारित्रिक स्थिरता है। राम का चरित्र-गान ही कवि का अभीष्ट रहा है। प्रारम्भ मे राम का परब्रह्म रूप प्रगट हुआ है। वे अनन्त, अथाह और अभव हैं। 'जोति सरूप' होते हुए भी 'अलेख' है। उनके अनन्त सिर, अनन्त हाथ और अनन्त पैर है। स्वय वेद स्वरूपी है। अहल्या के उद्धारक और यज्ञ रक्षक है। वे मानव भी हैं। धनुष-बाण हाथ मे लेकर सरयू नदी के किनारे शिकार खेलते है तो ताडका-वध कर ऋषियज्ञ को सम्पन्न बनाते है। वे रूपवान है। कानो मे कुण्डल और गले मे वनमाला धारण करते है। वीरता मे भी सब से बढकर है। शिव-धनुष को कुसुम की तरह उठाकर तिनके की तरह तोड ही नही देते बल्कि स्वर्ग-पर्यन्त अपनी धाक जमा देते हैं। उनमे वीरोचित शालीनता एव विनय है। विश्वामित्र के साथ यज्ञ-रक्षार्थ जाते हुए वे बडो को प्रणाम करते हैं और परशुराम को विवाहोपरान्त आते देख कर स्वय नमस्कार ही नही करते बल्कि 'सब अनुजन सो यो कहया, निमसकार करि लेह।' वे ईश्वरलीला मे जितते पटु हैं मानव-लीला मे उतने ही तन्मय। सीता के प्रति उनमे पूर्ण निष्ठा एव प्रेम भावना है 'बरत गहयो श्री रामजी, और न परसो नारि।' जुआ मे जानकी को जयी बनाने के लिए स्वय हार जाना मानव-लीला का ही प्रमाण है। वीरता, प्रेमपरायणता और कर्तव्य भावना का मूर्त रूप है राम का लोक-लोकोत्तर व्यक्तित्व।

दशरथ आदर्श राजा के रूप मे हमारे सामने आते हैं। उनके राज्य मे जड-चेतन सभी सुखी हैं। चतुर्वर्ण व्यवस्था होते हुए भी जाति और धर्म-भेद नही है। शूद्रो को धर्माराधन की ही स्वतन्त्रता नही है बल्कि मोक्षाधिकार भी है। दशरथ बडे दानी और दयालु हैं। प्रजा की रक्षा करना ही उनका धर्म है। उनके राज्य मे न 'चोर-नाहर' का डर है न न्याय-नीति को खतरा है। सभी सत्यवादी हैं। 'रिखन को धूम तोसे नृप सो रहत है' कह कर विश्वामित्र जब उनसे यज्ञ रक्षार्थ राम-लक्ष्मण की याचना करते है तो वे बिना किसी सकोच के उन्हे साथ कर देते हैं।

परशुराम खलनायक के रूप मे हमारे सामने आते हैं। वे तपोपुज, वीर और क्रोधी है। भयकर इतने कि 'परसराम के दरस तैं, भय उपज्यो सबहीन।' वे क्षत्रियो के लिये काल है। शिवजी के परमभक्त होने के कारण ही शिव धनुष को भग करने वाले राम का वे सहार करना चाहते है। पृथ्वी को इक्कीसबार वे क्षत्रियो से रहित कर चुके है। ब्राह्मण होकर भी वे ब्राह्मण नही हैं इसी लिये भारत कहते हैं 'वेद पढो मूरकाल जपो अरु, ओरु करो तप तीरथ सोई' और शत्रुघ्न तो स्पष्ट कह देते है वे मातृघाती, पापी और परसाधारी है। अन्त मे क्रोध कर ही वे रह जाते हैं।

विश्वामित्र मे ऋषि की गम्भीरता एव दया–भावना है, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न मे रघुकुलोचित वीरता और साहस है। सीता सौंदर्य और प्रेम की देवी है। इसके अतिरिक्त अन्य स्त्रियाँ भी है जो स्वागत-सत्कार मे सहयोग देती है।

कलापक्ष ·

महेसदास का डिंगल और पिंगल दोनो भाषा–शैलियो पर समान अधिकार है। प्रस्तुत कृति मे प्रारम्भ के ४५ पद्य राजस्थानी मे वेलियो छद मे तथा अन्त के ४६ से १२७ पद्य व्रज–भाषा मे लिखे गये है। भाषा माधुर्य और ओज गुण सम्पन्न है। वह स्वच्छद गति से प्रवाहित होती है। यथा—

डिंगल

कचण मै कोट कागूरा कचण, कचण बूरजि ने कचण कपाट।
कचण पोलि माहा दीरघ कहि, हद कचण आलीबन्द हाट ।।१४।।

पिंगल

ब्रह्मा जू के मूख च्यार तिनते प्रगट भये,
वेद को सरूप च्यार पूरन अरथ है।
धरम अरथ च्यारि काम फल मोक्षि दाता,
तिन मै चतुरभुज माहा समरथ है।
कहत महेस माहाराज के कुमार माहा,
राम लखिमन सत्रघन जू भरथ है।
कवसल्या केकई सूमित्रा के सूफलदाता,
तिनै देखि देखि सूख लहै दसरथ है ।।४६।।

कही कही शब्दो को विकृत किया गया है। यथा—

ऊदोत भान वसय । अनेक भान अ सय ।।
सरीर स्याम सुन्दरम् । अजाद रूप मिंदर ।।
जलज नील सजल । समद घोष बीजूलं ।।
सूगद केसरी सनै । पगी पगा झगा पनै ।।७४।।

डिंगल भाषा के प्रयोग मे सर्वत्र वयण सगाई शब्दालकार आया है। उसके साधारण और असाधारण दोनो प्रकार देखे जा सकते हैं।

साधारण :

(१) जोति सरूप अलेख जको (१७)
(२) रूपारा केई केई सोनारा (२२)
(३) वृन च्यारि बसै दरसै नित गोविंद (२७)

असाधारण

(१) बीभछ *सात* अद्‌भूते *सूणीया* (४)
(२) *निज* षोडस दान सदा *नित* प्रति व्रत (४१)

यमक का प्रयोग चार जगह हुआ है

(१) *नोख नोख* केई *नोख* नखे (२१)
(२) तोरित *पिनाक नाक* नाथ थहरानो है (६०)
(३) सोन्नन की *सूधा* तै *सूधारियत* धौलहर (६४)
(४) *मगल* को भाजन लै *मगल* ऊचारती (७६)

अर्थालकरो मे उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, भ्राति, सन्देह, व्यतिरेक आदि प्रयुक्त हुए हैं।

उपमा का प्रयोग लगभग १० जगह हुआ है। राम की सुन्दरता पर मुग्ध होकर उन्हे 'काम की सी मूरति' कहा गया है तो वीरता पर रीझ कर कहा है—

'तनक सी बेर माझ धनुष चढाय अैचि,
जनक-जनक ये तिनुका जैसे तोरि है'

रूपकालकार भी लगभग ८ स्थलो पर प्रयुक्त हुआ है। राम के विवाह के समय स्नानोपरात शृगार करने पर कवि को लगता है-

"सुन्दर सरोज द्रग स्याम के तनत पेच भ्रकुटी तनी।"

चरण कमलो मे जूतियाँ सुशोभित हैं-

'जरी जराय मोच री पदारविंद सो धरी।'

परशुराम क्रोधित होकर राम से कहते हैं—

'मेरे तामस उदधि मै कीनो चाहो लोप।'

उत्प्रेक्षाएँ अनूठी हैं। स्वर्ण-प्रासाद के सौन्दर्य का वर्णन देखिये—

'जगमग जिण जेह रतनमय जाली, जग चखि प्रगटथि अतै जौट।
नग नग मै प्रतिबिंब नरखता, कोटि भाण ऊगा मधि कोट॥

मिथिला के मण्डप मे बैठे राम-लक्ष्मण मानो करोडो सूर्य-चन्द्र है—

मिथिला के मण्डप मै रिखि सग रामचन्द्र,
लछिमन आय मानो रवि ससि कोटि है।

धनुष-भग होते ही कवि को लगता है—

'हेमगिर गिर्‌यो मनौ आसमान फाट् है।'

कमल-पत्रो पर स्थित जल-बिन्दुओ को लेकर भ्राति अलकार की सुन्दर सृष्टि हुई है—

पडवणि कहि पत्र सीस एम जल पूछि, जाणि रजत पारद ऊजल।
राजहस करि जाणि रालिया, फोडि सीप मुकतास फल ॥३७॥
ऊपमा कवि दुतीय ऐणि जिण आणी, सूज अ म तणा ढूलत सूढाल।
भ्रम पडीया यम सोतीया भेलै, मेलै पखणि चच मराल ॥३८॥

भाषा को सशक्त और रोचक बनाने के लिए यत्र तत्र मुहावरे भी आये हैं—

(१) बूरो मुख करि चले गाठि को सो खूटिगो।
(२) भृगुनन्दन तब कोपिकै कीनै रातै नैन।

छन्द :

डिंगल भाषा के साथ वेलियो छद प्रयुक्त हुआ है तथा व्रज-भाषा के साथ कवित्त, छप्पय, नराच, चौपाई, दोहा, निसाणी, सवैया, त्रोटक, कु डलिया आदि विविध छ द व्यवहृत हुए है।

(५) महादेव पार्वती री वेलि[1]

महादेव पार्वती री वेलि चारणी-वेलि-साहित्य की महत्वपूर्ण कृति है। पृथ्वीराज की वेलि के अनुकरण पर लिखी गई इस साहित्यिक कृति के मूल्याकन की महती आवश्यकता है। इसे 'हर पार्वती री वेलि' के नाम से भी अभिहित किया गया है। इसमे महादेव और पार्वती की कथा वर्णित है।

कवि-परिचय :

वेलिकार ने अपनी कृति मे न तो रचना-स्थान का उल्लेख किया है न रचना-तिथि का। आत्म-परिचय भी नही सा दिया है। अन्त मे केवल इतना कहा है—

अकल सकल अवगति अपरपर, रामेसर मोटउ राजान।
किसनउ कहइ कृपा हिव कीजइ, वड दातार वधारण वान ॥३८२॥

इससे यह सकेत मिलता है कि कवि का नाम किसनउ (किशना) है। पर यह किशना कौनसा है ? इस बारे मे अनुमान ही किया जा सकता है। राजस्थानी-साहित्य मे किशना नाम के दो कवि अधिक प्रसिद्ध हैं

१—(क) मूल पाठ मे वेलि नाम आया है— सिव सकति तणी ताइ वेलि वर्ण विसु, सफल जनम करिवा ससार (२)
(ख) प्रति-परिचय — इसकी हस्तलिखित प्रति अनूप सस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर के गुटके न० ६८ मे सुरक्षित है। सपूर्ण गुटका ११७ पत्रो का है। प्रस्तुत वेलि केवल २४ पत्रो मे ही लिखी गई है। प्रत्येक पृष्ठ मे १५ पक्तियाँ हैं और प्रत्येक पक्ति मे २४ अक्षर है। प्रति का आकार ६¼"×४¾" है।

(१) आढा किशना- आढा दुरसा का सबसे छोटा पुत्र ।
(२) आढा किशना- उक्त किशना के वशज दूल्ह का तृतीय पुत्र[1] ।

दुरसा का समय सवत् १५६५ से सवत् १७०८ माना गया है[2] । डा० मोतीलाल मेनारिया ने सत्रन १५६२-१७१२ माना है[3] । अत पहले किशने की विद्यमानता सत्रहवी शती के उत्तरार्द्ध मे स्पष्ट है । दूसरा किशना मेवाड के महाराणा भीमसिंह (शासन-काल वि० स० १८३४-८५)[4], का आश्रित कवि था जिसने 'भीमविलास' और 'रघुवर जस प्रकास' जैसे विशाल ग्र थ लिखे । 'भीमविलास' की रचना सवत १८७९ मे की गई और 'रघुवर जस प्रकास' की सवत् १८८१ मे । अपनी वेलि मे किशना ने यद्यपि रचना-काल नही दिया है पर अनूप सस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर मे जो प्रति[5] प्राप्त हुई है वह सवत् १७०२ के लगभग लिपिबद्ध की गई है । अत यह तो मानना ही पडेगा कि रचना-काल निश्चित रूप से लिपिकाल के पहले का है । इस दृष्टि से दूसरा किशना– जिसका रचना-काल १९ वी शती का उत्तरार्द्ध रहा है– प्रस्तुत वेलि का रचयिता नही हो सकता ।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या वेलिकार किशना सचमुच दुरसा का पुत्र आढा किशना ही है ? श्री नरोत्तमदास स्वामी ने दोनो को एक व्यक्ति मानकर लिखा है आढा किसना ने 'हर पार्वती री वेलि' की रचना कर पृथ्वीराज की क्रिसन रुक्मणी री वेलि की सफल स्पर्धा की[6] । जिसे डा० हीरालाल माहेश्वरी ने विचारणीय बतलाया । उनके अनुसार दोनो व्यक्तियो को एक मान लिए जाने मे सन्देह है । यह वेलि शुरू से अन्त तक जैन-शैली से प्रभावित है, और यह असभव है कि चारण-शैली के सुप्रसिद्ध कवि आढा दुरसा के पुत्र जो प्राय जीवन भर अपने पिता के पास रहे, विरासत मे मिलो प्रचलित चारण-शैली को छोडकर एक बारगी, जैन-शैली मे रचना करे । अनुमान है कि कवि किसनउ जैन-शैली से प्रभावित कोई जैनेतर-चारणेतर कवि थे । इस 'वेलि' की विषय वस्तु के आधार पर कवि जैनेतर प्रतीत होता है, और शैली के आधार पर चारणेतर । सभवत ये ब्राह्मण थे[7] ।

१—दुरसा घर किसनेस, किसन घर सुकवि 'महेसुर'
सुत 'महेस 'खूमाण' 'खान साहिब' सुत जिणघर ।
'साहिव' 'घर' 'पनसाह', 'पना' 'सुत' 'दुलह' सुकव पुण ।
'दुल्ह' घरे पटपुत्र, 'दाने', 'जस', 'किसन' बुधोमण ।
'सारुप', 'चमन', मुधर, ऊतन, प्रगट नगर पाचेटिये ।।
चारण जाती आढा विगत, 'किसन' सुकवि पिंगल कियो ।।
रघुवरजसप्रकास स० सीताराम लालस पृ० ३४०
२—सुकाव्य सजीवनी, प्रथम भाग श्री शकरदान जेठी भाई देथा
३—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १७८-१८५
४—उदयपुर राज्य का इतिहास भाग २ पृ० ६७३, ७१९ तथा पृ० २७७-२७८
५—हस्तलिखित प्रति न० ६८
६—राजस्थानी साहित्य एक परिचय, पृ० ३०
७—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १९४

डा० माहेश्वरी का अनुमान किसी ठोस आधार पर आधारित नही प्रतीत होता। वेलि मे कही भी जैन प्रभाव लक्षित नही होता। 'अइ' 'अउ' वर्तनी को देखकर उनको ऐसा भ्रम हुआ है पर सवत् १६०० के पूर्व 'अइ' 'अउ' ही लिखा जाता था, 'अै' 'अौ' नही। स० १६०० के लगभग 'अै' 'अौ' लिखे जाने लगे पर बहुत दिनो तक दोनो रूप चलते रहे। त्रिपुर सु दरी री वेलि (प्रति स० १६४३ की) चारण कवि की रचना है पर उसमे भी नीचे लिखे रूप पाये जाते है—

'सहारउ', 'करइ', 'फलइ', 'भणइ', 'तेणइ', 'नासइ',

'पूरइ', सचरई', 'पामिइ', 'पसाइ' आदि। पृथ्वीराज की वेलि की पुरानी प्रतियो मे भी ऐसे रूप मिलते है।

डा० मोतीलाल मेनारिया ने राजस्थानी साहित्य के पूर्व मध्य काल (स० १४६०-१७००) के फुटकर कवियो मे किशनदास का उल्लेख किया है और कोष्ठक मे (स० १६६०) लिखा है[1]। हमारा अनुमान है कि यह किशनदास दुरसा का पुत्र और हमारी वेलि का प्रणेता किशना ही है। स० १६६० कवि का रचना-काल रहा है। मृत्यु तिथि का उल्लेख एक प्रति[2] मे इस प्रकार हुआ है—

'इणे सावत्ते काल की यौ— सा० १७०४ रा मागसर बदी १४ आढै कीसनै पचेटीअै'।

किशन कवि होने के साथ साथ तलवार का भी धनी था। यह महाराजा गजसिह (शासन-काल वि० स० १६७६-९५)[3] की फौज मे मुसाहब था। दो तीन युद्धो मे उसने वीरता प्रदर्शित की थी। महाराजा गजसिह ने उसकी कवित्व-शक्ति पर मुग्ध होकर लाखपसाव प्रदान किया था जिसका उल्लेख कविराजा श्यामलदास ने अपने वीर विनोद मे किया है। लाखपसाव मे महाराजा ने पाचेटिया सोजत परगने का गाव स० १६७७ मे प्रदान किया जो अभी तक उसके वशजो के अधिकार मे चला आता है। इसके अतिरिक्त महाराजा ने सवत १६७९ मे जोधपुर परगने का हिंगोलो खुडद नामक गाव भी उसे प्रदान किया। उसके कई फुटकर गीत भी मिलते है[4]।

रचना-काल :

इस वेलि की जो प्रति मिली है। उसमे न तो रचना-तिथि का उल्लेख है न अन्त मे लिपिकाल ही दिया गया है। जो गुटका[5] मिला है उसमे इस वेलि के

१—राजस्थानी भाषा और साहित्य डा० मेनारिया, पृ० १९२
२—प्रति स० ९६ अनूप सस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर
३—जोधपुर राज्य का इतिहास प्रथम खण्ड, पृ० ३८८ व ४०७
४—डिंगल गीतकार सीताराम लालस (अप्रकाशित)
५—अनूप सस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर ह० प्र० न० ६८

अतिरिक्त पाँच और रचनाएँ भी लिपिबद्ध की गई हैं। इनमे से बैताल पच्चीसी के अन्त मे पुष्पिका दी है 'इतिश्री वेताल पचीसी चरित्रे राजा श्री विक्रमादीत अग्रे वेताल कवित पाचीस कथा चउपई गाथा सपूर्ण ।। ग्र थाग्र १२८८।। सर्व सवत् १७०२ वर्षे आसाढ वदि १३ दिने श्री बीकानेर मध्ये।' इससे स्पष्ट है कि महादेव पार्वती री वेलि सवत १७०२ के पूर्व रच ली गई थी। डा० मोतीलाल मेनारिया ने कवि आढा किशना का रचनाकाल स० १६६० माना है[1]। अत अनुमान है कि स० १६६० और १७०० के आसपास ही इसकी रचना की गई हो।

रचना-विषय :

प्रस्तुत वेलि ३८२ छदो की रचना है। इसमे महादेव और पार्वती की कथा वर्णित है। पूर्वार्द्ध मे सती की कथा तथा दक्ष-यज्ञ का वर्णन है। कथा-सार का विश्लेषण निम्नलिखित शीर्षको मे किया जा सकता है—

(१) *मगलाचरण*:—प्रारम्भ के दो छदो मे परमेश्वर, सरस्वती, और परमगुरू को हाथ जोडकर कवि निवेदन करता है कि हे दीनदयाल आप मुझ पर दया करे। मै बडी भक्ति के साथ आपका गुणगान करता हूँ। बावन अक्षरो (१६ स्वर और ३६ व्यजन) की ही पक्तियाँ बांधकर मै अपने जन्म को सफल बनाने के लिये शिव-पार्वती विषयक वेलि का वर्णन कर रहा हूँ। (१-२)

(२) *हरि[2]-महिमा* :—जो उत्कट प्रेम भावना के साथ हरि का स्मरण करते हैं उन हरि दासो का मै दास हूँ। हरि की महिमा अपरपार है। वे ही हृदय मे सर्व प्रथम आशा को उत्पन्न करते है और बाद मे उसे फलित करते हैं। वे ज्योति-स्वरूप होते हुए भी ससार मे अलोप है। उनके मुकुट का प्रकाश अनन्त करोड ब्रह्माड तक व्याप्त है। वे निर्गुण और सगुण दोनो हैं। निर्गुण रूप मे वे अज, अखड और माता-पिता विहीन हैं। सगुण रूप मे उनका व्यक्तित्व विराट और अलौकिक है। उन्होने बाल्यावस्था को कसकर कछोटे से बाध दिया है। सातो समुद्र उनकी प्रदक्षिणा करते है और आकाश उनके वैभव की पताका है। वासुकि कठ-भूषण है और वृषभ है वाहन। तपस्या का तेज बारह सूर्यो की तरह जाज्वल्यमान है। प्रलय-काल मे दिग्पाल और धर्म-वृषभ उन्ही के द्वार पर सुरक्षा पाते है। जब वे प्रसन्न होते हैं सभी को अपनी ओर आकर्षित कर लेते है और अप्रसन्न होने पर बडे बडे दैत्यो का सहार करने मे भी नही चूकते। (३-२३)

१—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १६२

२—प्रति मे महादेव के लिये जगह जगह 'हरि' शब्द का ही प्रयोग किया गया है।

(३) *राजासगर की अश्वमेध-यज्ञ-रचना :*—राजा सगर ने अश्वमेघ-यज्ञ के लिये तीनो लोको मे घोडा छोडा और उनके साठ हजार वीर पुत्र रक्षार्थ उसके पीछे पीछे चले। इस घटना से इन्द्र भयभीत हो उठा और जाकर ब्रह्मा से पुकार की। ब्रह्मा ने रक्षा का उपाय बतलाते हुए कपिल मुनि के आश्रम मे जाकर घोडे को बाध देने की सलाह दी। कपिल मुनि के आश्रम मे घोडे को बधा देख घोडे की तलाश मे परेशान सगर के ६० हजार पुत्रो को मुनि पर बडा क्रोध आया और वे एक ही साथ उन पर आघात करने लगे। इससे क्रुद्ध होकर कपिल मुनि ने तमोगुण रूपी तरकस साधकर उन्हे भस्मीभूत कर दिया, और कहा कि तीसरी पीढी मे उद्धार होगा (२४-३२)

(४) *भागीरथ की तपस्या और गंगावतरण* —तीसरी पीढी मे भागीरथ का जन्म हुआ जिसने वश का उद्धार करने के लिए भिक्षावृत्ति पर निर्वाह करते हुए एकान्त स्थान मे गगा का ध्यान किया। गगा ने प्रसन्न होकर वरदान दिया कि हिमालय और शिव की आराधना करो–जो पृथ्वी पर पडती हुई मेरी अजस्त्र धारा को झेल सके। इस पर माता की आज्ञा लेकर भागीरथ कैलाश पर्वत पर पहुँचा और वहाँ बारह वर्ष निराहार-निर्जल तपस्या की। इस कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ने मस्तक झुकाकर चन्द्रभाल पर जटा के माध्यम से वेगवती गगा की धारा को ग्रहण किया। (३३–४३)

(५) *सृष्टि-रचना* —परम प्रभु शिव ने अपनी नाभि से कमल और कमल से ब्रह्मा को प्रकट किया तथा ब्रह्मा को अपने तुल्य बनाकर सृष्टि रचना के वरदान स्वरूप उसके सिर पर दोनो हाथ रखे। तब ब्रह्मा ने दक्ष को राजा रूप मे प्रगट किया और उसके द्वारा सृष्टि-रचना का कार्य आरम्भ हुआ। (४४-४६)

(६) *सती का जन्म और उसका सौन्दर्य वर्णन :*—पूर्वी देश मे अबापुर नामक नगर मे राजा दक्ष के यहाँ गर्भवास के पूरे दस महीने व्यतीत न होने पर भी एक दिन और दस पलो मे ही सती का आविर्भाव हुआ। सती जन्म से ही बडी रूपवान थी और प्रहर-प्रहर मे उसकी काति बढती जाती थी। एक ही पक्ष मे वह पूर्ण युवती बन गई। उसकी मुख–श्री के आगे बारह सूर्यों का प्रकाश मन्द था। उसकी पगथलियो पर अनेक रेखाएँ चित्रित थी। चरणो मे पहने आभूषण सर्प–मणियो की तरह झिलमिलाते थे। वह चतुर्भुजा देवी के रूप मे इस प्रकार सुशोभित होती थी मानो हिमालय पर्वत के शिखर पर वसन्त-ऋतु अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य के साथ फैल गई हो। (४७ से ७४)

(७) *सती के विवाह के लिए दक्ष का नारियल भेजना* —यद्यपि दक्ष शिव को पागल समझता था और सती का सम्बन्ध उनके साथ नही करना चाहता था।

पर परिवार के लोगो की बात का निरादर न करने की भावना से पुत्री के स्नेह मे पडकर उसने अनिच्छापूर्वक प्रधानो के साथ नारियल भेजा। प्रधान मन मे उत्साह और चाह भर कर कैलास पर्वत की ओर चले। कैलास पर्वत पर अठारह प्रकार के वृक्ष फल-भार से झुके हुए थे और विविध पक्षी ईश्वर का नाम उच्चारण कर रहे थे। इन पक्षियो ने प्रधानो से उनके आने का कारण पूछा और कहा कि इन वृक्षो के आगे एक कुंड है जहाँ अनेक देवता स्नान करने आते है उनसे ज्ञान के साथ वार्तालाप करने पर प्रसन्न होकर वे तुम्हे रथ पर चढायेंगे और अन्तर्यामी प्रभु शिव पहले ही दिन दर्शन दे देंगे। पक्षियो से मार्ग-दर्शन पाकर प्रधान कैलास पर्वत पर पहुँचे जहाँ शिव समाधिस्थ थे। उनके पहुँचते ही बारह युगो के बाद शिव ने अपनी समाधि छोडी और प्रधानो ने उनके चारो ओर प्रदक्षिणा देकर नारियल भेट किया जिसे शिव ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। (७५-११०)

(८) *विवाह की तैयारी, बरात का प्रस्थान और स्वागत* —शिव के प्रधानो के यह पूछने पर कि शिव किस दिन बरात लेकर आयेंगे दक्ष के प्रधानो ने दक्ष का सन्देश कह सुनाया कि प्रभु के लिए लग्नो का क्या पूछना ? वे तो कभी भी अम्बापुर पधार सकते हैं, उनके लिये तो आठो ही प्रहर शुभ लग्न मुहूर्त्त हैं। शिव के यहाँ विवाह की तैयारियाँ प्रारम्भ हुई। चारो ओर कुकुम पत्रिकाएँ भेजी गई। सर्व प्रथम ब्रह्मा और विष्णु पधारे। इन्द्रादि देवता और अन्य अधिपति अपने सम्पूर्ण आडम्बर के साथ एकत्रित हुए। हाथियो का इतना समूह इकट्ठा हो गया कि उसके पदाघात एव भार से सारी पृथ्वी थिरक उठी। शिव ने अनन्त द्रव्य का दान करते हुए नगाडो की गडगडाहट के बीच दूल्हे का रूप धारण कर वृषभ की सवारी की। उनके दोनो ओर बादलो रूपी सेना त्वरित गति से चल रही थी और शरीर पर लिपटे हुए फणीश उमग से फुत्कार कर रहे थे। बरातियो के अपार समूह को देख कर अगवानी करने के लिए बधाईदार आये। राजा दक्ष अपना परिग्रह लेकर पैंमारे के लिए आगे बढा। शिव ने मृगत्वचा धारण कर रखी थी। गले मे मुण्डमाला और शरीर पर भस्म का लेप था। उनके इस विचित्र रूप को देखकर नगर-निवासी तरह तरह की टिप्पणियाँ कर रहे थे। कोई राजा दक्ष को उपालभ दे रहा था, कोई कर्मों को दोषी ठहरा रहा था। शिव के साले की स्त्रियाँ तालियाँ बजा बजा कर हँस रही थी और कह रही थी कि 'वर तो बुड्ढा है और वधू बालिका है'। शिव की सास इन बातो को सुन-सुन कर विद्रोह प्रकट कर रही थी। सुन्दरियो ने मगल कलशो की आरती उतार कर शिव को बधाया और मगल-गीत गा-गाकर बरात का स्वागत किया। (१११-१३५)

(९) *सती का शृगार करना* —सती स्नानोपरान्त वस्त्राभूषण धारण करने लगी। पैरो मे उसने चाहड पहना तो हाथो मे चन्दवाही चूडा। नेत्रो मे काजल

आजा और लिलाट पर कुंकुम का तिलक दिया। हृदय पर आंवले के समान वडे वडे दाने वाले मोतियो का हार भूल रहा था तो कठ मे कंठसरी सुशोभित हो रही थी। (१३६–१४६)

(१०) *सती और शिव का विवाह* —सती और शिव दोनो माया के आगे आकर बैठे। इसी समय राजा दक्ष के सामने जाकर माया बोली 'हे राजा तुम रूखे रूखे क्यो दिखते हो ? परीक्षा करके देखो' तो सारा अन्त पुर आश्चर्य मे डूब गया। विवाह-वेदिका बडी सुन्दर थी। स्वर्ण-कलशो के इक्कीस खण्ड वनाये गये थे और कुन्दन की रस्सी से बाँस बाँधे गये थे। शिव मृगत्वचा बिछा कर बैठे और वाम पार्श्व मे बैठी सती। आगे आठ गण खडे रहे। विवाह संस्कार सपन्न कराने के लिए ब्राह्मण बैठे। नवग्रह और दसो दिग्पाल विधानानुसार व्यवहार कर रहे थे। तप पूत शिव ने अग्नि को साक्षीभूत बना कर सती के हाथ मे अपना हाथ देकर उसे ग्रहण किया। विवाहोपरात सभी डेरे पर आये। प्रथम मिलन के समय ही सती ने जान लिया कि स्वामी से उसका पूर्वजन्म का प्रेम सम्बन्ध है। सती की बात मान कर शिव ने अपना पूर्व प्रशसित दूल्हे का रूप धारण कर लिया। दक्ष को उसके प्रधानो ने बहुत समझाया कि शिव अनाथो के नाथ है, वेद और कुराण के प्रणेता है पर अभिमानी दक्ष के मन मे कुछ भी समझ न आया और वह अपने दामाद शिव मे मन-मुटाव कर बैठा। शिव ने इस रहस्य को जानकर भी किसी के आगे प्रगट नही किया। दस दिन तक दक्ष के यहाँ रह कर वे सकुशल कैलास लौट आये। कैलास पर वर-वधू को मोतियो से वधा कर आनन्दोत्सव मनाया गया जिससे देवता तक मुग्ध हो गये। (१४७-१६८)

(११) *दक्ष का यज्ञानुष्ठान* —दक्ष ने एक यज्ञ रचा जिसमे ससार के कोने कोने से यज्ञ-विशेषज्ञ बुलाये गये। नाग-लोक, स्वर्गलोक और मृत्यु-लोक के अधिपति भी आमन्त्रित किये गये। ब्रह्मा और विष्णु ससम्मान बुलाये गये पर शिव को आमन्त्रण नही भेजा गया यह रहस्य भोले शिव ने जान लिया। (१६९-१७१)

(१२) *सती का आग्रह कर यज्ञ में जाना और भस्म होना* —सती यज्ञ मे सम्मिलित होने के लिए शिव से आग्रह करने लगी। शिव ने तो यह कह कर टाल दिया कि विना निमन्त्रण के दूसरो के घर कैसे जाया जा सकता है ? पर सती उनकी वात न समझ कर यज्ञ की चिता की आहुति वन कर जाने का उपक्रम करने लगी। उधर यज्ञ मे शिव की उपस्थिति न देख विष्णु, ब्रह्मादिक देवता यह कहते हुए उठ चले कि 'शिव के अभाव मे यह यज्ञ पूर्ण नही होगा।' इस घटना से राजा दक्ष चिंतित हो उठा उसी समय नदीगण पर चढी हुई, आठ गणो को आगे लेकर सती के आने की सूचना मिली।

दक्ष ने सती के लिए एक शब्द भी मुँह से नही निकाला न किसी प्रकार का आदर दिया, उल्टे पीठ फेर कर बैठ गया। माता ने थोडा सा सम्मान किया। दक्ष द्वारा पति शिव की निन्दा सुनकर सती का हृदय ग्लानि और पश्चाताप से भर गया। उसने निश्चय किया कि जहाँ मान और मन भग होता है वहाँ मर जाना अच्छा है। अपने गणो को उत्साहित कर अन्त मे सती ने यज्ञ की आग मे अपनी आहुति देकर दूसरे यज्ञ की रचना करदी। (१७२-१९०)

(१३) *गणों द्वारा दक्ष की सेना से युद्ध* —सती के भस्म होने की घटना से ब्रह्माड और पाताल के सातो खण्ड एक साथ सशकित हो उठे। सती के गण दक्ष-सेना से युद्ध करने लगे। चारो ओर रक्त बहने लगा। मस्तक गिर गिर कर पडने लगे। घडे लुढकने लगी। वीर अप्सराओ के साथ नृत्य करने लगे। यो यज्ञ का विध्वस करते हुए आठो गण पीछे सरके। (१९१-१९९)

(१४) *वीरभद्र की उत्पति और यज्ञ-विध्वस* —इसी समय शिव ने सुना कि सती यज्ञ मे भस्म हो गई और गण युद्ध से पीछे हट गये तो उनके क्रोध की सीमा न रही। उन्होने ललकार कर प्रतिज्ञा की 'मैं यज्ञ को जड से उखाड दूँगा' और अपनी त्रिकूट जटा से पैदा किया महान यशस्वी योद्धा वीरभद्र को। वीरभद्र ने अपने पदाघात से पृथ्वी को सातवे पाताल मे पैठा दिया। सारा ब्रह्माड काँप उठा। दक्ष की सेना भाग खडी हुई पर वीरभद्र ने त्रिविध (अश्वारोही, गजारोही, पैदल) सेना को घेर लिया। शत्रुओ के मस्तक पर तलवारे खेल रही थी और शत्रु-काय भाडे की तरह फूट-फूट कर गिर रहे थे। वीरभद्र ने क्रुद्ध होकर दक्ष का वेणीदड पकड लिया और ललकारा युद्ध के लिये। दोनो युद्ध मे जुट गये। लगातार शस्त्राघात से खून खच्चर मच गया। दोनो के शरीर खड्गधाराओ मे झूम रहे थे। वीर योद्धा 'तथई-तथई' की आवाज करते हुए नाच रहे थे। योगिनियो के पात्र रक्त से पहले ही भरे जा चुके थे। भेभरियाँ शत्रुओ के गुदे खा रही थी। वीरभद्र ने अस्थिपजरो का ढेर लगाकर पर्वत तुल्य दुर्ग बना दिया था। दक्ष के शरीर के टुकडे टुकडे कर उसको उसी यज्ञ मे आहुति देकर वीरभद्र ने एक तीसरे यज्ञ की रचना करदी। (२००-२२३)

(१५) *दक्ष को पुनर्जीवित करना* —इस समाचार को सुनकर इंद्र, राजा, नागपति आदि जय जयकार करते हुए शिव से कहने लगे कि हे दयालु अब दया कीजिये। दक्ष को अपने कर्मो का फल मिल चुका। ब्रह्मा और विष्णु ने भी दक्ष के अपराध को क्षमा करने की प्रार्थना की। अन्तत शिव ने दयार्द्र होकर बकरे का माथा लगाकर दक्ष को जीवित कर दिया। (२२४-२३१)

(१६) *पार्वती का जन्म और सौन्दर्य-वर्णन* :—हेमाचल विनोद-क्रीडा करने के लिए अपने सम्पूर्ण अन्त पुर के साथ कैलास-शिखर पर आया। उसकी पत्नी मेना भी उसके साथ आई। दोनो यहाँ बिना पानी के कमल को विकसित होते देखकर आश्चर्य मे डूब गये। वन्दना करके उसके पास गये तो वह कमल यकायक बालिका रूप मे परिवर्तित हो गया। मेना ने उसे छाती से लगा लिया ओर अपने घर ले आई। घर आकर खूब उत्सवादि मनाये। कभी बालिका को पालने मे झुलाया तो कभी गोद मे दुलराया, कभी प्रेमपूर्वक स्तन-पान कराया तो कभी सखियो को एकत्र कर उसका जी बहलाया।

बालिका का शरीर समुद्र की तरह बढने लगा। एक ही दिन मे पूरे वर्ष का विकास होने लगा। बारह दिनो मे ही वह बारह वर्ष की युवती हो गई। नेत्रो मे चचलता आ गई और गति मे मस्ती। ब्रह्मा का ज्ञान भी उसकी सुन्दरता के आगे पराजित हो गया। वह ब्रह्मा के द्वारा निर्मित नही थी वरन् महासमुद्र को मथकर निकाली गई थी। उस पार्वती ने अपनी सौन्दर्य-गरिमा से रूप की मर्यादा बाँध दी थी। (२३२-२४५)

(१७) *पार्वती की विवाह चर्चा* --नाट्य चरित करते हुए नारद हिमालय के यहाँ मेहमान बनकर आये। हिमालय ने आतिथ्य सत्कार कर पार्वती के लिये वर माँगा। इस पर नारद ने कहा 'शिव-पार्वती की जोडी युग युगो तक अचल रहेगी'। (२४६–२५०)

(१८) *पार्वती का शिव-पूजा करना* --शिव-प्राप्ति के लिये पार्वती फूलो से छाब भरकर शिविकारूढ हो शिव-पूजन के लिये चली। विधिवत् पुष्प-जल-धूप आदि से उनकी आराधना कर वह ध्यानस्थ हो गई। लगातार ६ माह तक पार्वती शिव की कठोर सेवा करती रही पर शिव क्षण भर के लिए भी समाधि से विचलित नही हुए। (२५१–२५३)

(१९) *तारकासुर का उत्पात मचाना और देवताओं का विचलित होना* —इसी बीच ब्रह्मा के वरदान से ताडकासुर ने उत्पात मचाकर सभी देवताओ को परेशान कर दिया। इ द्र ने जाकर ब्रह्मा से इस बात का निवेदन किया। ब्रह्मा ने कहा यह दैत्य किसी के हाथ से नही मर सकता। इसे नष्ट करने का बल शिव-पार्वती के सयोग से उत्पन्न पुत्र के हाथो मे ही निहित है। (२५४-२५७)

(२०) *शिव द्वारा कामदेव का भस्म होना* —शिव-पार्वती के विवाह के लिये शिव मे कामोत्तेजना भर उन्हे समाधि से विचलित करने का दायित्व कामदेव को सौंपा गया। वह वसन्त मे वृक्षो के सिर पर अकुरित सैकडो नव मजरियो को चचल वाण बनाकर अपने धनुप पर चढाता तथा विनोद प्रदर्शित

करता हुआ शिव के समीप उपस्थित हुआ। पार्वती पहले ही उनमे उत्तेजना भर चुकी थी। अत कामदेव को आते देख उन्होने अपनी कोप दृष्टि से उसे जलाकर भस्म कर दिया। शिव की समाधि भग हो गई और वे कैलास पर्वत पर चले आये। कामदेव की पत्नी रति को विलाप करते देखकर पार्वती ने आश्वस्त किया और कहा 'तेरा पति कृष्ण पुत्र प्रद्युम्न के रूप मे उत्पन्न होगा। (२५८–२६१)

(२१) *पार्वती का तपस्या करना* —शिव-मिलन की आकाशवाणी से उत्साहित होकर पार्वती माता-पिता को बिना पूछे ही विजया और जया नाम की सहेलियो को साथ लेकर एकान्त तप करने के लिए सघन वन मे चल पडी। वहाँ गुफा के बीच धूणी लगाई। सखियो ने बार बार फलादि लाकर दिये पर उसने नही ग्रहण किये। ईश्वर और पवन के आधार पर ही वह अहर्निश तपस्या मे लीन थी। अखण्ड तप करते हुए ६ मास व्यतीत हो गये। इस बीच उसके मुँह से शिव-शिव ही निकलता रहा। (२६२-२६६)

(२२) *शिव द्वारा पार्वती की परीक्षा लेना* :—एक दिन पार्वती की तपस्थली मे एक वृद्ध ब्राह्मण-याचक आया जिसके लम्बी लम्बी डाढी थी, हाथ मे लकडी थी, शरीर काँप रहा था और गले मे जनेऊ पडी थी। उसने पार्वती से कठोर तपस्या का कारण पूछा। सखियो से शिव-प्रेम की बात सुनकर उसने पार्वती को पागल बतलाते हुए कहा कि वह जिस शिव के लिये इतनी तडप रही है वह दो तीन धोबे धतूरे खाता है, शरीर पर भस्म चढाता है, नशीली वस्तुओ का सेवन करता है और निवास करता है गिरि–कन्दराओ मे। उस वाचाल ब्राह्मण से अपने प्रिय शिव की निंदा सुनकर पार्वती को अत्यधिक क्रोध आया वह वहाँ से उठकर चलने लगी तभी प्रभु शिव ने हँसकर उसका हाथ पकड लिया और सप्रेम कहा कि 'हे पार्वती तूने मुझे अपनी तपस्या से वश मे कर लिया है।' (२६७–२७३)

(२३) *शिव-पार्वती विवाह की तैयारियाँ* —पार्वती के विधिवत् विवाह करने के निवेदन पर शिव ने मगनी के लिये सप्तऋषियो को हिमालय के घर भेजा। हिमालय ने इनका भावभरा स्वागत कर लग्न तय कर दिये। निश्चित समय पर शिव ने अपनी बरात सजाई। उनकी बरात मे तीनो लोको के बडे–बडे अधिपति सम्मिलित हुए। बरात के चलने से इतनी धूल उडी कि आकाश छा गया और नगाडो की गडगडाहट मे मेघ–गर्जन का भ्रम कर सिंह चकित हो उसी ओर झपटने को उद्यत हुए। हिमालय ने सबका हार्दिक स्वागत किया। शिव ने स्नानोपरान्त वस्त्राभूषण पहन दूल्हे का रूप धारण किया। तोरण बाधने के लिये वे वृषभ पर चढे। वृषभ के चारो ओर घूघरे बज रहे थे। उसकी काठी जडाव जटित मखमल की

थी। पुट्ठो पर रत्नो की पाखर पडी थी। सूर्य के घोडे उसके आगे आगे कोतल के रूप मे चल रहे थे। वह बैल सवार होते ही पाँच योजन धनुष पृथ्वी को पार करने लगा। (२७४-३१०)

(२४) *शिव के सौन्दर्य पर स्त्रियों का मुग्ध होना* —झरोखो पर चढकर स्त्रियाँ जगह जगह जाली से सिर निकाल कर शिव को देखती थी। वे अपना अन्य काम काज छोडकर दौड पडती थी। एक स्त्री महावर लगे पैरो से ही दौड पड़ी जिससे सारा रायागण चित्रित हो गया तो दूसरी स्त्री पति से बाह छुडा अस्त व्यस्त अवस्था मे ही छत पर चढ गई। देवताओ की स्त्रियाँ तो इतनी व्यग्र होकर दौडी कि उनके छनछनाते हुए आभूषण छूट गये। कमर-स्थित मेखला--जो हाथो से सँभाली हुई थी—कब गिर पडी प्रेमोन्माद मे पता ही नही चला। ऐसे दिव्य रूपाभ वाले शिव की हिमालय की पत्नी मेना ने आरती उतारी और कु कुम का तिलक कर अक्षत चढाये। (३११–३२५)

(२५) *पार्वती का शृंगार करना :*—पार्वती के स्नान करने पर उसके निर्मल कमल मुख की कला, नगो के हार तथा प्रेम रूपी रत्न के शरीर मे उत्पन्न होने से ससार मे प्रकाश फैल गया। उसने वेणी गूंथी, देवागनाओ तुल्य वस्त्राभूषण-धारण किये। पैरो मे पायल पहनी और अँगुलियो मे बिछिया। हाथो मे चूडा और काकड तो नाक मे नथ। उसकी चूनडी की झाई चारो ओर रंग चुआ रही थी। भौहो के बीच मागलिक तिलक और गले मे सोने का चौसर हार झूले खा रहा था। (३२६-३४२)

(२६) *शिव-पार्वती का पाणिग्रहण संस्कार :*—शिव-पार्वती दोनो माया के आगे आकर बैठे। मडप के चारो ओर माडणे माडे गये। नीले बास और नीलम जटित कलश सजाये गये। आगमज्ञाता ब्राह्मण ने लग्नाचार शुरू कर फेरे दिलवाये। इस अवसर पर इद्र चवर ढोल रहा था, ब्रह्मा धन खर्च कर रहे थे और अप्सराए गीत गा रही थी। ब्रह्मा, विष्णु और देवताओ की प्रार्थना पर शिव ने कामदेव को सजीव करने का आदेश दिया। पन्द्रह दिनो तक हिमालय ने विविध प्रकार से शिव के प्रति भक्ति भावना प्रदर्शित की। अनन्त द्रव्य का दान करते हुए शिव पार्वती सहित शिवपुरी मे प्रविष्ट हुए। (३४३-३५९)

(२७) *शिव का पुत्रवान होना* —समय पाकर शिव के घर पुत्र-रत्न का जन्म हुआ। देवताओ ने एकत्र होकर आनन्दोत्सव मनाया और दुआ दी कि यह पुत्र असुरो का नाश करेगा। ब्रह्मा ने पुत्र का नाम कार्तिकेय रखा। पुत्र-जन्म मे दैत्यराज ताडकासुर का सिहासन काँप उठा। उसने जान लिया कि किसी के घर पर कोई बड़ा सिद्ध पुरुष प्रकट हुआ है। (३६०-३६१)

(२८) *ताडकासुर का आतक* :—इद्र ने यज्ञ रचकर शिव को पार्वती सहित सप्रेम निमत्रित किया। अन्य देवतादि भी एकत्र हुए। तैतीस करोड देवताओ मे से केवल आधे ही उपस्थित थे। शिव ने इसका कारण जानना चाहा। देवताओ ने बतलाया कि ताडकासुर ने बडा आतक फैला रखा है। दैत्य और देवता उसकी प्रजा होकर रह रहे है। उन्हे बिना उसकी आज्ञा के कही आने जाने की स्वतन्त्रता नही है। इस सवाद को सुनकर शिव ने अपना पिनाक उठा लिया। ब्रह्मा ने कहा कि यदि आपका पुत्र कार्तिक स्वामी देवताओ का सेनापति बनकर युद्ध करे तो उसका नाश हो सकता है। शिव ने पार्वती की सहमति लेकर पुत्र को युद्ध करने की आज्ञा दे दी। (३६२-३७०)

(२९) *सुर-असुर-युद्ध* :—कार्तिकेय ने रणभेरी बजाई। दैत्यो का देश दहल उठा। देव-सेना के आ पहुँचने पर युद्ध आरभ होगया। दैत्य और देवता एक दूसरे पर तलवारो का प्रहार करने लगे। दैत्यराज ताडकासुर गाल बजाता हुआ अपने समान आकाशस्पर्शी लाखो वीरो को साथ लिए हाथियो को धकेलता हुआ, पहाडो को ठेलता हुआ सामने आया। कार्तिकेय ने धनुष उठाकर उसका अन्त कर दिया। जो दैत्य सामने आये वे नष्ट कर दिये गये और जो शरण मे आये वे बचे रह गये। असुरो के आतक से देवताओ को मुक्ति मिल गई। सर्वत्र जीत के नगाडे बजा बजाकर आनन्दोत्सव मनाया गया। (३७१-३८१)

(३०) *उपसहार* :—किशना कवि कहता है कि हे रामेश्वर शिव! आप राजाओ के राजा, बडे दातार, शोभा बढाने वाले निराकार ब्रह्म हैं। मुझ पर कृपा करे। (३८१-३८२)

कवि ने पृथ्वीराज कृत 'क्रिसन रुक्मणी री वेलि' से प्रभावित होकर इस वेलि की रचना की है। काव्य की कथा का आधार मुख्य रूप से 'शिव पुराण' रहा है। 'कुमार सभव' का आशिक प्रभाव उत्तरार्द्ध मे देखा जा सकता है। प्रधान कथा शिव-पार्वती से ही सबधित है। पार्वती की कथा मे सती की कथा को समुचित स्थान दिया है। वही कथा का पूर्वार्द्ध भाग है। कालिदास ने 'कुमार सभव' मे सती-प्रसग को नही उठाया है जबकि प्रस्तुत वेलिकार ने इस प्रसग का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। प्रासगिक-कथाओ मे राजा सगर के अश्वमेध यज्ञ की कथा, कपिल मुनि की कथा, भागीरथ और गंगावतरण की कथा, दक्ष और उसके यज्ञानुष्ठान की कथा तारकासुर की कथा आदि का समावेश किया जा सकता है। ये विभिन्न कथाएँ मुख्य कथा को किसी न किसी रूप मे सहायता पहुँचाती है। सती को पार्वती का ही पूर्व रूप समझने के कारण दक्ष और उसके यज्ञ की कथा का औचित्य तो सिद्ध हो सकता है पर राजा सगर और भागीरथ की कथा का मुख्य-कथा से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं दिखाई देता। कथानक का धरातल तो बहुत

व्यापक हो गया है पर कवि आगे चलकर उसे सँभाल नही पाया है। कथा-प्रसग एक के बाद एक छूटता चला जाता है।

वेलि का उठान महाकाव्योचित गरिमा को लेकर हुआ है। प्रारम्भ मे मंगलाचरण[1] करते हुए शिव की महिमा[2] का विशद वर्णन किया गया है। कवि की दृष्टि शिव के अलौकिक व्यक्तित्व पर विशेष रही है पर लौकिक व्यक्तित्व भी जगह जगह प्रगट हुआ है। जहाँ वे अप्रगट है वहाँ ईश्वर है और जहाँ प्रगट है वहाँ लौकिक पुरुष।

काव्य की कथा के दो भाग स्पष्ट है। पूर्वार्द्ध[3] मे सती-विवाह तक की कथा और उत्तरार्द्ध[4] मे पार्वती-विवाह तथा ताडकासुर-दमन की कथा का समावेश किया जा सकता है। दक्ष का यज्ञानुष्ठान वह कडी[5] है जो पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध की कथा को सफलतापूर्वक जोडकर प्रबन्ध-निर्वाह और तारतम्य बनाये रखती है।

कवि ने शिव के दो विवाह कराये है। एक सती के साथ और दूसरा पार्वती के साथ। वेलि का उद्देश्य भी इन विवाहो के माध्यम से शिव-शक्ति के गुणो का वर्णन करना रहा है। दोनो विवाह-प्रसग अपने आप मे पूर्ण है, अत कार्यावस्थाओ की स्थिति भी दोनो मे पृथक-पृथक देखी जा सकती है। सती-विवाह का 'आरभ' दक्ष के नारियल भेजने मे निहित है। 'प्रयत्नावस्था' बाधक-साधक तत्वो के झूले मे झूलती हुई घटती-बढती है।

बाधक तत्व दो रूपों में सामने आते हैं—

(१) दक्ष का नारियल भेजते समय विरोध करना और बाद मे शिव से मनमुटाव रखना[6]।

१—नमस्कारात्मक

परमेसर सरसति परम गुरू, करा प्रणाम सजोडि कर।

आशीर्वादात्मक

दीन दयाल दया दाखीजइ, हेत घणइ गाइजइ हरि ॥१॥

वस्तु निर्देशात्मक

सिव सकती तणी ताइ वेलि वर्णविसु, सफल जनम करिवा ससार।

बावन अख्यर तणी ऊडवाधी, वसुधा अचल हुवउ विस्तार ॥२॥

२—छद सख्या ३ से २३

३—छद सख्या १ से १६८

४—२३२ से ३८२

५—१६९ मे २३१

६—७८-७९

(२८) *ताडकासुर का आतक :*—इद्र ने यज्ञ रचकर शिव को पार्वती सहित सप्रेम निमत्रित किया। अन्य देवतादि भी एकत्र हुए। तैतीस करोड देवताओ मे से केवल आधे ही उपस्थित थे। शिव ने इसका कारण जानना चाहा। देवताओ ने बतलाया कि ताडकासुर ने बडा आतक फैला रखा है। दैत्य और देवता उसकी प्रजा होकर रह रहे है। उन्हे बिना उसकी आज्ञा के कही आने जाने की स्वतन्त्रता नही है। इस सवाद को सुनकर शिव ने अपना पिनाक उठा लिया। ब्रह्मा ने कहा कि यदि आपका पुत्र कार्तिक स्वामी देवताओ का सेनापति बनकर युद्ध करे तो उसका नाश हो सकता है। शिव ने पार्वती की सहमति लेकर पुत्र को युद्ध करने की आज्ञा दे दी। (३६२-३७०)

(२९) *सुर-असुर-युद्ध :*—कार्तिकेय ने रणभेरी बजाई। दैत्यो का देश दहल उठा। देव-सेना के आ पहुँचने पर युद्ध आरभ होगया। दैत्य और देवता एक दूसरे पर तलवारो का प्रहार करने लगे। दैत्यराज ताडकासुर गाल बजाता हुआ अपने समान आकाशस्पर्शी लाखो वीरो को साथ लिए हाथियो को धकेलता हुआ, पहाडो को ठेलता हुआ सामने आया। कार्तिकेय ने धनुष उठाकर उसका अन्त कर दिया। जो दैत्य सामने आये वे नष्ट कर दिये गये और जो शरण मे आये वे बचे रह गये। असुरो के आतक से देवताओ को मुक्ति मिल गई। सर्वत्र जीत के नगाडे बजा बजाकर आनन्दोत्सव मनाया गया। (३७१-३८१)

(३०) *उपसंहार :*—किशना कवि कहता है कि हे रामेश्वर शिव! आप राजाओ के राजा, बडे दातार, शोभा बढाने वाले निराकार ब्रह्म हैं। मुझ पर कृपा करे। (३८१-३८२)

कवि ने पृथ्वीराज कृत 'क्रिसन रुक्मणी री वेलि' से प्रभावित होकर इस वेलि की रचना की है। काव्य की कथा का आधार मुख्य रूप से 'शिव पुराण' रहा है। 'कुमार सभव' का आशिक प्रभाव उत्तरार्द्ध मे देखा जा सकता है। प्रधान कथा शिव-पार्वती से ही सबधित है। पार्वती की कथा मे सती की कथा को समुचित स्थान दिया है। वही कथा का पूर्वार्द्ध भाग है। कालिदास ने 'कुमार सभव' मे सती-प्रसग को नही उठाया है जबकि प्रस्तुत वेलिकार ने इस प्रसग का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। प्रासगिक-कथाओ मे राजा सगर के अश्वमेध यज्ञ की कथा, कपिल मुनि की कथा, भागीरथ और गगावतरण की कथा, दक्ष और उसके यज्ञानुष्ठान की कथा, तारकासुर की कथा आदि का समावेश किया जा सकता है। ये विभिन्न कथाए मुख्य कथा को किसी न किसी रूप मे सहायता पहुँचाती है। सती को पार्वती का ही पूर्व रूप समझने के कारण दक्ष और उसके यज्ञ की कथा का औचित्य तो सिद्ध हो सकता है पर राजा सगर और भागीरथ की कथा का मुख्य-कथा से कोई सीधा सम्बन्ध नही दिखाई देता। कथानक का धरातल तो बहुत

(२) शिव को समाधि से विचलित कर पार्वती की ओर अनुरक्त करने के लिये काम का अपने मित्र वसन्त के साथ प्रयत्न करना[1]।

यहाँ भी सफलता नही मिलती। कामदेव भस्म कर दिया जाता है[2] पर जब आकाशवाणी[3] को सुनकर पार्वती एक बार फिर तपस्या करने को उद्यत होती है तो 'प्राप्त्याशा' की स्थिति बनती दिखाई देती है। शिव के वृद्ध ब्राह्मण-याचक के रूप मे पार्वती की परीक्षा लेने पर[4] 'नियताप्ति' निश्चित हो जाती है। अन्त मे विधिवत विवाह, पुत्र जन्म, ताडकासुर के दमन और देवताओ के जय-जयकार के साथ 'फलागम' की सिद्धि होती है[5]।

काव्य का वातावरण अलौकिक घटनाओ और सकेतो से भरपूर है। यह अलौकिकता दो रूपो मे व्यक्त हुई है घटनात्मत और पात्रात्मक। घटनात्मक अलौकिकता के पाच स्थल है। पहला स्थल कैलास पर्वत का है जहाँ के कुण्डो मे भरे जल का पान करने से सारे ब्रह्माड की बातें ज्ञात होने लगती है[6]। दूसरा स्थल सती और शिव के विवाह के समय का है जब माया साक्षात दक्ष के सामने आकर बोलती है[7]। तीसरा स्थल वह है जब शिवजी ने अपनी त्रिकूट जटा से वीरभद्र को पैदा किया[8]। चौथा स्थल उस समय का है जब ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओ के प्रार्थना करने पर शिव बकरे का माथा लगाकर दक्ष को पुनर्जीवित कर देते है[9] और पाँचवा स्थल वह है जब आकाशवाणी होती है कि भोला चक्र-वर्ती शिव आप स्वय तप रहा है और तप करने से वह पार्वती को शीघ्र ही मिलेगा[10]।

१—वही २५८–५९

२—वही २६०

३—वही २६२–६६

४—वही २६७–२७५

५—वही–३४३–३८२

६—अमृत सहित ईख रस आखा, भरिया कु ड तणइ तइ मात।
उण मोह इसी भो आचरता, ब्रह्मा ड तणी जाणि जुइ बात ।।९४।।

७—दिख राजा आगलि जाइ दाखियउ, राज परीछउ काइ रुख।
अचरिज सहु रहियउ अ तेउरि, माया जरइ बोलिया मुख ।।१४८।।

८—मरियाम जिको विकराल वडालइ, हदब हद हद करण हद।
तीजी जटा काढियउ ताहरि, भड ताइ सुजसउ वीरभद ।।१०५।।
जाला नल जले न मरइ मारियो, धणिज दीन्हउ खडग सिव ।।१०८।।

९—माथउ छइ लइ तणउ माडियउ, की प्रगट जे हु ती काय।
दीन्हउ राजा नवले दिखनु, दह नामी ताइ करे दयाल ।।२२७।।

१०—वाणी इम आकाश च वाणी, उभोली चक्रवर्ती भूवाल।
आउ तपइ रइ जो ईस्वर, तप करिस्यु मिलसी ततकाल ।।२६२।।

(२) नगर की स्त्रियो द्वारा शिव के रूप-वैभव का परिहास करना[१]।

साधक तत्व भी दो रूपों में सामने आते हैं—

(१) कैलास पर्वत के पक्षियो द्वारा पथिको को शिव-मिलन का उपाय बतलाना[२]।
(२) देवताओ का रथ मे बिठाकर उन्हे शिव के पास पहुँचाना[३]।

और जब शिव नारियल ग्रहण कर लेते है[४]–तब 'प्राप्त्याशा' की स्थिति बनती है। अब भी दक्ष के व्यवहार को देखते हुए कुछ भी निश्चित नही कहा जा सकता पर जब स्वय माया बोलकर[५] सन्देह दूर कर देती है तब 'नियताप्ति' निश्चित हो जाती है। अन्त मे विवाह, सती की विनती पर शिव के पूर्व प्रशसित रूप-धारण और शिवपुरी मे आनन्दोत्सव के साथ 'फलागम' की सिद्धि होती है[६]।

उतरार्द्ध कथा का उद्देश्य शिव-पार्वती के सयोग से उत्पन्न पुत्र द्वारा दत्यराज ताडकासुर के आतक का शमन कर देवताओ को मुक्ति दिलाना है। शिव समाधिस्थ हैं अत सारा प्रयत्न इस बात के लिए होता है कि वे किसी तरह पार्वती पर अनुरक्त हो। यहाँ नारद द्वारा हिमालय को पार्वती के वर के लिये शिव का सकेत[७] 'आरभ' है। 'प्रयत्नावस्था' के दो स्वरूप हैं। पार्वती द्वारा प्रयत्न और इद्रादि देवताओ द्वारा प्रयत्न। पार्वती द्वारा दो प्रकार का प्रयत्न होता है–

(१) उत्साहित होकर शिव–पूजा के लिये प्रस्थान करना[८]।
(२) ६ मास तक शिव की कठोर सेवा करना[९]।

इस पर भी जब शिव समाधि से विचलित नही होते तो इद्रादि देवताओ द्वारा दो प्रकार का प्रयत्न होता है–

(१) इद्रादि देवताओ का ब्रह्मा के पास जाकर ताडकासुर के आतक से मुक्ति का उपाय पूछना और ब्रह्मा का शिव–पार्वती–विवाह का परामर्श देना[१०]।

१—महादेव पार्वती री वेलि छंद सख्या १२४–१२८
२—वही ९२–९५
३—वही ९६–९७
४—वही १०८–१०९
५—वही १४८
६—छद सख्या १५४, १५८, १५९, १६०, १६८
७—वही २४६–२५०
८—वही २५१
९—वही २५२–२५३
१०—वही २५४–५७

काव्य निर्णय (पोइटिक जस्टिस) की ओर भी कवि की दृष्टि रही है। दुष्ट पात्रो को अपनी करनी का फल मिलता दिखाई देता है। दक्ष का अभिमान उसे नष्ट कर देता है, सती का पति की आज्ञा न मान-कर यज्ञ मे सम्मिलित होना न केवल उसके अपमान का कारण बनता है बल्कि उसको भस्म होने के लिए तक विवश कर देता है। ताडकासुर को अन्त मे अपने अन्याय और अत्याचार का फल मिल ही जाता है। कामदेव को भी कामोत्तेजना उत्पन्न करने का समुचित दण्ड मिलता है। पर भारतीय दर्शन सस्कार और हृदय-परिर्तन मे विश्वास करता है-अत कवि ने दुष्ट पात्रो के हृदय को पश्चाताप की आग मे तपा कर निखार दिया है। दक्ष और काम को पुनर्जीवित करना तथा सती को फिर पार्वती रूप म शिव का ग्रहण करका इसी सत्य के प्रतीक है। भले पात्र अपनी भलाई का समुचित फल पाते हैं। भागीरथ तपस्या के बल पर गगा को धरती पर ले ही आता है और पार्वती अपने अखण्ड तप तथा अनवरत सेवा-भाव मे शिव को प्रणय-पाश मे बाध ही लेती है।

कथा-सयोजन मे कवि ने निम्नलिखित कथानक रूढियो का प्रयोग किया है—

(१) नायिका का असाधारण-अलौकिक होना और क्षण क्षण मे उसके सौन्दर्य का बदलना।

(२) नायिका का जल-रहित-कमल से यकायक बालिका रूप मे पैदा होना और माता-पिता को पर्वत-शिखर पर क्रीडा करते समय मिलना।

(३) नायिका का वर-विशेष से विवाह करने मे परिवार के समस्त सदस्यो का सहमत होना पर भाई या पिता का विरोध-अनिच्छा-प्रकट करना।

(४) विवाह-सिद्धि मे देवताओ तथा पक्षिओ का सहायता करना।

(५) पक्षियो का मानव-वाणी मे बोलना और रस्योद्घाटन करना।

(६) कु ड विशेष के पानी पीने से समस्त ब्रह्माड की बात का समझना।

(७) स्त्रियो के सतीत्व प्रभाव से जलपूर्ण-रेत का घडा बन जाना।

(८) नायिका का नायक से पूर्व जन्म का स्नेह-सबध होना।

(९) नायिका का नायक से मिलने के लिये शिव-पूजा करना और निराहार रहकर ६ मास तक तपस्या करना।

(१०) नायक का वृद्ध ब्राह्मण-याचक के रूप मे नायिका की परीक्षा करना।

(११) बकरे का माथा लगाकर मृत व्यक्ति को जीवित करना।

(१२) राक्षसो का उत्पात मचाना और देवताओ का तग आकर ब्रह्मा के पास जाना।

पात्रात्मक अलौकिकता के दो रूप है। मानव पात्रो मे अलौकिकता और मानवेतर पात्रो मे अलौकिकता। मानव पात्रो मे शिव, सती, पार्वती, और कैलाम पर्वत की स्त्रियो के नाम गिनाये जा सकते है तो मानवेतर पात्रो मे कैलास पर्वत स्थित पक्षियो और शिव-वाहन वृषभ के। शिव के व्यक्तित्व और कृतित्व मे अलौकिक तत्व भरे पडे है[1]। वे ज्योति स्वरूप होते हुए भी ससार मे अलोप है। किसी स्त्री ने न उन्हे रमाया है न दूध पिलाया है। न उनके कोई माता है न पिता। उनके दर्शन मात्र से ही स्वर्ग-सुख प्राप्त हो जाता है। सती गर्भवास को पूरे दस माह न होने पर भी एक दिन और दस पलो मे जन्म ले लेती है[2]। प्रहर-प्रहर मे बदलती हुई उसकी काति एक पखवाडे मे ही उसे पूर्ण युवती बना देती है[3]। पार्वती का जन्म एक जल रहित कमल पुष्प से बतलाया गया है[4] और वह अपने माता पिता को तब प्राप्त होती है जब वे सपूर्ण अन्त पुर के साथ विनोद क्रीडा के लिये कैलास-शिखर पर जाते है। कैलास पर्वत की स्त्रियो का व्यक्तित्व भी अलौकिक है ज्योही वे जल से सनी हुई रेणु को अपने हाथ मे लेती है त्योही वह कु भ के रूप मे बदल जाती है[5]।

मानवेतर पात्र भी अलौकिक आभा से दीप्तमान है। कैलास पर्वत के पक्षी मानव-वाणी मे ईश्वर का नाम उच्चरित करते है और बतलाते हैं पथिको को ईश्वर दर्शन करने का उपाय[6]। शिव का वाहन वृषभ भी साधारण नही है। वह शिव के सवार होते ही पाँच योजन धनुष पृथ्वी को पार करने वाला है[7]।

१—आखइ तो पिता नही ईसर, पणइ अनेरी तूझ परि।
रमाडियउ न रग भरि रामा, घवराडियउ न गोद धरि ॥७॥

२—गर्भवास नही दस मास तणइ गर्भ, वात अचभज उलहइ विचार।
एकण दिन दस पल अ तरइ, गउरी तणउ हूयउ अवतार ॥४६॥

३—पख एकण विचइ हुई वर प्रापत, राजकुमार अनोपम राज ॥५४॥

४—गिरवर रइ सिखर माडियउ गाहड, तिको अचरिज पेखियउ तिण।
सोचहूउ मन माहि सपेवे, वध कमल किम वार विण ॥२३३॥
किया प्रणाम जोडे बेऊ कर, तिण नइडउ आवियउ तरइ।
वालक देखे लीयउ बोलाए, काभिण आप उछाह करइ ॥२३४॥

५—मु ठी भरि सती रैणु जल साम्ही, आपणपउ दाखइ अधिकार।
कु भ हुवइ ततकाल कहता, सो पाणी ल्यावै पणिहार ॥१०३॥

६—पखि मुखि हरिनाम प्रणता, सुरताय मानव तणे सुहाय ॥८३॥
वहिलउ दरसण हुवइ विमु भर, असड छ कहि पखी ऊपाव ॥६२॥

७—आगलिरय सिणगार आणीयउ, तिण वेला जोवता तयार।
जोजन पाच धनुख सिर धरतइ, वसधा देखण तणइ विचार ॥३०६॥

काव्य निर्णय (पोइटिक जस्टिस) की ओर भी कवि की दृष्टि रही है। दुष्ट पात्रो को अपनी करनी का फल मिलता दिखाई देता है। दक्ष का अभिमान उसे नष्ट कर देता है, सती का पति की आज्ञा न मान-कर यज्ञ मे सम्मिलित होना न केवल उसके अपमान का कारण बनता है बल्कि उसको भस्म होने के लिए तक विवश कर देता है। ताडकासुर को अन्त मे अपने अन्याय और अत्याचार का फल मिल ही जाता है। कामदेव को भी कामोत्तेजना उत्पन्न करने का समुचित दण्ड मिलता है। पर भारतीय दर्शन सस्कार और हृदय-परिर्तन मे विश्वास करता है-अत कवि ने दुष्ट पात्रो के हृदय को पश्चाताप की आग मे तपा कर निखार दिया है। दक्ष और काम को पुनर्जीवित करना तथा सती को फिर पार्वती रूप मे शिव का ग्रहण करना इसी सत्य के प्रतीक है। भले पात्र अपनी भलाई का समुचित फल पाते है। भागीरथ तपस्या के बल पर गगा को धरती पर ले ही आता है और पार्वती अपने अखण्ड तप तथा अनवरत सेवा-भाव मे शिव को प्रणय-पाश मे बाध ही लेती है।

कथा-सयोजन मे कवि ने निम्नलिखित कथानक रूढ़ियो का प्रयोग किया है—

(१) नायिका का असाधारण-अलौकिक होना और क्षण क्षण मे उसके सौन्दर्य का बदलना।

(२) नायिका का जल-रहित-कमल से यकायक बालिका रूप मे पैदा होना और माता-पिता को पर्वत-शिखर पर क्रीडा करते समय मिलना।

(३) नायिका का वर-विशेष से विवाह करने मे परिवार के समस्त सदस्यो का सहमत होना पर भाई या पिता का विरोध-अनिच्छा-प्रकट करना।

(४) विवाह-सिद्धि मे देवताओ तथा पक्षिओ का सहायता करना।

(५) पक्षियो का मानव-वाणी मे बोलना और रहस्योद्घाटन करना।

(६) कुड विशेष के पानी पीने से समस्त ब्रह्माड की बात का समझना।

(७) स्त्रियो के सतीत्व प्रभाव से जलपूर्ण-रेत का घडा बन जाना।

(८) नायिका का नायक से पूर्व जन्म का स्नेह-सबध होना।

(९) नायिका का नायक से मिलने के लिये शिव-पूजा करना और निराहार रहकर ६ मास तक तपस्या करना।

(१०) नायक का वृद्ध ब्राह्मण-याचक के रूप मे नायिका की परीक्षा करना।

(११) बकरे का माथा लगाकर मृत व्यक्ति को जीवित करना।

(१२) राक्षसो का उत्पात मचाना और देवताओ का तग आकर ब्रह्मा के पास जाना।

(१३) ब्रह्मा द्वारा नायक-नायिका के सयोग से उत्पन्न पुत्र द्वारा कार्य-सिद्धि होने का आश्वासन देना।

(१४) नायक-नायिका को आपस मे मिलाने का प्रयत्न करना, आदि।

चरित्र-चित्रण

वेलि मे वर्णनो की प्रधानता है। चरित्र-चित्रण इन्ही के माध्यम से हुआ है। प्रमुख पात्रो मे शिव, सती, पार्वती, दक्ष, हिमालय आदि के नाम गिनाये जा सकते है। अन्य पात्रो मे ब्रह्मा, इद्र, मेना, नारद, कामदेव, ताडकासुर, वीरभद्र, कार्तिकेय, सप्तऋषि, जया-विजयादि सखियाँ, सगर के ६० हजार पुत्र, कपिल मुनि, नगर के नागरिक आदि हैं। मानवेतर पात्रो मे कैलास पर्वत के पक्षी और शिव-वाहन वृषभ आते है। पात्रो की तीनो कोटियाँ है। अधिकाश पात्र सुर कोटि के है यथा-शिव, ब्रह्मा, नारद, कपिल, इद्र आदि। असुर कोटि के पात्रो मे ताडकासुर और दक्ष रखे जा सकते हैं।

मानव-कोटि मे हिमालय, मेना, सखियाँ, नागरिक आदि आते है। दक्ष और सती को छोडकर शेष सभी पात्र स्थितिशील हैं।

शिव :

शिव काव्य के नायक और प्रमुख-पात्र हैं। वे आदि से अन्त तक सपूर्ण-पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध-कथा मे छाये हुए है। कवि ने उनको परब्रह्म और मानव दोनो रूपो मे देखा है। परब्रह्म रूप मे वे सगुण भी है और निर्गुण भी। उनका सगुण रूप विराट और व्यापक है। एक एक रोम पर अनन्त करोड ब्रह्माण्डो की सृष्टि उसने की है। सातो समुद्र उसकी प्रदक्षिणा करते है और आकाश वैभव की पताका के रूप मे लहराता है[1]। तारो की करधनी बधी है तो मानसरोवर की तरह शीतल हृदय है[2]। कठ मे सीगी और वासुकि सुशोभित है तो वाहन के रूप मे वृषभ का वैभव। निर्गुण रूप मे वे अयोनि-अनादि है। न उनके माता है न पता, न वे कुलीन है न अकुलीन, न वे उत्पन्न होते हैं न नष्ट, न कही से आते है न कही जाते है[3]।

१—एकीकई रोम ऊपरह ईसर, माडिया कोट उन्नत वृहमड।
सायर सात दीपइ परदक्षिण, डवर चा अ वर धजमड ॥१२॥

२—उडीयाणी कसी मेखली उपरि, काख अ धारी डड कर।
भल दीसइ फावियउ विमभर, सिहरा हायउ मानसरि ॥१४॥

३—उतपति कुण लहइ तो इसर, ए मानविया हुवइ अचत्र।
आद अनाद तणइ तू आछइ, सभव नाथ नीसरइ सत्र ॥८॥
तू उपजइ न खपइ न हू आइम, कुल न कहइ कहीयइ उकलीण।
भीनउ नाद विनोद महा भडि, वृख भव चढइ तइ वावइ वीण ॥६॥

मानव रूप मे वे उदार, दानी, हितैषी और प्रेमी है। प्रलयकाल मे सबकी रक्षा करने के साथ साथ लोकाचार मे सबको मुग्ध करने वाले है। दक्ष के प्रधानो का ससम्मान स्वागत करते है। पार्वती के कहने पर विधिवत् बरात सजाकर विवाह-लीला रचते है। विवाह के मागलिक प्रसग पर अनन्त द्रव्य का दान करते है।

शिव आदर्श प्रेमी है। उनमे रूप और तपस्या के तेज का अद्भुत मिश्रण है। लगता है तप का तेज ही रूप बनकर उनकी रग-रग मे रम गया है। वे लौकिक पुरुष की तरह सती और पार्वती के साथ विवाह रचकर अपनी प्रेम-भावना प्रगट करते है। उनका प्रेम रूपासक्ति मात्र नही है वह तप की ज्वाला मे जलकर निखर उठने वाला हृदय का शुद्ध सात्विक नवनीत है। प्रेमी और प्रेमिका दोनो पहले तपस्वी है फिर प्रेमी। पार्वती पति के प्रेम की प्राप्ति के लिये अखण्ड तपस्या करती है तो शिव प्रेम से प्रभावित होते है पर कामदेव को भस्मीभूत कर। उनके प्रेम के साथ काम की वासना का मेल नही है। वह पुत्रोत्पत्ति के लिये ही जन्म लेता है और विकसित होता है अपने स्वार्थ के लिए नही बल्कि देवताओ की मुक्ति के लिये। शिव पार्वती को भोगिनी रूप मे नही बल्कि जीवनसगिनी और सहधर्मिणी के रूप मे अपनाते है। तभी तो पुत्र कार्तिकेय को देव सेना के सेनापति बनाकर भेजने के पूर्व वे पार्वती से राय पूछते है और पार्वती अपना अहोभाग्य मानती हुई सहर्ष स्वीकृति प्रदान कर देती है[1]।

शिव पार्वती को यो ही ग्रहण नही कर लेते, वे पहले वृद्ध ब्राह्मण-याचक का रूप बनाकर उसकी कठोर परीक्षा लेते है[2]। वे कहते है जिसकी प्राप्ति के लिये यह तपस्या कर रही है वह शिव दो तीन धोबे धतूरे खाता है, शरीर पर भस्म चढाता है, नशीली वस्तुओ का सेवन करता है और रहता है गिरी कन्दराओ मे[3]। शिव की ऐसी निंदा सुनकर जब पार्वती वहाँ से उठकर चलने लगती है तो वे स्वयं प्रगट होकर उसका हाथ पकड लेते है[4]।

शिव स्वाभिमानी है। दक्ष के यज्ञानुष्ठान मे जब सती बिना निमत्रण के ही सम्मिलित होने का आग्रह करती है तो उनका आत्म सम्मान बरबस फूट पडता

१—आहचइ सकति पूछीया ईसर, मेल्ही सकु वर लियण ताइ माज।
एकण देव ऊपरइ इतरा, आखइ सती धन च दिन आज ॥३७०॥

२—लाबी दाढी, हाथ लाकडी, धड वाजइ जू—जुवा सधाण।
प्रवत्र जनीइ गलइ गलइ पहरतइ,आयउ विप्र जाचण आपाण ॥२६७॥

३—धोबा वितिनि खाय धतूरउ, चाढइ भसम ऊखधि चाढि।
वासउ गिरे कदरे वासइ, ता गहिला सरिस न कीजइ वात ॥२७१॥

४—चीत वीयउ इसउ ऊठिनइ चाली, हसि भालीयउ तरइ प्रभु हाथ।
वनिता तप वस कीया ईस्वर, निज आखीयउ अनाथा नाथ ॥२७२॥

है 'विण नेडिया परायइ वासइ, मोटा किम जायइ महत' ।।१७४।। और स्पष्ट घोषणा कर देते है 'जगन न होवइ' चाहे 'कितरा ही कोड प्रकार करइ' । दक्ष का मिथ्या दभ शिव को अखरने लगता है और क्रोध मे आकर वे अपनी त्रिकूट जटा से वीरभद्र को पैदा करते है जो दक्ष-यज्ञ का विध्वस कर देता है। क्रोध-भावना के साथ साथ उनमे करुणा भी है, इसी मे प्रेरित होकर वे दक्ष को पुनर्जीवित और कामदेव को सजीव बना देते है।

कवि की मूल भावना शिव को ईश्वर रूप मे ही प्रगट करने की रही है। कुछ तो ऐसे अलौकिक कृत्य शिव द्वारा सपादित हुए है जिनसे उनका ईश्वरत्व स्वयसिद्ध है। भागीरथ का उनकी आराधना करना, गगा का प्रसन्न होकर उनकी जटा मे प्रवेश करना, ताडकासुर को दमन करने की शक्ति का उनके वीर्य मे निहित होना आदि ऐसे ही प्रसग है। जहाँ उनके मानव-पक्ष को कवि ने ग्रहण किया है वहाँ भी वह ईश्वरीय आतक से ग्रस्त है। यही कारण है कि मानव-लीला-प्रसग मे भी कवि बार बार ईश्वरीय सकेत देता रहा है[1]।

पार्वती

पार्वती काव्य की नायिका है। उसके जन्म की घटना अलौकिक है। वह बिना पानी के कमल से उत्पन्न बालिका है जिसे हिमालय और मेना प्रेमपूर्वक सोत्साह घर लाकर पालते है। उसकी काति समुद्र की तरह बढती है और वह एक ही दिवस मे वर्ष भर का विकास प्राप्त कर लेती है[2]। उसके नेत्र हिरण की तरह चचल, उसकी गति गज की तरह मादक और उसका सौन्दर्य खुली चिट्ठी की तरह निरावरण है जिसे देखकर स्वय ब्रह्मा विस्मित-विस्मृत है[3]।

१—सती–पार्वती के विवाह–प्रसग मे देखिये

(क) प्रभु थे ऋवावती पधारउ, आठे पहरे लगन अछइ ।।११२।।

(ख) जनम जनम वैकु ठ पामिस्यइ, वले वदा वइता नवे निधि ।।१३१।।

(ग) अचरिज सहु रहीयउ अ तेउरि, माया जरइ वोलीया मुख ।।१४८।।

(घ) कहइ सती प्रभु रूप प्रगट करि, सिगलउ ही देखइ ससार ।।१५८।।

(ट) परधान कहइ किम राजा परीछइ, मनछा रथा चालइ महिराण ।
भाजण घडण अउहीज अनमी भड, कीया ईयइहीज वेद कुराण ।।१६३।।

(च) वर कन्या त्रिन्हे घातीया वानइ, वेइ वारा वरमा रा वाल ।।२८१।।

(छ) लाडा तणइ जि दरसण लावइ, प्रिर्या तणा खाइज म्यइ पाप ।।२८३।।

२—गावइ माय वल ज्यु हीं विप्र, वासुर वरस तणइ विस्तार ।।२३८।।

३—चढ ती वयउ एमा चढती, मृग लोचनी कलाइर मोर ।
गति आसति मति गयद तणी गति, जोबर तणउ दिखायउ जोर ।।२४०।।
जग्र देखइ इक चिटी उघाडी, विध आखइ तउ कहनउ वेद ।
मात नमो तुहारी महिमा, भूलउ तइ ब्रह्मादिक वेद ।।२४५।।

पार्वती आदर्श प्रेमिका है। नारद पहले ही शिव के साथ उसके अचल संबंध की घोषणा कर देते हैं। वह उन्हें पति-रूप मे प्राप्त करने के लिये शिविकारूढ हो पूजन के लिये प्रस्थान करती है। उसकी अल्पावस्था है पर लज्जा की मात्रा बढी हुई है[1]। पूरे ६ मास तक अखण्ड-सेवा करती है फिर भी शिव मुग्ध नही होते तो वह अपने पिता के घर चली जाती है। आकाशवाणी सुनकर शिव-मिलन का नया उत्साह पा वह जया-विजया नामक सहेलियो को साथ लेकर एक गुफा मे समाधिस्थ होती है। ६ मास तक भूख प्यासादि को सहन करती हुई अखण्ड तप करती है। उसके मुँह से केवल शिव-शिव की ही ध्वनि निकलती है[2]। शिव द्वारा वृद्ध-ब्राह्मण याचक के रूप मे ली गई कठोर परीक्षा मे पूरी उतर कर पार्वती अपने अनन्य प्रेम का परिचय देती है। पार्वती का प्रेम कोरी कामुकता नही है उसमे कामदेव को भस्म करने के बाद विकसित होने वाले प्रणय की सात्विक मादकता है। उसके प्रेम की पूर्ण परिणति कार्तिकेय के जन्म मे होती है। देवताओ का नेतृत्व कर जब कार्तिकेय दैत्यराज ताडकासुर का अन्त कर देता है तो पार्वती की खुशी का ठिकाना नही रहता।

पार्वती रूप मे जितनी मधुर है तप मे उतनी ही उग्र। उसके स्वभाव मे करुणा, सहानुभूति और दया का अपार सागर लहराता है। कामदेव के भस्म होने पर जब रति-हृदय को व्यथित कर देने वाला दारूण विलाप करती है तब पार्वती ही गोद मे लेकर इन पीयूष वर्षी शब्दो द्वारा उसे आश्वस्त करती है कि 'हे रति तू व्यर्थ का विलाप मत कर। तेरा पति ही कुवर रूप मे (कृष्ण पुत्र प्रद्युम्न) उत्पन्न होगा[3]।

सती :

सती दक्ष की पुत्री है। वह अनुपम सुन्दरी और माता-पिता की लाडली बेटी है। उसका सौन्दर्य अलौकिक गति से बढता प्रतीत होता है जिसमे मास और

१—फूले भरि छाब चढी रथ फउरइ, आणद हउ वन दिनउं आज।
सज सिविहेक सहेली साथइ, लहुवी वय अधिकी घट लाज ॥२५१॥

२—वन उद्यान गुफा तरइ विचइ, धूणी धाती सबल घडइ।
मिलिया प्रभु झगडउ माडणरी, धणी स वाता जीव घडइ ॥२६४॥
विजया जया लियावइ नइ लायइ, वलेस फल किणही कइवार।
निस प्रह आराहइ दिवस नित, ईसर पवन तणइ आधार ॥२६५॥
खटमास लगइ तप कीयउ अखडित, त्री असडा खेलता निघात।
सिव सिव सिवहीज कहता सत्त, वदइ न काई बीजो वात ॥२६६॥

३—आया गिर कैलास ईस्वर, प्रो झरवा लागी रत पास।
गिरवर कुवर गोद करेनइ, गाया, वर, कुवर वलेही वाधी आस ॥२६१॥

वर्ष का अन्तर दिखाई ही नही देता[1]। वह शिव की विवाहिता पत्नी है। पति उसकी बात पर ही अपना असली स्वरूप प्रकट करते है। माता-पिता के प्रति उसके हृदय मे प्रेम का भरा अथाह समुद्र है इसी कारण वह बिना बुलाये भी यज्ञ मे सम्मिलित होती है और इस प्रेम के आगे अपने पति की आज्ञा का उल्लघन कर देती है। पर उसके हृदय मे आत्म सम्मान की चिनगारी भी प्रज्वलित है। जब वह देखती है कि पिता ने उसका आदर सत्कार नही किया, बहिनो ने मान-मनुहार नही की उल्टे शिव की निन्दा की तो उसे अपने पार्थिव शरीर से घृणा होने लगती है और एक आदर्श वीरागना की भाति प्रेम और मर्यादा की रक्षा के लिए वह यज्ञ की आहुति बन जाती है[2]। सती का शिव के प्रति अनन्य प्रेम-भाव है, तभी तो सती के भस्म होने के समाचार सुनते ही शिव क्रोधित हो उठते हैं और दक्ष के अभिमान को नष्ट करने के लिए वीरभद्र को पैदा करते है।

दक्ष और हेमाचल :

दक्ष अम्बापुर का अधिपति और शिव का ससुर है। ब्रह्मा ने उसे सृष्टि रचना का काम सौपा है। हेमाचल भी मेरु की सन्तान और शिव का ससुर है। पर दोनो के स्वभाव मे आकाश-पाताल का अन्तर है। एक वक्र और टेढा है तो दूसरा सरल और सीधा। एक मे अभिमान और दभ का वास है तो दूसरे मे स्नेह और प्रेम का राज्य। एक अपनी पुत्री सती का अनादर करता है तो दूसरा अपनी पुत्री पार्वती पर बलि-बलि जाता है। दक्ष को अपनी दुष्टता का फल अन्त मे मिल ही जाता है वह वीरभद्र द्वारा मारा जाता है, उसकी पुत्री सती उसी के सामने भस्म हो जाती है।

वर्णन

वेलि का अधिकाश भाग निम्नलिखित वर्णन-स्थलो से घिरा हुआ है —

(१) शिव की महिमा का वर्णन
(२) सती के जन्म और सौन्दर्य का वर्णन
(३) सती के विवाह के लिए नारियल लेकर जाने वाले दक्ष के प्रधानो का वर्णन

१—वाधेपउ अधिक तेज तनु वाधइ, वालक तणा जोवता वध।
दिन दिन लइ अ तरा देवी, वरस मास रा किसा निवध ॥५२॥

२—माण हवइ मन भग तेथ मरीजइ, सती तणउ वायक ससार ॥१८८॥
अण जाण करइ निंदा ईसर री, गह दाखइ देखे गढ गाम।
उ ऊपनउ सरीरइय थी, किसउ सरीर तियै सु काम ॥२८९॥
तामम कीयउ सती तन त्यागण, आपरा गण चाढीयउ कप।
हठकर पडी हुतासण माहे, बीजउहीज जगन कीयउ धजवध ॥२९०॥

(४) कैलास-पर्वत का वर्णन
(५) सती का शृ गार-वर्णन
(६) बरात और विवाह का वर्णन
(७) दक्ष के यज्ञ का वर्णन
(८) यज्ञ-विध्वस का वर्णन
(९) पार्वती के जन्म और सौन्दर्य का वर्णन
(१०) पार्वती की तपस्या और शिव द्वारा परीक्षा लेने का वर्णन
(११) वृषभ की साज-सज्जा, बरात और विवाह का वर्णन
(१२) पार्वती के शृ गार का वर्णन
(१३) ताडकासुर के आतक का वर्णन
(१४) सुर-असुर युद्ध का वर्णन

सती और पार्वती दोनो के विवाह-प्रसगो को स्थान देने के कारण शृ गार, सौदर्य, बरात और विवाह के वर्णनो की आवृत्ति हो गयी है।

प्रारम्भ मे कवि ने शिव की महिमा का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। उनको ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी से महान बतलाते हुए सगुण-निर्गु ण के झूलो मे झुलाया है।

सौन्दर्य और शृ गार वर्णन के दो-दो स्थल है। एक सती के सम्बन्ध मे और दूसरा पार्वती के सम्बन्ध मे। दोनो मे जन्म व सौन्दर्य-विकास की अलौकिकता है। सौदर्य-शृ गार वर्णन मे कवि ने नख-शिख निरूपण की पद्धति ही अपनाई है। जगह जगह शास्त्रीय क्रम-विकास का अतिक्रमण किया गया है। सती के सौन्दर्य मे मुख का वर्णन करने के बाद उसी छद मे पगथलियो का चित्रण कर दिया गया है, और उसके बाद चरणो, जघाओ तथा कटि का वर्णन किया गया है[1]। शृ गार-वर्णन मे हाथ, नथ, नेत्र, तिलक, हार आदि का क्रम देखने को मिलता है[2]। पार्वती के सौदर्य-शृ गार वर्णन मे भी ऐसा ही किया गया है। यह अवश्य है कि सारा-वर्णन अलकारो के भार से लदा हुआ है।

बरात और विवाह-वर्णन बडे सजीव बन पडे है। इनके द्वारा कवि ने तत्कालीन प्रचलित सभी रीति-रिवाजो का सुन्दर चित्रण किया है[3]। राजस्थानी विवाह पद्धति के अनुसार यहाँ भी लडकी की ओर से नारियल भेजा गया है, लडके की

१—छन्द ५६, ७३
२—छद १३७–१४६
३—छद ७८, १०८–१११, ११३, ११८, ११९, १२२, १२३–१३३। १३६–१४६। १५२–१५६। १६५–१६८। २४७–२५३। २७६–३०४। ३२२–३५६।

ओर से लग्न मगवाये गये हैं, कु कुम-पत्रिकाएँ भेजकर सबन्धियो को बुलाया गया है, बरात सजाई गई है, बरात के स्वागत के लिए बधाईदार भेजे गये है, वर की विद्रूपता को देख कर नगर की स्त्रियो को हँसाया गया है तो वर की सुन्दरता पर सब को काम-काज छोड-छोड कर छतो पर एकत्र किया गया है। तोरण वादा गया है, मगल-कलशो से आरती उतारी गई है, धवल गीत गाये गये हैं। विविध बोलियां बोलते हुए जोगिनियो द्वारा दूस्या निकाला गया है। वधू का चाहड, चदबाही, हास, नथ, बाजूबन्द, काकण, कठसरी आदि गहनो से शृगार कराया गया है। खेजडी की आग को घी से सीच कर ब्राह्मण द्वारा हथलेवा जुडाया गया है और विवाहोपरात दस-पद्रह दिन वर को घर पर रख कर दायचे के साथ विदाई दी गई है।

युद्ध-वर्णन के दो स्थल है। एक दक्ष के यज्ञ-विध्वस प्रसग मे और दूसरा देव-दानवो के सम्बन्ध मे। युद्ध-वर्णन परम्परागत है। किसी मौलिक उपमान का सहारा नही लिया गया है। वही शस्त्र-झकार, शोणित-प्रवाह और खड्ग-सचालन है।

प्रकृति-वर्णन की ओर कथा के कलेवर को देखते हुए कवि ने कम ध्यान दिया है। सयोग-वियोग की पृष्ठभूमि मे यहाँ प्रकृति को चित्रित नही किया गया है। अत न तो बारहमासा वर्णन है न षटऋतु-व्यजन। प्रकृति केवल अलकारो की पिटारी बनकर आई है जिसे खोलकर कवि जब जी मे आये तब सती-पार्वती के नख-शिख को सजा देता है। प्रकृति के चित्रण की दृष्टि से कैलास पर्वत का वर्णन[1] ही सुन्दर बन पडा है यद्यपि वह अलौकिक तत्वो से अनुरजित है। उस पर्वत पर आम्र और चन्दन के वृक्ष है। अठारह प्रकार की वनस्थली फल-भार से झुकी हुई है। नदी के किनारे ताड वृक्षो की छाया मे पहाड की भ्राति देते हुए हाथी चलते हैं। कोयल और मोर प्रसन्नता पूर्वक नाचते गाते हैं। अमृतोपम नीर से भरे जलकुण्ड हैं जिनका पान करने से सब कुछ ज्ञात होने लगता है। निरन्तर प्रवाहित होने वाली सरिता है जिसमे पैर देने मात्र से ही भव-प्राणियो का उद्धार हो जाता है। यहाँ विविध प्रकार के पक्षी हैं जो अपने मुख से सदा शिव-शिव जपा करते हैं। यह देवताओ की क्रीडा भूमि और शिव की समाधि-स्थली है।

१—जोयन वीस हजार जोव्रता, सहस दस पहिलउ कइलास।
असडउ रूप अनोपम आखीयइ, एकण थभ तणउ आवास ॥८१॥
वृखराव तिसा गिर रा विराजई, अति साखा सवलकता अ ग।
मिसहर तणी पारवती मोहइ, ग्रह जाणे लागा गयणग ॥८२॥
विण पग-पग चदण तणा तरोवर, विविध विविध फली अणराइ।
पत्रि मुखि हरिनाम प्रणेता, सुरताय मानव तणे सुहाय ॥८३॥
धिलना पहाड पहाड पारवती, अधर झरता चरण धरइ।
अ वतणा वृन्व लु ज आवीया, कु जर विच सारमी करइ ॥८४॥

वृषभ की साज-सज्जा का वर्णन[1] कवि ने तन्मय होकर किया है। उस बैल का शारीरिक सघटन भी बडा सुन्दर और आकर्षक है। उसके अद्भुत लम्बे सीग स्तम्भ स्वरूप है, सबल स्कन्ध पृथ्वी के लिए अवलम्ब स्वरूप हैं फिर उसे क्यो न घुघरे बाँधकर सजाया जाय ? क्यो न उसके जडाव जटित मखमल की काँठी हो ? उसकी मोहरी रग-बिरगे रेशम की और पाखर रत्न जटित है। सूर्य के घोडे उसके आगे आगे कोतल के रूप मे चलते है। वह अपने सीगो को झाडकर नभ-शिखरो पर उनके आघात चिन्ह बना देता है। उसकी गति बडी तीव्र है। सवार होते ही पाँच योजन धनुष पृथ्वी को पार करने लगता है। सिरपर लगा दिव्य-तिलक दुर्जनो के हृदय मे शूल बन कर खटकता है। ऐसा बैल है दूल्हे शिव का वाहन।

रस-व्यंजना :

वेलि का प्रमुख रस सयोग शृ गार है। वीर रस की भी विशद व्यजना की गई है। अन्य रसो मे शान्त, अद्भुत, वात्सल्य, रौद्र, वीभत्स, भयानक, करुण और हास्य के नाम गिनाये जा सकते है।

सती और पार्वती के विवाह-प्रसंगो मे शृ गार के सयोग-पक्ष की सुंदर व्यजना देखने को मिलती है। दोनो स्थलो पर आलम्बन शिव ही है। वियोग-शृ गार के लिये न कवि मार्मिक स्थल ढू ढ सका है न उसे अवकाश ही मिला है।

प्रिय मे मिलने के लिये सती मे जो व्यग्रता और जवानी की खुमारी है उसका चित्रण देखिये—

उदमाद घणाइ जगि चढती वानी, करि निरखति फोरती कंध।
साई मिलण कारणै सुन्दर, बाधिया चोली तणाज बध ॥१४३॥

प्रथम मिलन के दिन ही सती ने जान लिया कि स्वामी से उसका पूर्व जन्म का स्नेह-सबध है क्योकि —

१—अति सीग अजायवथम घणइ थट, जाडइ कध सुवाधि जिहाज।
सझि कीजइ तिको चढण नु साठीउ, महि जिण भुजे महोदधि माझि ॥३०५॥
घूघर माल चिहु दिसि घमकइ, धणू सथट्ट जोवता घणउ।
मुखमल रउ गउ खउगेर माडियउ, जडियउ जाण जडाव तणउ ॥३०६॥
जरबाफ तणा ताइ पाटा जोडीया, रेसमरी महुरी बहुरग।
मन असवार तणउ ताइ मू झइ, तरइ चलइ आपणइ तुरग ॥३०७॥
रतनारी पाखर पुठि रुलैती, भिडज वधइ ताइ आगल भाण।
अ वर राव हतउ उभाडइ, सिहरा रा सींगे सहिनाण ॥३०८॥
सुरजन साल तिलक सिर दीन्हइ, बीडउ लीयउ पसारे बाहि।
चढीयइ वृखभ कपूर चढावे, छिलता छात तणी ताइ छाहि ॥३१०॥

नयणा तणा बाण नीछटता, निमख निमख ताइ वाधइ नेह ।
रुत जाणती समउ जाणीयउ, साई सु पहिलकउ सनेह ।।१५७।।

प्रियतम के आस्वाद के लिए पार्वती ने अपने यौवन-रस को कचुकी से बाध रखा है इसलिये कि कही वह उलीच न जाय–

प्रीतम रइ कारण पारवती, राखियउ जाणे आम रस ।
भीडियउ उर ऊपर काचू भर, कसण रेसम तणा कस ।। ३३३ ।।

और अनियारे नयनो की यह अपूठी मूठ किसे घायल न करेगी—

अणीयाला नयण आजिया अ जण, काजल रेख सुरेख करि ।
इ द्र तणइ दिन मू ठ अपूठी, भलका नाखइ वाम वर ।।३३७।।

वीररस यो तो सपूर्ण कथा के मूल मे रमा हुआ है क्योकि जितने भी कार्य सपादित हुए है उनका प्रेरक भाव उत्साह ही रहा है । युद्धस्थलो पर तो यह छलका पडता है ।

दक्ष के यज्ञ-विध्वस-प्रसग मे शिव के गणो और दक्ष के सैनिको के बीच गुत्थमगुत्था का चित्र देखिये —

वाजीया भड सिधुराग वडाला, लथ बथ हथ भारथ घण लोह ।
चद्रपहास खेलता चाचर, छिलता घात तणी ताइ छोह ।।१९३।।
धडछइ धार बिटूक हुवइ धड, रवाग अजाग वावरण खेत्र ।
गण आठे वाजिया विसम गति, निलवट सुर बाधियो नेत्र ।।१९४।।
विठता कु भनि कु भ वाकारइ, नव नाडिया जोयइरे नरिंद ।
ऊ चड ग्रहे आछटइ अ वर, ग्रहइ वले आवतउ गिरिंद ।।१९५।।
सादूलउ एक अनेक सिहलि, धूमर कीयइ फेरतउ घस ।
बधा हुता ऊबडे बगतर, हाक समाती ऊडीयइ हस ।।१९७।।

चढिया जाइ पन्न ग कोप चढि, रोस सरोस थरकिया रोम ।
पावन धू वइ पखउ परजलीयउ, विकटी जटा विलागी वोम ।।२०२।।

वीभत्स :

धक चाल हवइ उतवंग पडइ धड, नड नाचइ अपछर निरलग ।
भारथ तणउ पहाड महाभड, जुडता अणी करइ वड जग ।।१९२।।
तुच्छ जल ज्याही माछला तडफइ, भड तडफइ तिण विध भाराथ ।
भभकइ रुधिर भंड जर भागा, एकण कहर लाविया हाथ ।।२१४।।

भयानक :

धनख ताइ धनकार करइ धन, विढवा भुज निमिजई जिवार ।
इकबीसे ब्रह्म ड अउइवइ, सहइ न वासग भार सहार ।।२०३।।
सूरातन जाही घणइ सूरातन, ईसर तणा वाधिया अ ग ।
प्रलयकाल हुसी ताइ प्रिथमी, द्रोही तणा थरकिया द्रंग ।।१०४।।

अद्‌भुत :

कैलास पर्वत के वर्णन मे इसका विशेष रूप से निर्वाह हुआ है—

नदी वरइ झावूका नाखली, धोय उदकची लागी धार ।
ईसर तणी आन्या इसडी, पइ डउ दइतउ तारइ पार ।।८९।।

रति-विलाप मे कवि चाहता तो करुण रस को उद्‌भावना के लिये स्थान था पर उस प्रसग की उपेक्षा कर केवल एक छद लिखा है –

आया गिर कैलास ईस्वर, प्रो झरवा लागी रत पास ।
गिरवर कु वर गोद करे नइ, (गायावर), कु वर वले ही बाधी आस ।।२६१।।

हास्य रस का केवल एक उदाहरण विवाहोत्सव पर टू ट्या निकालने की प्रथा के निर्वाह के रूप मे मिलता है–

हेअउ बोलइ किसइ देमरी बोली, खडत चरण तणी खुडी ।
अणवर वीद टटीयउ आयउ, जोगी रसा जुगति जुडी ।।१३२।।

शिव-महिमा वर्णन मे शान्त रस की प्रशान्त धारा प्रवहमान है–

बीजासुर खपड ऊपजइ बाजइ, धुरा लगइ अवचल अवधूत ।
चाढइ ब्रह्मा तणी चाचर री, बीजी चाढइ नही बभूत ।।१३।।
वासिगरउ काठलउ विराजइ, सहस करइ फुग गिलण सति ।
जग बारा आदिता जिसडी, तेज तपइ मुणिसा वरति ।।१७।।

पार्वती के प्रति हिमालय और मेना का वात्सल्य देखिये—

अउछाडे लीधरि दइरइ आगड, अणियउ ताइ आपरे आवास ।
मिलि यइनाल उछाह माडिया, पल एक तीया न छोडइ पास ।।२३५।।

खिण पालणइ गोद लीजइ खण, चवर ढुलइ चिहुँ दिसे सुचंग ।
बालक तणइ बाधिया बधण, ऐकीका सहसा लै अ ग ।।२३६।।

कलापक्ष

कवि का भाव पक्ष जितना सहज-सुन्दर है कलापक्ष उतना ही मधुर-मनोहर। उसमे एक कलाकार की रुचि, कारीगर की लगन और भावुक की प्रतिभा के दर्शन होते हैं । वर्णन-क्षमता, चित्रोपमता और साज-सज्जा को देखते हुए कवि के अद्भुत कौशल की प्रशसा करनी पडती है ।

काव्य की भाषा विशुद्ध डिंगल है । वह भावो के अनुसार उछलती कूदती है । भक्ति-प्रसग मे अर्द्ध नारीश्वर सी सुषमा, शृ गार मे पार्वती सा लास्य और युद्ध-वर्णन मे शिव सा ताण्डव नर्त्त न है । यथा–

(१) वासिगरउ काठलउ विराजइ, सहस करइ फुग गिलण सति ।
जगबारा आदीता जिसडी, तेज तपई मुणिसा वरति ।।१७।।

(२) उदमाद घणइ जगि चढती वानी, करि निरखति फोरती कध ।
साई मिलण कारणै सुन्दर, बाधीया चोली तणाज बध ।।१४३।।

(३) धकचाल हवइ उतवंग पडइ धड, नड नाचइ अपछर निरलग ।
भारथ तणउ पहाड महा भड, जुडता अणी करइ वड जग ।।१९२।।

वेलि मे अलकारो का प्रचुर प्रयोग हुआ है । शब्दालकारो मे वयणसगाई के साधारण और असाधारण दोनो प्रकार देखे जा सकते है—

साधारण :

(१) करा प्रणाम सजोडि कर (१)
(२) धुरा लगइ अवचल अवधूत (१३)
(३) आवीया गग सनान कीयउ (९०)

असाधारण

(१) *प*ग ऊपल विचइ *प*दम विराजइ (११)
(२) *ना*क जग्इ पहिरी *न*क वेसर (३३६)
(३) तरइ *विस*न कहइ आगलि *विस*भर (३६७)

अनुप्रास भी पूरे चरण मे व्यवहृत हुआ है–

(१) दीन दयाल दया दाखिजइ, हेत घणइ गाइजइ हरि ।।१।।
(२) भुज च्यारे रूप विराजइ भारी, घरहरती घुलती घण घाव ।।६४।।
(३) घण घट घमड जागीए घुरते, आयो ले परिग्गह आपाण ।।१२३।।

यमक और श्लेप के प्रयोग भी द्रष्टव्य है—

यमक :

(१) *वृखताइ* चदनणइ विलागउ, वृखलइ तउ धणइ *वृखराव* (७४)
(२) विढता *कुंभनि कुंभ* वाकारइ (१६५)
(३) काजल रेख सुरेख करि (३३७)

श्लेष :

हाक समाती ऊडीयइ हंस (१८७)

अर्थालकारो मे सबसे अधिक प्रयोग उत्प्रेक्षा का हुआ है। उसके बाद उपमा और फिर रूपक का। अतिशयोक्ति, व्यतिरेक, उल्लेख, भ्रातिमान, सन्देह, अपह्नुति आदि अलकार भी यथास्थान आये है। सौभाग्य से कवि को सती और पार्वती जैसे दो प्रसग भी कथानक मे मिल गये।

रूप-चित्रण मे विशेष रूप से साधर्म्यमूलक अलकार प्रयुक्त हुए है। शिव के कठ मे सीगी ऐसी प्रतीत होती है मानो निर्मल चित्त वाले ब्राह्मण के हृदय मे वेदो ने स्थान पा रखा हो—

सीगी ताइ कठ ऐहवी सोहइ, त्रिमल विप्र जोचता निगेम ।।१५।।

जब शिव को रसायण की मादकता चढती है तो लगता है 'मेहरा विचइ ऊगतउ सूर' (२२)

सती के सौन्दर्य और शृगार वर्णन मे अलकारो का वैभव देखा जा सकता है। प्रारभ से ही सती की गति ग्रहो के बीच सूर्य की तरह जाज्वल्यमान है—

आदी आ साकतणी गति असडी, उगो ग्रहा विवह आदति ।।५०।।

उसकी त्रिबली पर पडे हुए सल क्या थे मानो चित्रकार ने कुभ (पेट) पर सोने की लकीरे खीच दी हो—

चित सालीव तइ चीतारइ, कुनण तणा माडिया कुभ ।।५६।।

चीर मे परिवेष्ठित पीठ तक लटकते हुए चिकुर ऐसे दिखाई देते थे मानो कमल-नाल मे होकर जल उतर रहा हो—

आरीसइ जही जोवता आगल, चिहुर पूठ तइ दीसइ चीर।
पइता कवल देखजइ प्रगटा, नाल कमल ऊतरतउ नीर ।।६१।।

नाभि मानो कुमोदिनी पुष्प हो जिसे चकती के रूप मे इसलिये चिपका दिया गया है कि कही काति चू न जाय—

नालीनाइ नाभ निरखता, घणू स उजल ऊपर घणउ।
चकवारइ वचइ ज्यु चुगती, तत छाडियउ कुमोद तणउ ।।६२।।

उरोज मानो उस देवी के देवालय तुल्य शरीर के शिखर पर अनियारे इंडे (कलश) हो—

आकुस मदन चा तन ऊपडिया, घट महिमा जोवता घणी ।
देवल जाही सिखर चा देवल, इडा चा झलकिया अणी ।।६३।।

कितनी सुन्दर रम्य कल्पना है ! शृंगार और अध्यात्म का यह मेल देखते ही बनता है ।

नथ को हाथी का मद और मदन-धनुष कहना कवि की सूक्ष्म-दृष्टि का परिचायक है—

(१) वाना जडित पहिरी नक वेसर, मद आवीया ज्याही मद गध ।।१३८।।
(२) नाक नरइ पहिरी नक वेसर, मयण धनुख चाढीय उमहि ।।३३६।।

कवि बहुज्ञ है । उसे रंगो का ज्ञान है जिसका प्रयोग मोतियो के वर्ण-साम्य मे देखिये—

(१) गुण दाणा इसा अमोलक गाढा, मोती ताइ आवला प्रमाण ।
सु दरि हार तिसउ उर सोइइ, बीजी गग प्रकट की बाण ।।१४५।।
(२) मोती अति नृमल कोर सिर काढे, खासइ हीर पोविया खास ।
भिलती गग समु द जल भेली, ऊजस उदक तणइ ऊजास ।।३३४।।

पार्वती के चूडे के वर्णन के साथ उसकी मन - स्थिति का चित्रण और शिव-मिलन की सिहरन मानसरोवर की तरगो के साथ कितनी 'फिट' बैठी है—

डड हु तासण साधली सायर, घणू समुद्ररइ पवन घणा ।
चूडउ देखे इसउ चीतवइ, तुरग सही मानसर तणा ।।३३०।।

यहाँ कवि ने चूडा बनाते समय जो विधि काम मे ली जाती है उसका समूचा उल्लेख कर दिया है । डड, अग्नि, सध, पवन आदि उपादान-तत्व है ।

पार्वती को सूर्य-रथ और कु डल को सूर्य-रूप मे देखना—

पारवती कान पहिराया कु डल, सुरिज तिण ऊगा ससार ।
जवहर नखत्र पारवती जडिया, अर्क तणा रथरइ आकार ।।३३८।।

मती के मुख-चद्र और लोचन-कमल को एक साथ विकसित कर असाधारण सौन्दर्य-सृष्टि करना और उसके अवलोकनार्थ ससार के बारह सूर्यों का आह्वान करना कितना दुष्कर कार्य है—

अति सुन्दर कवल माडीया ऊपर सोभा अति पाम इ सादीत ।
चदवदनी मुख दिसउ चाहता, ऊगा केरि वारह आदीत ।।६८।।

नेत्र-वर्णन मे उल्लेख अलकार का प्रयोग द्रष्टव्य है। सती के नेत्र विभिन्न परिस्थितियो मे विभिन्न रूप धारण कर लेते है। यौवनोन्माद मे घोडे की तरह चचल दिखाई देते है। दानवो को नष्ट करते समय वीरत्व उभरने पर उसके नेत्रो मे धैर्य झलकता है। वे ही नेत्र मृगछावक की तरह भोले और घाव करने वाले तीर की तरह तीखे भी है—

लडता जग लहरि तुरगे लागा, सूरा तरा जोवता सधीर।
मृगछावडई जिसा लोचन मुख, तीखा जिसा वुतगी तीर ॥७१॥

वेणी को वासुकि मे उपमित करना परम्परायुक्त है पर शिव के साथ उसके सबध-स्थापन मे कवि की अपनी मौलिकता है। सती की वेणी ऐसी दिखाई देती है मानो विषपूर्ण वासुकि चदन वृक्ष से लिपट गया हो, फिर भी विष व्याप्त होने की आशका इसलिये नही की जा सकती क्योकि उस चदन वृक्ष-तुल्य कुमारी का पति वृषभध्वज है जो स्वय विष को पचा जाने वाला है—

वेणी डड जिसउ विराजइ वासउ, पिड उदमाद धरती पाव।
वृखताइ चदनणइ विलागउ, वृखलइ तउ घणइ वृखराव ॥७४॥

कठनली और नासिका के वर्णन मे व्यतिरेक अलकार का सुन्दर प्रयोग देखने को मिलता है। कठ मे जो रेखाएँ ब्रह्मा ने बनाई उसके लिये न घण का प्रयोग करना पडा न एरण का। किसी प्रकार का आघात (घाव) भी उनको नही लगा—

नालीनाइ कठ तणी निरखता, रची अचभ परजापति राव।
विगताहीण रेखता वणाई, घण अहिरण अण लागइ घाव ॥६७॥

भ्रातिमान भी दो-तीन जगह आया है। कैलास पर्वत का वर्णन करते समय कवि कहता है आकाश मे नक्षत्र ऐसे सुशोभित थे मानो कस्तूरी मृग पर सधानित बाण नभ मे जा लगे हो, फिर भी वहाँ के मृग बासो की सनसनाहट से शर-सधान का भ्रम कर श्रमित थे—

कस्तूरी नाभि निसधि निकेवल, उडीयण जाइ लागा आकास।
मृग तेथि थकत हूया वन माहे, वाजइ पवन तणा सूरवास ॥८६॥

उत्प्रेक्षागर्भित सन्देह कटि और काकण के वर्णन मे देखिये—

कटि-वर्णन :

कडिलक तिसी उपमा कहतां, पोरस तणी बाधीयइ पाल।
सादूलउ कुजर घड सामुहइ, अणभव लीयइ करतो आल ॥६०॥

काकण-वर्णन

कर सोहइ हाथ तीयइ कर काकण, दिणीयर जिम चउगिरद दिया।
कमल तणा फूलरइ कनारइ, कुदण रा कागरा कीया ॥३३१॥

शिवजी जब दूल्हे बनकर पार्वती को व्याहने के लिए बरात सजाकर चलते हैं तब उनके सौन्दर्य-वर्णन में कवि ने स्त्रियों की व्यग्रता और मुग्धता का जो चित्र खींचा है वह कवित्वपूर्ण है। झरोखों पर चढ़ी स्त्रियाँ जगह-जगह जाली में मुँह निकालकर शिवजी को देख रही थी। दृश्य ऐसा प्रतीत होता था मानो झरोखे रूपी तालाब में मुख रूपी कमल स्थित लोचन रूपी भ्रमर उड़-उड़कर दर्शकों के शरीर पर लग रहे हों—

देखण नु चढण ईम ताइ दीसइ, जालानल मथ काढी ज्याग।
मुख ताइ कवल गउख सर माहे, लोचन भवर रह्या तनु लाग॥३१२॥

इसी प्रकार जब कार्य-रत स्त्रियाँ शिव को आते जान काम-काज छोड़कर दौड़ पड़ती थीं तो उनके पैरों में लगे महावर में रावागण चित्रित हो जाता था। स्वेद सात्विक के कारण वह महावर-सूखने के बजाय और अधिक पतला हो जाता था—

देखणनु दूसइ आहचइ दउडी, छितरा छोड अनेरा काम।
चरणहुँता अलनइ चीतरीया, चिहुटा राय आगणइ चिरांम॥३१४॥

जगह-जगह सूक्तियों और मुहावरों का प्रयोग भी हुआ है—

सूक्तियां :

(१) आदर जिण ठाम वगाड होवइ आगइ, थोडो हुवइ आदर तिण ठांम।
जईजइ क्यू तिये जाइगह, महि अजाद राव जइ माम॥१७७॥
(२) माण हुवइ मन भग तेथ मरीजइ॥१८८॥
(३) मलधारी मानवी न मूं भइ॥२२५॥

मुहावरे :

(१) कलेस आइड आक वलइ॥१४६॥
(२) मुहडै मरी बोलीयउ महीपति॥१८०॥
(३) लक तणइ तोरण जाइ लागा॥१८६॥
(४) इन्द्र तणइ दिन मृठ अपठी, मलका नाखइ बांम वर॥३३७॥

छद :

इसमें छोटासाणोर के भेद वेलियो और खुड्डसाणोर का प्रयोग हुआ है—

उदाहरण :

(१) वेलियो :

बीजासुर खपइ ऊपजइ बाजइ, घुरा लगइ अवचल अवधूत।
चाडइ ब्रह्मा तणि चाचर री, बीजी चाडइ नहीं वधूत॥७३॥

(२) खुडदसाणोर

धरणीधर शकर देव धियावउ, जोति प्रकास ग्रलोप जग ।
मस्तक मुगट प्रकास माडियउ, ग्रनत कोट ब्रह्म ड लगि ।।४।।

डा० हीरालाल माहेश्वरी ने इसके ३८१ छद माने है[1] । ग्रनूप सस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर मे जो इसकी प्रति है उसमे भी ग्रन्त मे ३८१ ही लिखा है पर सचमुच इसमे ३८२ छद है । इस गडबड का कारण प्रतिलिपिकार की लापरवाही है । उसने छद ३६ के ग्रक दो बार लिख दिये है जबकि वे दोनो भिन्न है । उनकी सख्या लगनी चाहिये ३६ व ४० न कि ३६–३६ ।

हमने विवेचन करते समय जो उदाहरण प्रस्तुत किये है उनकी छद सख्या ३८२ के ग्राधार पर ही लगाई गई है ।

पृथ्वीराज रचित 'क्रिसन रुकमणी री वेलि' तथा किशना रचित 'महादेव पार्वती री वेलि' .

दोनो कवियो की वेलियो का ग्रध्ययन करने से यह स्पष्ट पता चल जाता है कि कथानक ग्रलग होते हुए भी कथा-शैली, वर्णन–क्षमता, सौन्दर्य प्रसग, नख-शिख निरूपण एव छद-विधान मे काफी समानता है । ग्रत यह मानने मे कोई सकोच नही होना चाहिये कि किशना पृथ्वीराज से काफी प्रभावित रहा है । ऐतिहासिक दृष्टि से भी पृथ्वीराज किशना के पूर्ववर्ती ठहरते है । पृथ्वीराज की वेलि प्रारभ मे ही लोकप्रिय कृति रही ग्रौर सभव है इसीसे प्रेरणा पाकर किशना ने कृष्ण ग्रौर रुक्मणी की जगह महादेव ग्रौर पार्वती को ग्रपना पात्र बनाया हो ।

दोनो कवियो मे वेलि का उठान समान रहा है । मगलाचरण दोनो ने किया है । यह ग्रवश्य है कि पृथ्वीराज ने जहाँ केवल ८ छदो मे ही ग्रपनी ग्रसमर्थता के व्याज से कृष्ण-महिमा का वर्णन किया है वहाँ किशना ने २१ छदो मे प्रत्यक्ष रूप मे शिव की कीर्ति गाई है । कथा-सघटन भी दोनो का समान रहा है । पृथ्वीराज को केवल कृष्ण-रुक्मणी का ही विवाह सम्पन्न कराना पडा जबकि किशना को सती ग्रौर पार्वती दोनो का । ग्रत एक मे प्रासकिक कथाग्रो की ग्रावश्यकता नही पडी जबकि दूसरे मे कई प्रासगिक कथाएँ सयोजित हुई । यही कारण है कि पृथ्वीराज ३०५ छदो मे ही ऋतु-वर्णन, वेलि माहात्म्य, कवि-विनय, कवि की गर्वोक्ति, रचना-तिथि ग्रादि के लिए स्थान निकाल पाये जबकि किशना ३८२ छद लिखकर भी यह सब कुछ नही कर पाया ।

पृथ्वीराज के ग्रनुकरण पर ही किशना ने रुक्मणी की तरह सती ग्रौर पार्वती के सौदर्य तथा शृ गार का पृथक–पृथक वर्णन किया है । पृथ्वीराज के

१—राजस्थानी भाषा ग्रौर साहित्य पृ० १६३-१६४

द्वारिका वर्णन का प्रभाव किशना के कैलाश-पर्वत वर्णन पर पडा है। जिस गति से कृष्ण कुन्दनपुर आकर रुक्मणी की सहायता करते हैं उसी त्वरा के साथ शिव दक्ष-यज्ञ को विध्वस करने का प्रयत्न करते है। वहाँ बलराम स्वय कृष्ण की सहायता के लिए दौड पडते हैं तो यहा शिव स्वय वीरभद्र को पैदाकर अम्बापुर भेजते है। कृष्ण रुक्मकुमार के सिर पर हाथ रखकर उसके उतारे हुए केश फिर लगा देते है तो शिव बकरे का माथा लगाकर दक्ष को पुनर्जीवित कर देते हैं। कृष्ण पुत्रवान होते है तो शिव भी। पर एक का पुत्र काव्य मे निष्क्रिय ही रहता है जबकि दूसरे का पुत्र दैत्यराज ताडकासुर का दमन कर देवताओ की रक्षा करता है।

यहाँ हम दोनो वेलियो से कुछ ऐसे छद उद्धृत कर रहे है जिनमे पता चलता है कि किशना किस प्रकार पृथ्वीराज से प्रभावित रहा। यह आवश्यक नही है कि सर्वत्र समानता हो ही और न यह समझा जाय कि किशना का अपना कुछ भी मौलिक न था।

	पृथ्वीराज कृत वेलि	किशना कृत वेलि
(१)	परमेसर प्रणवि, प्रणवि सरसति, पुणि सद-गुरू प्रणवि, त्रिण्हे तत- सार। मगल-रूप गाइजइ माहव, चार सु अे ही मगलचार ॥१॥	परमेसर सरति परय गुरू, करा प्रणाम सजोडि कर। दीन दयाल दया दाखीजइ, हेत घणइ गाइजइ हरि ॥१॥
(२)	अनि वरस वधइ, ताइ मास वधइ अे, वधइ मास, ताइ पहर वधति ॥१३॥	दिन दिन लइ अतरा देवी, वरस मास रा किसा निबध ॥५२॥ वाधइ सायर वले ज्यु ही विप्र, वासुर वरस तणइ विस्तार ॥२३८॥
(३)	राजति राज-कु वरी राय अगणि, उडियण वीरज अबहरि ॥१४॥	जोति जुडी करतीयइ जोवता, चदबाही किना ऊगउ चद ॥१३८॥
(४)	आप तणउ परिग्रह ले आयउ तरुणापउ-रितुराउ तिणि ।१६।	हेमाचल गिरवर चा सेहर, वसत तणि रुति हुई बणाव ॥६४॥
(५)	नीतबणि-जघ सु करभ निरूपम, रभ-खभ विपरीत-रूख जुअलि नाळि तसु गरभ जेहवी, वयणे बारवाणइ विदुख(२६)	जगस्थल युग केलि ग्रभ जिसडा, गति जोवता जिसा गज-खड (५६)
(६)	ईखे पित-मात अेरिसा अवयव, विमल विचार करइ वीवाह।	परवार सयल राजान पूछीयउ, पूछीया वडा वडा प्रधान।

सु दर सूर सील-कुल करि सुध,
नाह क्रिसन सरि सूझ नाह (३०)

दीजइ गवर जिसउ वर दाखउ,
वस तणउ वधारण वान (७६)
आलोप करे परवार आखीयउ,
अवर नको राजा न इसउ ।
वीद नको सारीखउ विसभर,
सिहर नको कैलास जिसउ (७७)

(७) ग्रिह-ग्रिह प्रति भीति, सुगारी हीगलू,
ई ट फिटक-मइ चुणी असभ ।
चदन पाट, कपाटइ चदण,
खु भी पना, प्रवाली खभ (३९)

कवाउच रतन गारि कु दणरी,
सुगति सिलावट चुणी सुजाण ।
तेज खपइ कुण देख तीयारउ,
भुवण भुवण जिहा ऊगइ भाण (१०१)

(८) धुनि-वेद सुणति कहुँ सुणति सख-धुनि,
नद-झल्लरी, नीसाण-नद (४८)

वेद कथइ आगलि ब्रह्मादिक,
पडसादा गु जीया पहाड (१०२)

(९) पणिहारि-पटल-दल वरण चपक दल,
कलस सीसि करि करि कमल (४९)

कु भ हुवइ ततकाल कहता,
सो पाणी ल्यावै पणिहार (१०३)

(१०) ऊठिया जगतपति अतरजामी,
दूरन्तरी आवतउ देखि ।
करि वदण आतिथ-ध्रम क्रीधउ,
वेदे कहियउ तेणि विसेखि (५४)

नालेर लीयउ प्रभु वात परीछी,
जाणणहार सुजाण जगि ।
आया महुल करे ताइ आइत,
प्रिथी प्रमाणइ धरण पगि (१०९)

(११) कुमकुमइ मजण करि धउत वसत्रधरि,
चिहुरे जल लागउ चुवण ।
छीणे जाणि छछोहा छूटा,
गुण मोती मखतूल-गुण (८१)

ऊठी ताइ करे माजणउ उमया,
वेणी झर अब ग्रहवड ।
बादल स्वास तणउ ताइ वरसइ,
भीणी बू दा करे झड (३२७)

(१२) अणियाला नयण बाण अणि-याला,
सजि कु डल-खुरसाण सिरि ।
वले वाढ दे सिली सिली वरि,
काजल जल वालियउ फिरि (८६)

अणीयाला नयण आजीया अजण,
काजल रेख सुरेख करि ।
इ द्र तणइ दिन मू ठ अपूठी,
भलका नाखइ वाम वर (३३७)

(१३) कल मोतिया सु-सरि हरि-कीरति,
कठ-सिरी सरसती करि (९१)

गुणदाणा इसा अमोलक गाढा,
मोती ताइ आवला प्रमाण ।
सु दरि हार तिसउ उर सोहइ,
बीजी गंग प्रगट की बाण (१४५)

(१४) मणि-मइ हीडि हीडलइ मणि-घर,
किरि साखा स्त्रीखड-की (६२)

खुडीया ऊपरी जाणि खामीया,
मणिधर राजा तणी मणि (५७)

(१५) गजरा नव-ग्रही ग्रोचिया ग्रोचइ,
वले वलय विधि-विधि वळित ।
हसत नखित्र वेधियउ हिमकर,
अरध कमल अळि आवरित (६३)

कर सोहइ हाथ तीयइ कर काकण,
दिणीयर जिम चउ गिरद दीया ।
कमल तणा फूलरइ कनारइ,
कु दण रा कागरा कीया (३३१)

(१६) विप्र मूरति वेद, रतन-पइ वेदी,
वस आद्र अरिजण-मइ वेह ।
अरणी अगनि, अगर-मइ इंधण,
आहुति घ्रित-छणसार अछेह (१५३)

सोनारा कलस घणु ताइ सुन्दर,
खण माडिया इकवीस अखड ।
जडिया कु दण तणी जेवडी,
वास जिके लागी ब्रह्म ड ॥१४६॥
वीवाह करण तेथ वैठा ब्राह्मण,
समधी अगनि सीचतइ सारि ।
नवग्रह दश दिग्पाल निजी-की,
अथ वायरइ करइ आचार (१५२)

(६) त्रिपुर सुन्दरी री वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि त्रिपुर सुन्दरी देवी से सबध रखती है। यह देवी शक्ति का ही एक रूप है।

कवि-परिचय .

वेलि मे कवि ने अपना नामोल्लेख किया है[2]। उसके अनुसार ये कोई जसवन्त नाम के कवि थे। डा० हीरालाल माहेश्वरी ने इस वेलि को चारणी साहित्य की पौराणिक-धार्मिक रचनाओ मे गिना है[3]। इस आधार पर ये चारण-कवि ठहरते है। श्री अगरचद नाहटा के अनुसार ये जैन यति थे। काव्य-शैली से इनका कोई महात्मा मथेर्ण होना सूचित होता है[4]। जसवन्त नाम के ही एक कवि सत्रहवी शती

१—(क) मूल पाठ मे वेलि-नाम नहीं आया है। पुष्पिका मे लिखा है 'इति श्री त्रिपुर सुन्दरी वेलि ।'

(ख) प्रति-परिचय —इसकी हस्तलिखित प्रति अनूप सस्कृति लायब्रेरी बीकानेर के ग्र थाक २७२ मे सुरक्षित है। प्रति की अवस्था अच्छी है। आकार १०"×३$\frac{3}{4}$" है। सम्पूर्ण वेलि एक ही पत्र मे लिखी गई है। प्रति पृष्ठ मे ६ पक्तियाँ हैं और प्रत्येक पक्ति मे ३७ अक्षर है।

२—रायराण सेवा करइ, इम भणइ जसवत

३—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १७७

४—लेखक की बात-चीत अपने बीकानेर प्रवास मे

मे हुए थे जिनका सबध लोकागच्छ से था[१]। कहा नही जा सकता कि वेलिकार जसवन्त ये ही थे या कोई भिन्न व्यक्ति ?

रचना-काल :

वेलि मे रचना-तिथि का उल्लेख नही किया गया है। पुष्पिका-इतिश्री त्रिपुर सुन्दरी वेलि ।। श्री सवत १६४३ वर्षे पोस वदि ६ दिने शुक्रवारे चे० देवजी लिखित० ।। कल्पवल्ली नगरे लिखिता ।। श्री० ।।-से सवत १६४३ मे इसका लिपिवद्ध होना सूचित होता है। अत इससे पूर्व इसका रचा जाना निश्चित है।

रचना-विषय

३० पक्तियो की यह छोटी सी रचना त्रिपुर सुन्दरी देवी के महिमा-वर्णन से सबधित है। इसमे कवि ने सर्वप्रथम सरस्वती की वदना करते हुए वस्तु की ओर सकेत किया है[२]। तत्पश्चात त्रिपुर सुन्दरी का माहात्म्य गाया है। त्रिपुर सुन्दरी शक्ति का रूप है। वह सिहवाहिनी पहाडो के बीच घूमती रहती है[३]। दुष्टो का दमन कर अपने भक्तो को सर्व सुखी बनाना उसका स्वभाव है[४]। जो भी शत्रु बनकर उसके सम्मुख आता है वह उसके त्रिशूल के प्रहार से टुकडे-टुकडे होकर नष्ट हो जाता है[५]। कवि देवी से प्रार्थना करता है कि उसे सब प्रकार का मन-चाहा सुख मिले, हाथी, रथ और घोडो का अपार धन मिले, सम्पूर्ण रोगो का नाश होकर पवित्र बुद्धि और रिद्धि-सिद्ध मिले[६]।

कलापक्ष

काव्य की भाषा सरल-सुबोध राजस्थानी है। यत्र-तत्र शब्दानुप्रास भी आया है—

१—जिनवाणी (जयपुर) शोधाक प्रथम भाग पुस्तक १७ भाग ७, पृ० २१४

२—मात मया मझनी करू, आपू वचन विलास।
त्रिपुरा देवी वर्णवु, जे सवि पूरइ आस ।।१।।

३—सीह वाहन सचरइ, गिरिवरि शिखरि मझारि।
भक्ति लोक भाव विहरइ, सुक्ख करइ ससारि ।।२।।

४—दुष्ट ग्रह पीडा धरइ तितो सन्राम।
गमी गमी वाछित फलइ, पूरइ आसभिराम ।।३।।

५—जे दुर्जन अति आकरा, विरूय चिंति चित्त।
ते भाणी भु कु करू, अछइ तुक धरि रीत ।।४।।

६—मात तणइ सुस्मा उलइ, नासइ सघला रोग।
सिद्धि वुद्धि दायक सदा, देज्यो वाछित भोग ।।१४।।
त्रिपुर पसाइ पामिइ सघ, रिद्धि वृद्धि भडार।
गज रथ घोडा सयल धन, मन वाछित दातार ।।१५।।

(१४) मणि-मइ हींडि हींडलइ मणि-
धर,
किरि साखा स्त्रीखड-की (६२)

खुडीया ऊपरी जाणि खामीया,
मणिधर राजा तणी मणि (५७)

(१५) गजरा नव-ग्रही प्रोचिया प्रोचइ,
वले वलय विधि-विधि वळित।
हसत नखित्र वेधियउ हिमकर,
अरध कमल अळि आवरित (६३)

कर सोहइ हाथ तीयइ कर काकण,
दिणीयर जिम चउ गिरद दीया।
कमल तणा फूलरइ कनारइ,
कुदण रा कागरा कीया (३३१)

(१६) विप्र मूरति वेद, रतन-पइ वेदी,
वस आद्र अरिजण-मइ वेह।
अरणी अगनि, अगर-मइ इधण,
आहुति घ्रित-छणसार अछेह (१५३)

सोनारा कलस घणु ताइ सुन्दर,
खण माडिया इकवीस अखड।
जडिया कुदण तणी जेवडी,
वास जिके लागी ब्रह्म ड ।।१४६।।
वीवाह करण तेथ बैठा ब्राह्मण,
समधी अगनि सीचतइ सारि।
नवग्रह दश दिग्पाल निजी-की,
अथ वायरइ करइ आचार (१५२)

(६) त्रिपुर सुन्दरी री वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि त्रिपुर सुन्दरी देवी मे सबध रखती है। यह देवी शक्ति का ही एक रूप है।

कवि-परिचय

वेलि मे कवि ने अपना नामोल्लेख किया है[2]। उसके अनुसार ये कोई जसवन्त नाम के कवि थे। डा० हीरालाल माहेश्वरी ने इस वेलि को चारणी साहित्य की पौराणिक-धार्मिक रचनाओ मे गिना है[3]। इस आधार पर ये चारण-कवि ठहरते हैं। श्री अगरचद नाहटा के अनुसार ये जैन यति थे। काव्य-शैली से इनका कोई महात्मा मथेर्ण होना सूचित होता है[4]। जसवन्त नाम के ही एक कवि सत्रहवीं शती

१—(क) मूल पाठ मे वेलि-नाम नही आया है। पुष्पिका मे लिखा है 'इति श्री त्रिपुर सुन्दरी वेलि।'
(ख) प्रति-परिचय —इसकी हस्तलिखित प्रति अनूप सस्कृति लायब्रेरी बीकानेर के ग्र थाक २७२ मे सुरक्षित है। प्रति की अवस्था अच्छी है। आकार १०"×३¾" है। सम्पूर्ण वेलि एक ही पत्र मे लिखी गई है। प्रति पृष्ठ मे ६ पक्तियाँ है और प्रत्येक पक्ति मे ३७ अक्षर हैं।

२—रायराण मेना करइ, इम भणइ जसवत

३—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १७७

४—लेखक की बात-चीत अपने बीकानेर प्रवास मे

मे हुए थे जिनका सबध लोकागच्छ से था[1]। कहा नही जा सकता कि वेलिकार जसवन्त ये ही थे या कोई भिन्न व्यक्ति ?

रचना-काल :

वेलि मे रचना-तिथि का उल्लेख नही किया गया है। पुष्पिका-इतिश्री त्रिपुर सुन्दरी वेलि ।। श्री सवत १६४३ वर्षे पोस वदि ६ दिने शुक्रवारे चे० देवजी लिखित० ।। कलपवल्ली नगरे लिखिता ।। श्री० ।।-से सवत १६४३ मे इसका लिपिवद्ध होना सूचित होता है। अत इससे पूर्व इसका रचा जाना निश्चित है।

रचना-विषय

३० पक्तियो की यह छोटी सी रचना त्रिपुर सुन्दरी देवी के महिमा-वर्णन से सबधित है। इसमे कवि ने सर्वप्रथम सरस्वती की वदना करते हुए वस्तु की ओर सकेत किया है[2]। तत्पश्चात त्रिपुर सुन्दरी का माहात्म्य गाया है। त्रिपुर सुन्दरी शक्ति का रूप है। वह सिंहवाहिनी पहाडो के बीच घूमती रहती है[3]। दुष्टो का दमन कर अपने भक्तो को सर्व सुखी बनाना उसका स्वभाव है[4]। जो भी शत्रु बनकर उसके सम्मुख आता है वह उसके त्रिशूल के प्रहार से टुकडे-टुकडे होकर नष्ट हो जाता है[5]। कवि देवी से प्रार्थना करता है कि उसे सब प्रकार का मन-चाहा सुख मिले, हाथी, रथ और घोडो का अपार धन मिले, सम्पूर्ण रोगो का नाश होकर पवित्र बुद्धि और रिद्धि-सिद्ध मिले[6]।

कलापक्ष .

काव्य की भाषा सरल-सुबोध राजस्थानी है। यत्र-तत्र शब्दानुप्रास भी आया है–

१—जिनवाणी (जयपुर) शोधाक प्रथम भाग पुस्तक १७ भाग ७, पृ० २१४

२—मात मया मझनी करू , आपू वचन विलास ।
त्रिपुरा देवी वर्णवु , जे सवि पूरइ आस ।।१।।

३—सीह वाहन सचरइ, गिरिवरि शिखरि मझारि ।
भक्ति लोक भाव विहरइ, सुक्ख करइ ससारि ।।२।।

४—दुष्ट ग्रह पीडा धरइ तितो सन्राम ।
गमी गमी वाछित फलइ, पूरइ आसभिराम ।।३।।

५—जे दुर्जन अति आकरा, विरूय चिंति चित्त ।
ते भाणी भु कु करू, अछइ तुक धरि रीत ।।४।।

६—मात तणइ सुस्सा उलइ, नासइ सघला रोग ।
सिद्धि वुद्धि दायक सदा, देज्यो वाछित भोग ।।१४।।
त्रिपुर पसाइ पामिइ सघ, रिद्धि वृद्धि भडार ।
गज रथ घोडा सयल धन, मन वाछित दातार ।।१५।।

(१) सुक्ख करइ ससारि (२)
(२) सत्रु सवि सहारउ (७)

छद .

दोहा और कुडलिया का प्रयोग हुआ है। ६ दोहे और २ कुडलिया है।

तृतीय खण्ड

(जैन वेलि साहित्य)

षष्ठ अध्याय

जैन वेलि साहित्य (ऐतिहासिक)

सामान्य-परिचय :

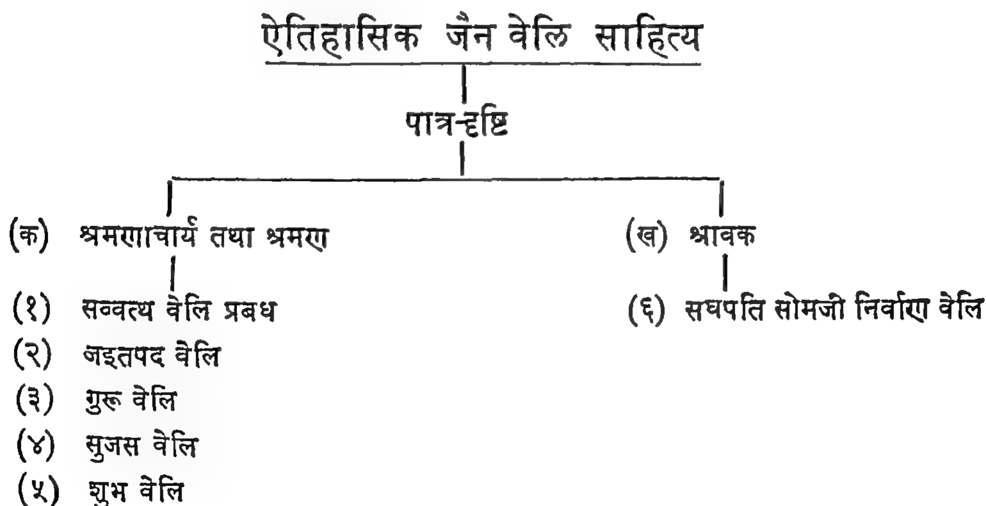
सम्पूर्ण जैन वेलि साहित्य को हमने तीन रूपो मे बाँटा है -

(१) ऐतिहासिक
(२) कथात्मक
(३) उपदेशात्मक

इनमे ऐतिहासिक जैन वेलि-साहित्य को पात्र-दृष्टि से दो भागो मे बाँटा जा सकता है—

(क) श्रमणाचार्य तथा श्रमण
(ख) श्रावक

इसका रेखा-चित्र इस प्रकार बन सकता है :—



सामान्य-विशेषताएँ :

ऐतिहासिक जैन वेलि साहित्य की सामान्य विशेषताएँ निम्नलिखित है —

(१) ऐतिहासिक चारणी वेलि साहित्य की तरह यहाँ जितने भी पात्र आये हैं वे सब ऐतिहासिक महापुरुष है। ये पात्र प्रधान रूप से वेलिकारो के धर्माचार्य रहे हैं और गौण रूप से सघपति श्रावकादि।

(२) इन वेलियो मे प्राय धर्माचार्यों की पाट-परम्परा का निर्देश करते हुए कवि के गुरु-विशेप का जीवन वृत्तान्त प्रस्तुत किया गया है। सोमजी जैसे सघपति श्रावक भी श्रमरा-कवि समय सुन्दर के वर्ण्य-विषय रहे है।

(३) धर्माचार्यों पर लिखी गई इन वेलियो से गच्छ विशेप की ऐतिहासिक परम्परा के सबध-सूत्र जोडने मे विशेप सहायता मिलती है।

(४) इन वेलियो के प्रारभ मे सामान्यत दोहा छद मे गणेश, सरस्वती और गुरू की वदना की गई है।

(५) भापा बोलचाल की सरल राजस्थानी है फिर भी यहाँ 'सव्वत्थ वेलि प्रबध' के दोहो मे तथा 'सोमजी निर्वाण वेलि' मे चारणी अलकार वयणसगाई का सफलतापूर्वक निर्वाह हुआ है।

(६) छदो मे विविधता है। मात्रिक छद-दोहा सरसी, सखी, हरिपद-यहाँ व्यवहृत हुए है। 'सोमजी निर्वाण वेलि' मे तथा 'सव्वत्थ वेलि प्रबध' मे वेलियो छद प्रयुक्त हुआ है। 'सुजस वेलि' विभिन्न ढालो मे लिखी गई है।

उपलब्ध प्रमुख वेलियो का अध्ययन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) सव्वत्थ वेलि प्रबध[1]

प्रस्तुत वेलि मुख्य रूप से युगप्रधान जिनचद्र सूरि से सबध रखती है पर सुधर्मास्वामी से लेकर जिनचद्र सूरि तक की खरतरगच्छीय पाट-परम्परा का इसमे जो उल्लेख किया गया है वह ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान है। शीर्पक-सव्वत्थ वेलि प्रबध-मे सूचित होता है कि इस छोटी सी कृति मे कवि ने सर्व अर्थ भर दिया है।

कवि-परिचय :

अकबर की सभा मे तपागच्छवालो को पोपह की चर्चा मे इन्होने निरूत्तर किया था। स० १६२२ वैशाख शुक्ला १५ को जिनचद्र सूरि ने इनको उपाध्याय पद प्रदान किया था। स० १६४६ की माह कृष्णा चतुर्दशी को जालोर मे अनशन कर ये स्वर्ग सिधारे। इनकी निम्नलिखित कृतियो का उल्लेख देसाईजी ने किया है[1]—

(१) सत्तर भेदी पूजा स० १६१८ श्रा० शु० ५
(२) आषाढ भूति प्रबध स० १६२४ विजयादशमी
(३) शत्रु जय (चैत्री) स्तवन
(४) प्रभाती
(५) नमि राजर्षि चौपई
(६) मौन एकादशी स्तोत्र स० १६२४
(७) विमल गिरि स्तवन
(८) आदिनाथ स्तवन
(९) सुमतिनाथ स्तवन
(१०) पु डरीक स्तवन
(११) स्थूलभद्र रास
(१२) जिनादि कवित्त
(१३) नेमि स्तवन
(१४) नेमि गीत

इसी नाम के एक और कवि पद्रहवी शती के उत्तरार्द्ध मे वडतपगच्छ जिनदत्त सूरि के शिष्य साधु कीर्ति हो गये है[2]।

रचना-काल

वेलि के अन्त मे रचना-काल का उल्लेख नही किया गया है। वेलि को पढने से पता चलता है कि इसमे पाट-परम्परा का उल्लेख करते हुए मुख्य रूप से युग-प्रधान जिनचद्र सूरि की गुण-गाथा गाई गई है। स० १६३२ मे जिनचद्र सूरि ने कवि को उपाध्याय पद प्रदान किया था। पर वेलि मे इसका उल्लेख नही है। जिनचद्र सूरि के जीवन-वृत्त का ऐतिहासिक विवरण भी उनके क्रियोद्धार (स० १६१४) करने तक का ही प्रस्तुत किया गया। बाद की घटनाओ का वर्णन नही है। अनुमान है स० १६१४ के आसपास ही इसकी रचना की गई हो।

रचना-विषय

यह ५४ छदो की रचना है। इसमे जिनभद्र सूरि से लेकर जिनचंद्रसूरि तक की खरतरगच्छीय पाट-परम्परा का वर्णन करते हुए मुख्य रूप से युग-प्रधान जिनचद्र सूरि की यशो-गाथा गाई गई है।

प्रारभ मे कवि ने जिनेश्वर भगवान, गुरू महाराज और सरस्वती की वन्दना की है। तत्पश्चात् वस्तु का निर्देश करते हुए विनय-भावना का प्रदर्शन किया गया है[3]।

१—जैन गुर्जर कवियो भाग १, पृ० २१६-२२१ भाग ३ खण्ड १ पृ० ६९९-७००, खण्ड २ पृ० १४८०

२—जैन गुर्जर कवियो भाग १, पृ० ३४

३—सवल सकल श्रुत सामिणी, सरसति दे मति माय।
विनयकरी जिणि अणवू, सिरि खरतर गुरुराय ॥५॥

(२) इन वेलियो मे प्राय धर्माचार्यो की पाट-परम्परा का निर्देश करते हुए कवि के गुरु-विशेष का जीवन वृत्तान्त प्रस्तुत किया गया है। सोमजी जैसे सघपति श्रावक भी श्रमण-कवि समय सुन्दर के वर्ण्य-विषय रहे हैं।

(३) धर्माचार्यो पर लिखी गई इन वेलियो मे गच्छ विशेष की ऐतिहासिक परम्परा के सबध-सूत्र जोडने मे विशेष सहायता मिलती है।

(४) इन वेलियो के प्रारभ मे सामान्यत दोहा छद मे गणेश, सरस्वती और गुरु की वदना की गई है।

(५) भाषा बोलचाल की सरल राजस्थानी है फिर भी यहाँ 'सव्वत्थ वेलि प्रबध' के दोहो मे तथा 'सोमजी निर्वाण वेलि' मे चारणी अलकार वयणसगाई का सफलतापूर्वक निर्वाह हुआ है।

(६) छदो मे विविधता है। मात्रिक छद-दोहा सरसी, सखी, हरिपद-यहाँ व्यवहृत हुए हैं। 'सोमजी निर्वाण वेलि' मे तथा 'सव्वत्थ वेलि प्रबध' मे वेलियो छद प्रयुक्त हुआ है। 'सुजस वेलि' विभिन्न ढालो मे लिखी गई है।

उपलब्ध प्रमुख वेलियो का अध्ययन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) सव्वत्थ वेलि प्रबध[1]

प्रस्तुत वेलि मुख्य रूप मे युगप्रधान जिनचद्र सूरि से सबध रखती है पर सुधर्मास्वामी से लेकर जिनचद्र सूरि तक की खरतरगच्छीय पाट-परम्परा का इसमे जो उल्लेख किया गया है वह ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान है। शीर्षक-सव्वत्थ वेलि प्रबध-से सूचित होता है कि इस छोटी सी कृति मे कवि ने सर्व अर्थ भर दिया है।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता साधु कीर्ति[2] सत्रहवी शती के प्रारभ मे विद्यमान थे। ये खरतरगच्छीय मतिवर्धन-मेरु तिलक-दया कलश-अमर माणिक्य के शिष्य तथा ओसवाल वशीय सचिती गोत्र के शाह वस्तुपाल जी की पत्नी खेमलदेवी के पुत्र थे[3]। ये सस्कृत के प्रकाण्ड पडित थे। स० १६२५ मिगसर वद १२ को आगरे मे

१—(क) मूल पाठ मे 'वेलि' नाम नही आया है केवल प्रति मे छद का नाम वेलि दिया है। पुष्पिका मे लिखा है— 'इति सवत्थ वेलि प्रबध'

(ख) प्रति-परिचय —इसकी हस्तलिखित प्रति अभय जैन ग्रथालय, बीकानेर के ग्रथाक ७६०८ मे सुरक्षित है। आकार $10\frac{1}{2}'' \times 4\frac{1}{2}''$ है। प्रत्येक पृष्ठ मे १३ पक्तियाँ है और प्रत्येक पक्ति मे ५० अक्षर है। कुल पत्र ३ है। प्रति की अवस्था अच्छी है।

२—साधु कीरति गणि इक पयपइ, पूरइ वछित काज (५८)

३—जैन गुर्जर कवियो भाग १, स० मोहनलाल दलीचद देसाई पृ० २१९

अकबर की सभा मे तपागच्छवालो को पोपह की चर्चा मे इन्होने निरूत्तर किया था। स० १६२२ वैशाख शुक्ला १५ को जिनचद्र सूरि ने इनको उपाध्याय पद प्रदान किया था। स० १६४६ की माह कृष्णा चतुर्दशी को जालोर मे अनशन कर ये स्वर्ग सिधारे। इनकी निम्नलिखित कृतियो का उल्लेख देसाईजी ने किया है[1]—

(१) सत्तर भेदी पूजा स० १६१८ श्रा० शु० ५
(२) आषाढ भूति प्रबध स० १६२४ विजयादशमी
(३) शत्रु जय (चैत्री) स्तवन
(४) प्रभाती
(५) नमि राजर्पि चौपई
(६) मौन एकादशी स्तोत्र स० १६२४
(७) विमल गिरि स्तवन
(८) आदिनाथ स्तवन
(९) सुमतिनाथ स्तवन
(१०) पु डरीक स्तवन
(११) स्थूलभद्र रास
(१२) जिनादि कवित्त
(१३) नेमि स्तवन
(१४) नेमि गीत

इसी नाम के एक और कवि पद्रहवी शती के उत्तरार्द्ध मे वडतपगच्छ जिनदत्त सूरि के शिष्य साधु कीर्ति हो गये है[2]।

रचना-काल

वेलि के अन्त मे रचना-काल का उल्लेख नही किया गया है। वेलि को पढने से पता चलता है कि इसमे पाट-परम्परा का उल्लेख करते हुए मुख्य रूप से युग-प्रधान जिनचद्र सूरि की गुण-गाथा गाई गई है। स० १६३२ मे जिनचंद्र सूरि ने कवि को उपाध्याय पद प्रदान किया था। पर वेलि मे इसका उल्लेख नही है। जिनचद्र सूरि के जीवन-वृत्त का ऐतिहासिक विवरण भी उनके क्रियोद्धार (सं० १६१४) करने तक का ही प्रस्तुत किया गया। बाद की घटनाओ का वर्णन नही है। अनुमान है स० १६१४ के आसपास ही इसकी रचना की गई हो।

रचना-विषय

यह ५४ छदो की रचना है। इसमे जिनभद्र सूरि से लेकर जिनचंद्रसूरि तक की खरतरगच्छीय पाट-परम्परा का वर्णन करते हुए मुख्य रूप से युग-प्रधान जिनचद्र सूरि की यशो-गाथा गाई गई है।

प्रारभ मे कवि ने जिनेश्वर भगवान, गुरू महाराज और सरस्वती की वन्दना की है। तत्पश्चात् वस्तु का निर्देश करते हुए विनय-भावना का प्रदर्शन किया गया है[3]।

१—जैन गुर्जर कवियो भाग १, पृ० २१६-२२१ भाग ३ खण्ड १ पृ० ६९९-७००, खण्ड २ पृ० १४८०

२—जैन गुर्जर कवियो भाग १, पृ० ३४

३—सवल सकल श्रुत सामिणी, सरसति दे मति माय।
विनयकरी जिणि वरणवू, मिरि खरतर गुरुराय ॥५॥

पाट-परम्परा का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि सुधर्मा स्वामी के अनुक्रम मे जिनभद्र सूरि हुए[1]। ये स० १४७५ मे गच्छनायक बनाये गये। ये एक प्रतिभाशाली विद्वान थे। इन्होने जैसलमेर, जालौर, देवगिरि, नागौर, पाटण, माडवगढ, आशापल्ली, कर्णावती, खभात आदि स्थानो पर हजारो प्राचीन तथा नवीन ग्र थ लिखा करके भण्डारो मे सुरक्षित किये। स० १५१४ मिगसर वद ९ को कु भलमेर मे इनका स्वर्गवास हुआ[2]। इनके बाद जिनचद्र सूरि हुए[3]। ये साहु शाखा के वच्छराज की भार्या स्याणी के पुत्र थे। सवत १५३० मे जैसलमेर मे इनका स्वर्गवास हुआ[4]। इनके बाद जिनसमुद्र सूरि हुए[5]। इन्होने पच-नदी साधन आदि करके खरतरगच्छ की उन्नति की। जैसलमेर के श्री अष्टापद प्रासाद मे जिन बिम्बो की प्रतिष्ठा कराई। स० १५५५ मे अहमदाबाद मे इनकी मृत्यु हुई। इनके बाद जिनहस सूरि[6] हुए इन्होने सिकन्दर लोदी को चमत्कृत कर ५०० बन्दी जनो को कारागृह से मुक्त करवाया[7]। (स० १५८२ मे पाटण मे इनका स्वर्गवास हुआ) इनके बाद जिनमाणिक्य सूरि हुए[8]। ये कूकड चोपडा गोत्रीय सघपति राउलदे के पुत्र थे। इन्होने बीकानेर के मत्रीश्वर कर्मसिंह के बनवाये हुए श्री नमिनाथ स्वामी के मदिर की प्रतिष्ठा की।

गरूश्वागुरू खरतर गणइ, भरिया गुणह भडार।
वदनि रसन शत अणवइ, पणि को न लहइ पार ॥६॥
चमकइ भगति भली चितइ, बोलवइ ते वाणि।
कोइल जे कलरव करइ, पुणि सहकार प्रमाणि ॥७॥
खरतर गछ सायर खरउ, जुगति गुहिर गुणि जोइ।
पुरुष रयण करि पूरीयइ, सकइ न गजी कोइ ॥८॥

१—सुहम स्वामि अनुक्रमि सवे, धरिजे जुगह प्रधान।
सिरि जिणभद्र जतीसरु, थयउ तियारह थान ॥६॥

२—युग-प्रधान श्री जिनचद्र सूरि पृ० १७

३—तयणु पाटि थाप्यउ तिणइ, रूपवत महिरेह।
श्री जिनचद्र सु सजमी, गुणमणि माणिक मेह ॥१२॥

४—ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह पृ० १८ (काव्या ना ऐतिहासिक सार)

५—समुद्र सूरि सा वडस गुरू, पाट तिणइ सुप्रसिद्ध ॥१४॥
गुणह अगाह अ ग जीयउ, विघन विदारण वीर।
समुद्र सूरि जइसउ समुद्र, भाग अगोर अभीर ॥१५॥

६—हस सूरि तेहन हुयउ, पाटइ अधिक प्रताप
वसि चोपडा विसेपीयइ, प्रणम्या जायइ पाप ॥१६॥

७—वदी खाणइ वदीया, सग्रहोया सुरताजि।
श्री गुरि छोडवीया सवि पच सया परिमाण ॥

८—माणिक सूरि महा गुणी, पाटइ तेण प्रधान।
चतुर चितामणि चोपडा, वस वधारण वान ॥१८॥

इनके बाद जिनचद्र सूरि हुए[1]। ये जोधपुर राज्यान्तर्गत खेतपुर गाव के निवामी थे (स० १५९५ चैत्र कृष्ण १२ को इनका जन्म हुआ) इनके पिता श्रीवन्तशाह ओसवाल जातीय रीहड गोत्र के थे। इनकी माता का नाम श्रियादेवी था[2]। (इनका जन्म-नाम सुलतान कुमार था) स० १६०४ में ये दीक्षित हुए[3]। स० १६१२ आषाढ शुक्ला ५ को जिनमाणिक्य सूरि का स्वर्गवास हुआ। वे किसी को अपना पट्टधर न बना सके। तब जैसलमेर के समस्त सघ और वहाँ के राउल श्री मालदेव (शासन-काल स० १६०७-१६१८) ने इन्हे (स० १६१२ भादवा शुक्ला ९ गुरुवार को) आचार्य पद दिलाया[4]। तब से ये जिनचद्र सूरि कहलाये। बीकानेर के मत्री (सग्रामसिंह वच्छावत) ने इनके पास बीकानेर पधारने की विनती भेजी। स० १६१३ मे इनका बीकानेर चातुर्मास हुआ। साधुओ मे शिथिलाचार देखकर (स १६१४ मे) क्रियोद्धार किया[5]।

ये महिमा मे मेरु पर्वत के समान और दीप्ति मे सूर्य की तरह जाज्वल्यमान थे। इनका जीवन निर्विकार और गगाजल की तरह पवित्र था। दूसरो के गुणो की ये प्रशसा करने वाले थे। छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति इनमे नही थी[6]। जबूकुमार की तरह उन्होने कामदेव को वश मे कर लिया था[7]।

कलापक्ष :

कवि की भाषा साहित्यिक राजस्थानी है। उसने चारणी शैली के प्रमुख शब्दालकार वयणसगाई का सर्वत्र प्रयोग किया है—

जिणवर जग गुरु *जागतउ, पहिलउ* प्रणमु *पास*।
जासु पसायइ सपजइ, *विधि* विधि सवे *विलास*॥१॥

१—पाटि हिवइ तिणि प्रगटीयउ, पुण्यउ करइ प्रकास।
चद्रसूरि चारित चतुर, नितु सवि सुखा निवास॥२०॥

२—जनय भूयि मरु देसिजसु, रीहउ कुलइ रतन्न।
उरि सिरीयादे अवतरयउ, सिरिवन्त साह सुतन्न॥२१॥

३—श्री जिनमाणिक्य सूरि नइ, सइ हथि सजम सार।
आदरीयउ आणदस्यु, चालइ निरती चार॥२२॥

४—पाम्यउ श्री गुरि पूज्य पद, जैसलमेरु सुजगि।
महा महोछव मडीयउ, राउल मोलि सुरगि॥२३॥

५—मुनिमडल सु माल्हतइ, बीकानयर विशेष।
किरियोद्धार जिणइ करी, राखी नवखड रेख॥२४॥

६—पर परि सवि गुणि परखीयउ, दूषण किणइ न दीध।
वड भागी वसुहतरइ, सजम सदा समृद्ध॥३४॥

७—जवू वयर कुमार जिउ, अनुपम सीलि उदार।
मयण महा भड मोडीयउ, एणि गुरइ इकतार॥३५॥

अर्थालकारो मे उपमा, रूपक आदि व्यवहृत हुए हैं—

उपमा :

(१) कोइ विकार नही कन्हइ, महिमा मेरु समान (२५)
(२) तप तेजइ अहनिसि तपइ, अरुण जेम आकासि (२७)
(३) गगा-जल जइ सउ गुणे, धरम धुरन्धर धीर (२८)

सागरूपक :

खणि तिणि सुहाथि खमा करि खडग, कीधउ तपो करवाल ।
आणद परक्कम चाप आरोपी, बाण गमासु विसाल ।।
आयुध छत्रीस ग्रुहि अनुपम, रंजवीया रायराण ।
तरसाइ विवेकउ रगम ताजी, प्रीति परट्ठी पलाण ।।४३।।

छंद :

कवि ने दोहा और वेलि[1] छंद का मिश्रित प्रयोग किया है। प्रारभ मे ४१ दोहे आये है। बाद मे चार वेलि छदो के बीच दो-दो दोहे। यहाँ जिस वेलि छद का प्रयोग हुआ है उसके विषय चरण मे १८ तथा सम चरण मे ११ मात्राएँ है।

उदाहरण

दोहा

सदासहु सुख सपजइ, पुरि जिणि करइ प्रवेस ।
सिरजिणहार सिरिजयिउ, नवखड तणउ नरेस ।।४६।।

वेलि ·

नवखड नरेस नव निधि नामई, सीलि विधइ सुविचार ।
जसवति सदा सहु अइगुण जोता, साधु तणउ सिणगार ।।
सेवक्क सुद्रे ढि सुधीर ससीवइ, न्याय धणी विधि नूर ।
वदउ जिणचद मुणिद भली विधि, दसणि पातक दूरि ।।५०।।

अन्तिम छंद के लिए 'रामगरी रागे' लिखा है। लक्षणो के अनुसार वह सरसी है[2]। छद इस प्रकार है—

जा लगि मेरु महीधर निश्चल, जा जगि दू रविचद।
जा लगि दीप सवे जयवता, सागर जाम अयद ।।
ता लगि श्री जिनचद मुणीसर, सुखइ करउ चिर राज ।
साधु कीरति गणि इम पयपइ, पूरउ वंछित काज ।।५४।।

१—हस्तलिखित प्रति मे छद का नाम 'वेलि' लिखा है।
२—इसमे १६–११ के क्रम से २७ मात्राएँ होती हैं। अन्त मे ऽ। रहता है।

(२) जइतपद वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि का सबध पौषध सबधी ऐतिहासिक शास्त्रार्थ चर्चा से है। यह चर्चा तपागच्छ और खरतरगच्छ वालो के बीच सम्राट अकबर की सभा मे हुई थी।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता श्री कनकसोम सत्रहवी शती के कवियो मे से थे। ये खरतर-गच्छीय दयाकलश के शिष्य अमरमाणिक्य के शिष्य साधुकीर्ति के गुरु भ्राता थे[2]। ओसवाल नाहटा परिवार मे इनका जन्म हुआ था। सवत् १६३८ मे जब जिनचद्र सूरि सम्राट अकबर के आमन्त्रण पर लाहौर पधारे तब ये भी साथ थे[3]। इनकी निम्नलिखित रचनाएँ मिलती है—

(१) जइतपद वेलि (सं० १६२५)
(२) जिनपालित जिन रक्षित रास (स० १६३२)
(३) आषाढ भूति चौपाई (संबध) (स० १६३८)
(४) हरिकेशी सधि (स० १६४०)
(५) आर्द्र कुमार चौपाई (स० १६४४)
(६) मग न कलश रास (स० १६४९)
(७) थावच्चा सुकोशल चरित्र (स० १६५५)
(८) जिनवल्लभ सूरि कृत पाच स्तवनो पर अवचूरि
(९) कालिकाचार्य कथा
(१०) जिनचन्द्र सूरि गीत
(११) हरिवल सधि
(१२) नेमि फाग

१—(क) मूल पाठ मे वेलि-नाम नही आया है। आरभ मे लिखा है "जइतपद वेलि"
(ख) प्रति-परिचय —इसकी हस्तलिखित प्रति अभयजैन ग्रथालय, बीकानेर के ग्रथाक, ७६१७ मे सुरक्षित है। प्रति का आकार १०½"×४" है। यह ३ पत्रो मे लिखी हुई है। प्रत्येक पृष्ठ मे ११ पक्तियाँ हैं और प्रत्येक पक्ति मे ३७ अक्षर हैं।
(ग) प्रकाशित-ऐतिहासिक जैन काव्य-सग्रह सपादक-अगरचंद-भवरलाल नाहटा, पृ० १४०–१४४।

२—"दया" अमरमाणिक्य "गुरुसीस" साधुकीर्ति लही जगीस।
मुनि "कनकसोम" इम आखइ, चउविह श्री सघ की साखइ ॥४९॥

३—युग-प्रधान श्री जिनचद सूरि अगरचद-भवरलाल नाहटा

रचना–काल :

प्रस्तुत वेलि की रचना स० १६२५ मे आगरा मे हुई थी[1]। काव्य मे घटित घटना का समय एव स्थान भी यही है।

रचना–विषय

सवत् १६२५ मिगसर बदी १२ को आगरे मे खरतरगच्छीय साधुकीर्ति ने अकबर की सभा मे तपागच्छ वालो को पौषध की चर्चा[2] मे निरुत्तर किया था, इसी ऐतिहासिक घटना का वर्णन कवि ने प्रस्तुत वेलि के ४६ छदो मे किया है।

प्रारभ मे सरस्वती की वन्दना करते हुए वस्तु का सकेत किया गया है[3]। तत्पश्चात् सवत १६२५ मे उपाध्याय दयाकलश के आगरे मे हुए चातुर्मास तथा उनके साथ रहे हुए रतनचद, साधुकीर्ति, हीररग, देवकीर्ति, हसकीर्ति, कनकसोम, पुण्यविमल, देवकमल, ज्ञानकुशल, यशकुशल, रगकुशल, इलानद, कीर्तिविमल आदि मुनियो का विवरण दिया गया है। इसी चातुर्मास मे तपागच्छीय मुनि बुद्धिसागर की ओर से पौषध-चर्चा उठाई गई और सघवी सतीदास के माध्यम से खरतर-गच्छीय साधु साधुकीर्ति को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा गया[4]। मिगसर वदी ६

१—सोलहसय पचीसइ समइ, वाचक 'दया' मुनीस।
चउमासि आया आगरै, बहु परि करि सुजगीस ॥३॥

२—पौषधोपवास को लेकर खरतरगच्छ और तपागच्छ की शास्त्रीय मान्यताओ मे दो प्रकार का भेद है—

(१) खरतरगच्छ के अनुसार पौषध पर्व तिथियो मे ही किया जाना चाहिए जबकि तपागच्छ के अनुसार वह किसी भी दिन किया जा सकता है।

(२) खरतरगच्छ के अनुसार पौषध उपवास मे ही किया जाना चाहिए जबकि तपागच्छ के अनुसार वह एकासणे मे भी किया जा सकता है
(प्रश्नोत्तर चत्वारिंशत शतक स० बुद्धिसागर गणि)

३—सरसति सामणी वीनवु, मुझ दे अमृत वाणि।
मूल थकी खरतर तणा, करिस्यू विरुद वखाणि ॥१॥
श्रावक आवी मिली सुणो, मन धरि अति आणद।
चित्त विषवाद न को धरउ, साचउ कहइ मुणीद ॥२॥

४—तपले घरचा उठाई, श्रावक ने बात सुणाई ॥८॥
मो सरिखो पडित जोई, नही मझि आगरे कोई ॥
तिणि गर्व इसो मन कीधउ बुद्धिसागर अपयश लीधउ ॥६॥
श्रावक आगै इम बोलइ, अम्ह गाथा रस (थ?) कुण खोलइ।
श्रावक कहइ गर्व न कीजइ, पूछी पडित समझीजइ ॥१०॥
सघवी सतीदास कु पूछइ, तुम्ह गुरू कोइ इहा छइ।
सघवी गाजी नइ भाखइ, साधुकीर्ति छै इम दाखइ ॥११॥

को प्रात काल विद्वानो के वीच चर्चा हुई जिसमे साधुकीर्ति विजयी घोषित हुए[1]।

इस विजय से तपागच्छीय साधु पद्म सुन्दर निलमिला उठे और उन्होने जाकर बादशाह अकबर को फिर शास्त्रार्थ के लिये निवेदन किया। फलस्वरूप मिगसर वदी १२ को कविराजाओ की सभा मे बादशाह के समक्ष चर्चा प्रारभ हुई फिर भी विजय श्री खरतरगच्छ के हाथो रही[2]।

इससे सपूर्ण खरतरगच्छ मे उत्साह की लहर दौड गई, विजय के नगाडे गू ज उठे अत द्वेष प्रेरित होकर तपागच्छ वालो ने बादशाह को इस बात की शिकायत की कि ये बिना राजाज्ञा के नगाडे कैसे वजाये जा रहे है ? इसके प्रतिवाद के लिये खरतरगच्छ के घोघू, चाडमलल, नेतसी, मेघउ, पारस, नेमिदास, धणराज, सहजसिघ, गगादास, भोज, श्रीचद, श्रीवच्छ, अमरसी, दरगह, परबत, छाजमल, सामीदास आदि श्रावक बादशाह अकवर से विजय के नगाडे बजाने की राजाज्ञा प्राप्त करने के लिये गये[3]। बादशाह ने तत्सबधी आज्ञा ही नही दी वरन् सबको शाबाशी भी दी। इस प्रकार तपागच्छ की पराजय और खरतरगच्छ की विजय हुई[4]।

कवि ने तत्कालीन धार्मिक परिस्थिति का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। जिस प्रकार शैव और वैष्णवो मे पारस्परिक सघर्ष था उसी प्रकार जैन-धर्म मे भी शास्त्रार्थ करने का पूर्ण-उत्साह और नियम था जिसमे श्रावक ही नही स्वय

लिखि कागद तिणि इक दीन्हउ, श्रावक वचनै न पतीनउं।
पोसह तिहि एक प्रकार, भ्रमि भूलउ ते अविचार ॥१२॥
साधुकीर्ति तत्व विचार्यो, तत्वारथ माहि संभार्यो।
पौपध छ इ दोइ प्रकार, बूझ्यो नही सही गमार ॥१३॥

१—अनिरुद्ध महादे मिश्र, मिलिया तिह भट्ट सहश्र।
साधुकीर्ति सस्कृत भाखइ, वुधिसागर स्यु स्यु दाखइं ॥२४॥
पडित कहइ मूढ गमार, तेरो नाम छै वुद्धि कुठार।
पौषह चरचा दिन पच, साचउ खरतर पक्ष सच ॥२५॥

२—पडित सभ वौलई एम, निर्णय कीधो छै जेम।
खरतरगच्छ कउं पक्ष साचउ, तपला पखि कोइ न राचउ ॥३२॥

३—छद सख्या, ३४–४२

४—खरखरे जइतपद पायो, मागत जन सहु अवु लायउ।
पच वरण व वाइ अनेक, पहिराया सधि विवेक ॥४६॥
हारयउ तपलो सहु जाणइ, खरतर कु लोक वखाणइ।
साखी भट्ट छइ इण वातइ, खरतर पख शुद्ध विख्यातइ ॥४७॥

सम्राट तक रस लेता था। शास्त्रार्थ मे अन्य प्रान्तीय (गुजराती आदि) भाषाओं की अपेक्षा सस्कृत का अधिक प्रभाव पडता था[1]।

कलापक्ष :

कवि मे वर्ण्य-विषय को स्पष्ट करने की पूर्ण क्षमता है। भाषा भावानुकूल उठती गिरती है। उसमे अलकारो का चमत्कार न होने पर भी प्रवाह है। यत्र-तत्र मुहावरे भी आये है—

(१) मिली पदमसुन्दर नई आखउ, गच्छत्र्यासी की पत राखउ ॥१४॥
(२) गाल बजाडइ ॠषिमती, हिव ढोला तुम्ह काइं ॥१८॥

एक जगह सव-विस्तार के लिते वट वृक्ष की उपमा बडी सुन्दर है—

वड़ जिम साखा विस्तरी, दिन दिन चढते बान ॥७॥

छद ·

दोहा और सखी छद का प्रयोग किया गया है। जगह-जगह मात्राएँ घटती-बढती रही है।

(३) गुरूवेलि[2]

प्रस्तुत रचना का सबध वेलिकार धर्मदास के गुरू भट्टारक गुणकीर्ति से है। गुणकीर्ति का काल १७वी शती का प्रारभ रहा है[3]। ये सुमतिकीर्ति के शिष्य थे[4]।

कवि-परिचय:

इसके रचयिता धर्मदास हैं। ये दिगम्बर सप्रदाय के सुमतिकीर्ति के शिष्य भट्टारक गुणकीर्ति के शिष्य थे[5]।

१—साधुकीर्ति सस्कृत भाखइ, बुधिसागर स्यु स्यु दाखइ (२४)

२—(क) मूल पाठ मे वेलि-नाम आया है—ब्रहम धर्मदास भणि सुविचारी, गुरू वेलि रचिये रसाल (२८)

(ख) प्रति-परिचय —इसकी हस्तलिखित प्रति भट्टारक भडार, अजमेर के गुटका न० ५६ मे सुरक्षित है। प्रति का आकार ६"×५½" है। यह ३½ पत्रो (पृष्ठ २० से २८ मे) लिखी हुई है। प्रत्येक पृष्ठ मे ११ पक्तियाँ है और प्रत्येक पक्ति मे १८–१६ अक्षर है। प्रति की अवस्था अच्छी है।

३—राजस्थान के जैनशास्त्र भडारो की ग्रथ सूची भाग २ स० कस्तूरचन्द कासलीवाल, पृ० १७ (चित्रसेद पद्मावती चरित्र ले० का० १६५६)

४—श्री सुमतिकीर्ति तणि पाटि प्रगट्यो, जिम उदयाचलि भाण ॥३॥

५—श्री गुणकीरति भट्टारक प्रतपो, सघ सहित चिरकाल।
ब्रह्म धर्मदास भणि सुविचारी, गुरूवेलि रचिये रसाल ॥२८॥

रचना-काल

वेलि मे रचना-काल का उल्लेख नही है न पुष्पिका ही दी है। धर्मदास की एक रचना 'समाधि' का उल्लेख मिलता है जो श्री दि० जैन मदिर बडा तेरह पथियो का भडार, जयपुर मे गुटका न० ११५, वेष्टन न० ५४५ मे है। इसी गुटके मे कनकसोम रचित 'आषाढ भूति मुनि चौपाई' (रचना सवत १६३८) भी है[1]। इस आधार पर यह अनुमान करना कि प्रस्तुत रचना स० १६३८ के पूर्व रची गई है असगत न होगा।

रचना-विषय

यह २८ छदो की छोटी सी रचना है। इसमे कवि ने अपने गुरु भट्टारक गुणकीर्ति का जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया है। प्रारभ मे जिनेश्वर भगवान, गुरुराय और शारदा की वन्दना करते हुए वस्तु का निर्देश किया गया है[2]। सुमतिकीर्ति के पाट पर गुणकीर्ति बैठे। गुणकीर्ति परम सुन्दर, प्रतापी और जगत वन्दनीय थे। बचपन से ही वे बुद्धिमान, सकल कलाओ के जानकर और पिंगल, व्याकरण, तर्क, प्रमाण शास्त्र आदि के मर्मज्ञ थे। इनकी माता का नाम शरियादे था। चतुर्विध सघ ने मिलकर डूगरपुर मे[3] इनके कधो पर गच्छ का भार डाला। ये देश के विभिन्न प्रान्तो[4] मे धर्मोपदेश देते हुए घूमते रहे। बडे बडे राजा-महाराजाओ और कवियो ने इनकी प्रशसा की। चरित्र-पालन और तप—सयम मे ये गणधर के समान वीर थे। इनके गुणो की थाह लेना समुद्र की लहरो या आकाश के तारो को गिनना है[5]।

कला-पक्ष

काव्य की भाषा सरल होते हुए भी साहित्यिक है। उसमे माधुर्य और प्रवाह है। यथा —

१—राजस्थान के जैन शास्त्र भडारो की ग्रथ सूची स० कस्तूरचन्द कासलीवाल, भाग २, पृ० ३४८।

२—शुभकर जिन पद प्रणमवि, समरवि सहि गुरु राय।
सारदा मझ कृपा करी निर्मल बुधि द्यो माय ॥१॥
गिरुउ गछपति जाणिजि, श्री गुणकीर्ति गुणमाल।
वर्णवू तेह गु ण रग भरी, मधुरी वाणि विलास ॥२॥

३—गिरिपुरि पादा सुथापिया, त्रिभूवान होय जयकार ॥६॥

४—गुरु पूरव पल्लव दिश प्रसिद्ध, वलि कुकणनि कर्णाट।
कामरु कोशल निकारु जागल, मालवनि मेदिपाट ॥१२॥
दक्षण देशी गुरु जाणिता वलि, राय देश गुजरात।
सोगवि सोभा अति घणी, वागडि वीरु विज्ञात ॥१३॥

५—समुद्र कल्लोल सज्ञा नही, जिम तारा मे अ ध्यार।
तिम श्रीपूज्य ना गुण अति घणा, कहिता न विलहुँ पार ॥२५॥

सहजि सुन्दर रूपि पुरन्दर, परम प्रतापी एहा ।
जगअभि वन्दन पाप निकन्दन, चन्दन चर्च्चित देहा ।।४।।

अलकारो मे उपमा–रूपक–उत्प्रेक्षा का ही विशेष रूप से प्रयोग हुआ है। साग रूपक के उदाहरण देखिये–

चरित्र–नायक क्षमा रूप खड्ग हाथ मे लेकर क्रोधादि शत्रुओ को नष्ट करता है—

क्षमा खड्ग वलि करि धरी, करयु क्रोध वीरी सघार ।
असुभ कर्मा सवि नीरजरी, परहरि लोभ असार ।।१८।।

उसने ज्ञान रूपी अकुश से मन रूपी हाथी को वश मे कर मदन रूपी महाराजा पर भी अधिकार कर लिया है—

ज्ञान आकुश हृदेइ करि, मन मेगल वश कीध ।
मयण महाराय जीपिनी, जगत्र माहि जश लीध ।।२१।।

छंद

कवि ने दोहा और हरिपद[1] का प्रयोग किया है ।

उदाहरण :

दोहा :

जगि जोता जपति वर भलो, विद्यावत विशेष ।
तप तेजि दिनकर समो, महिमा देश विदेस ।।१०।।

हरिपद

जिपिवाद शाद सघनि परिगाजि, भाजिवा दिगज धीर ।
वादि शिरोमणि वादि विभूषण, दूषण रहित शरीर ।।१५।।

(४) सुजस वेलि[2]

प्रस्तुत वेलि श्रीमद्यशोविजय के ऐतिहासिक जीवन-वृत्त से सबध रखती है ।

१—इसके विषम चरण मे १६ तथा सम चरण मे ११ मात्राएँ होती हैं। अ त मे गुरु लघु होते हैं–छद प्रभाकर , पृ० ८६

२—(क) मूल पाठ मे वेलि नाम आया है–सुजस वेलि सुणता सघेजी,
कांति सकल गुण पोष ।

(ख) प्रकाशित–सम्पादक मोहनलाल दलीचद देसाई ज्योति कार्यालय, रतनपोल, अहमदाबाद ।

यशोविजय तपागच्छीय नयविजय के शिष्य थे[1]। ये सस्कृत-प्राकृत के प्रकाण्ड पडित थे। इनकी छोटी-बडी कई कृतियाँ मिलती है।

कवि-परिचय

इसके रचयिता कातिविजय[2] अठारहवी शती के प्रसिद्ध कवियो मे से थे। ये तपागच्छ के आचार्य हीरविजय सूरि के प्रशिष्य कीर्तिविजय के शिष्य और उपाध्याय विनयविजय के गुरुभ्राता थे[3]। इसी शताब्दी मे कातिविजय नाम के एक और कवि हो गये है जो विजयप्रभ सूरि के शिष्य प्रेमविजय के शिष्य थे[4]। देसाई जी ने आलोच्य कवि की निम्नलिखित दो कृतियो का उल्लेख किया है[5]-

(१) सवेग रसायन बावनी
(२) सुजस वेलि

रचना-काल :

वेलि के रचना-काल का उल्लेख न तो कवि ने किया है न प्रतिलिपिकार ने। पुष्पिका से केवल इतना पता चलता है कि इसकी प्रतिलिपि 'ठाकोर मूलचन्द पठनार्थ' की गई। देसाईजी के अनुसार इसकी रचना सवत १७४५ के आस-पास पाटण मे की गई[6]।

रचना-विषय :

यह वेलि ४ ढालो के ५२ छन्दो मे लिखी गई है। इसमे तपागच्छीय आचार्य यशोविजय की गुण गाथा गाई गई है। इसके पढने से चरित्र-नायक के जीवन-इतिहास पर अच्छा प्रकाश पडता है। सक्षेप मे वेलि का सार इस प्रकार है-

गुजरात मे कनोडु नामक ग्राम था। वहाँ नारायण नामक वणिक् रहता था उसके सौभागदे नाम की स्त्री थी। यशोविजय इन्ही की सन्तान थे। इनका

१—जैन गुर्जर कवियो भाग २ मोहनलाल दलीचन्द देसाई पृ० २०—३७

२—इस वेलि की प्रत्येक ढाल के अन्त मे कवि ने अपना नामोल्लेख किया है—

(१) सुजस वेलि सुणता सघैजी, काति सकल गुण पोष ॥ ढाल १ ॥

(२) काति महारङ्ग रेलि, सही लहिस्यें तिके हो लाल सही ॥२॥

(३) सुजस वेलि इमि सुणता, सपर्जेजी, काति सदा जयकार ॥३॥

(४) काति कहे जसवेलडी सुणता हुइ धन धन दीहा रे ॥४॥

३—जैन गुर्जर कवियो भाग २, पृ० १८१

४—वही पृ० ५२६

५—वही पृ० २८१—२८२

६—'श्री पाटणना सघनो लही, अति आग्रह सुविशेषि रे।
सोभावी गुणकुलडि इमि सुजस वेल्ली म्हे लेखि रे' ॥८॥ ढाल ४॥